सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के काव्येतर साहित्य में सामाजिक चेतना

(Depiction of Social Consciousness in the Literary works (other than poetry) of Sarveswardayal Saxena)

Thesis submitted to

COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

For the degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

in

HINDI

Under the faculty of Humanities

By

शालिनी जॉस

SHALINI JOSE

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
KOCHI – 682 022

DECEMBER 2007

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
COCHIN - 682 022, KERALA, INDIA

Dr. P.A. Shemim Aliyar, M.A, Ph.D
Professor & Head of the Department
Cochin University of Science and Technology

Phone: (Off) 0484-2575954
(Res) 0484-2556575
0484-2555552

Certificate

This is to certify that the research work presented in the thesis entitled '**SARVESWARDAYAL SAXENA KE KAVYETAR SAHITYA MEIN SAMAJIK CHETNA**' is an authentic record of research work carried out by **SHALINI JOSE** under my supervision at the Department of Hindi, Cochin University of Science and Technology, in partial fulfillment of the requirements for the degree of DOCTOR OF PHILOSOPHY in HINDI and that no part thereof has been included for the award of any other degree.

Place KOCHI-22
Date 24-12-2007.

Dr. P.A. Shemim Aliyar
Professor & Head of the Department

Declaration

I hereby declare that the thesis entitled **'SARVESWARDAYAL SAXENA KE KAVYETAR SAHITYA MEIN SAMAJIK CHETNA'** is a bonafide record of the original work carried out by me under the supervision of **Dr. P.A. SHEMIM ALIYAR** at the Department of Hindi, Cochin University of Science and Technology and no part thereof has been included in any other thesis submitted previously for the award of any degree.

SHALINI JOSE

मेरी प्रिय अध्यापिका शमीम अलियार....

पूज्य माता-पिता, प्रिय पति सजी....

सबसे प्यारी

बेटी अनघा.....

को सप्रेम समर्पित

पुरोवाक्

सामाजिक जीवन के यथार्थ की अभिव्यक्ति साहित्यकार की सामाजिक दृष्टि और रचना-दृष्टि पर आधारित होती है। चिंतनशील और संवेदनशील साहित्यकार की जीवन-दृष्टि का विकास उसकी जीवनानुभूति, भाव-बोध तथा परिवेशगत यथार्थ के अंतर्विरोधों और अंतः संघर्षों पर निर्भर करता है। समसामयिक सामाजिक जीवन के प्रति चिंता का भाव आधुनिक साहित्य की अपनी मौलिक पहचान है। स्वातंत्र्योत्तर भारतीय परिवेश में सामाजिक चेतना की निरंतर बढ़ती गतिशीलता और परंपरागत रूढ़ियों और व्यवस्थाओं की जड़ता के बीच ज़बरदस्त संघर्ष और तनाव बना हुआ है। आधुनिक साहित्यकार, इन्हीं संघर्ष और तनाव से उबारने की कोशिश करते हैं और अपने साहित्य के माध्यम से जन-साधारण को सचेत कर रहा है कि इन अत्याचारों का विरोध करें। यह विरोध ही आधुनिकता, नवीन चेतना का पर्याय है।

'सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के काव्येतर साहित्य में सामाजिक चेतना' विषय पर शोध-कार्य करने की प्रेरणा मुझे उनकी कविताओं से मिली है। स्वातंत्र्योत्तर भारत के सामाजिक अन्तर्विरोध पर टोकनेवाले कवि सर्वेश्वर की गद्य रचनाओं का अध्ययन करने की एक अदम्य इच्छा हुई और मैंने पाया कि उनके नाटक को छोड़कर बाकी विधाओं पर उतना अध्ययन नहीं हुआ है जबकि कविता और नाटक की तरह समाज के नग्न यथार्थ को चीरकर दिखानेवाली और भी रचनाएँ हैं। उनके प्रतिभाजन्य व्यक्तित्व का यह पक्ष शोध की दृष्टि से लगभग अधूरा सा पड़ा था। पी.एच.डी. उपाधि के लिए जब शोध-कार्य के विषय निर्वाचन की समस्या

सामने आई, तब मेरी निर्देशिका गुरुवर्या प्रो. शमीम अलियार जी ने भी यही सुझाव दिया कि सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के काव्येतर साहित्य का अध्ययन किया जाय, क्योंकि कविता पर पहले ही शोध किया गया है। अतः मैं ने इस विषय पर शोध कार्य करने का निर्णय किया।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की गद्य रचनाओं के अध्ययन से मुझे लगा कि वे स्वातंत्र्योत्तर साहित्यकारों में अग्रणीय स्थान के अधिकारी हैं। उनकी सामाजिक दृष्टि अत्यंत सतर्क और सजग रही। वर्तमान समाज में व्याप्त विषमता, मज़दूरों, किसानों, निम्न-मध्यवर्ग और नीची जातियों के लोगों का भयावह शोषण और दमन उनकी धारदार कलम का विषय रहा। स्वाधीनता के बाद शासक और शोषक वर्गों ने स्वतंत्रता के नाम पर जिस लूट-खसोट की स्वतंत्रता का परिचय दिया, उसे बडी ही तीव्रता के साथ सर्वेश्वर ने अपनी रचनाओं में अभिव्यक्ति दी है। लेकिन उनका उद्देश्य मात्र इन समस्याओं को रूपायित करना ही नहीं रहा बल्कि उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से सबकुछ बदल डालने की मनुष्य की ताकत में अपना विश्वास भी प्रकट किया है। प्रस्तुत प्रबंध में इन सभी तथ्यों का समुचित विवेचन-विश्लेषण करते हुए सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की व्यापक सामाजिक दृष्टि को उद्‌घाटित करने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध को अध्ययन की सुविधा के लिए पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है। पहला अध्याय है “सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की रचना-प्रक्रिया के सूत्र एवं संवेदना।” ‘सृजनधर्मिता और सामाजिक सरोकार’ उपशीर्षक के अन्तर्गत साहित्य और समाज के घनिष्ठ संबंध को रेखांकित किया गया है। स्वातंत्र्योत्तर भारत के बदलते सामाजिक स्वरूप के प्रति सर्वेश्वर की प्रतिक्रिया उनकी रचनाओं की मूल

संवेदना है। इसके साथ-साथ सर्वेश्वर के जन्म, पारिवारिक परिवेश, शिक्षा-दीक्षा, कार्य-क्षेत्र, राजनैतिक चिंतन, साहित्य सृजन की प्रेरणा, आदि मुद्दों पर भी प्रकाश डाला गया है। सर्वेश्वर के कवि, कहानीकार, उपन्यासकार, नाटककार, निबन्धकार, पत्रकार, समीक्षक रूप को उजागर किया गया है। प्रस्तुत अध्याय में सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के संपूर्ण व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है।

प्रबंध का दूसरा अध्याय "सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के नाट्य साहित्य में सामाजिक चेतना के विभिन्न आयाम" है। इस अध्याय में सामाजिक, राजनीतिक विद्रूपताओं के प्रति आक्रोश करनेवाले सर्वेश्वर को दिखाया गया है। व्यवस्था की क्रूरता, चालाकी और उसमें यंत्रवत् जीनेवाली जनता की विवशता और प्रेरणा को उन्होंने अपनी नाट्य-रचना का विषय बनाया। रंगमंच पर लिखे गए समीक्षात्मक लेख रंगमंच के प्रति प्रतिबद्ध सर्वेश्वर के साक्षी हैं।

प्रबंध का तीसरा अध्याय "सर्वेश्वर के कथा साहित्य की सामाजिकता का विश्लेषण" है। इसमें उनके उपन्यास, कहानियों और बालकथाओं के कथ्यगत विश्लेषण के माध्यम से यह दर्शाया गया है कि सर्वेश्वर सामाजिक चेतना के कथाकार हैं।

प्रस्तुत प्रबंध का चौथा अध्याय है, "निबन्धकार सर्वेश्वर और उनकी सामाजिकता।" सर्वेश्वर के बहुमुखी व्यक्तित्व के परिचायक हैं उनके निबन्ध। साहित्य-समीक्षक, ललितकला पारखी, निबन्धकार, संस्मरण लेखक, यात्रा वृत्तांतकार, आदि कई रूपों में सर्वेश्वर का व्यक्तित्व जाज्वल्यमान है।

प्रस्तुत प्रबंध का पाँचवाँ अध्याय "पत्रकार सर्वेश्वर और उनकी सामाजिक दृष्टि" है। सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक

समस्याओं पर उनकी तीखी टिप्पणियों के विश्लेषण द्वारा सर्वेश्वर के प्रतिबद्ध, मानवीय संवेदना से युक्त पत्रकार व्यक्तित्व को उजागर किया गया है। इस अध्याय में उनकी सामाजिक दृष्टि की व्यापकता तथा समकालीन परिवेश को पकड़ने की अद्भुत क्षमता पर प्रकाश डाला गया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध के अंत में उपसंहार प्रस्तुत किया गया है। इसके अन्तर्गत इस अध्ययन के ज़रिए मिले निष्कर्ष को रेखांकित किया गया है। उपसंहार के पश्चात् ग्रंथ सूची दी गयी है।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध की निर्देशिका और पथप्रदर्शिका परम आदरणीया डॉ. प्रोफेसर पी.ए. शमीम अलियारजी (विभागाध्यक्षा, हिन्दी विभाग, कोची विश्वविद्यालय) के प्रति श्रद्धावनत हूँ जिन्होंने अपने वैयक्तिक जीवन की अत्यन्त वेदनाजनक स्थिति में भी इस शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने के लिए यथासमय आवश्यक निर्देशन और सुझाव दिया है। उनकी सतत प्रेरणा, परम स्नेह, और सहायता से ही यह कार्य पूरा हुआ है। लेकिन औपचारिक धन्यवाद देकर मैं अकृतज्ञ नहीं होना चाहती हूँ।

मैं आभारी हूँ अपने 'विषय विशेषज्ञ' प्रो. डॉ. ए. अरविन्दाक्षन जी (हिन्दी विभाग कोची विश्वविद्यालय) के प्रति जिन्होंने कार्यव्यस्तता के बीच भी शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने में आवश्यक सुझाव दिए हैं।

हिन्दी विभाग के सभी गुरुजनों, सुगन्धवल्ली जी, डॉ. षाजहान जी, डॉ. ईश्वरी जी और सहयोगियों एवं मित्रों के प्रति भी मैं आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने इस शोध कार्य को पूर्ण करने में जाने अनजाने मेरी मदद की है।

कोची विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के दफ्तर एवं पुस्तकालय के सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने अध्ययन के दौरान जो सुविधाएँ एवं सहयोग मुझे प्रदान किया है, उनके लिए मैं आभारी हूँ।

उन ज्ञात-अज्ञात लेखकों के प्रति भी मैं आभारी हूँ, जिनकी रचनाओं से शोध की नई दिशाओं का संकेत मिला है।

मेरे स्वर्गीय पिताजी की याद करती हूँ, मेरी स्नेहमयी माँ, मेरे प्यारे भाईयों की मैं चिरऋणी हूँ जिनकी सतत प्रेरणा, प्रार्थना एवं प्रोत्साहन का ही फल है यह शोधप्रबन्ध। मेरे पति श्री. सजी का प्यार और प्रोत्साहन मुझे हमेशा मिलता रहा उनको शब्दबद्ध करना मेरे बस की बात नहीं है। मेरी नन्हीं प्यारी बिटिया अनघा को भी इस अवसर पर नहीं भूल सकती, जो मात्र दो वर्ष की आयु में भी सहयोगी स्वभाव का परिचय देने में पीछे नहीं रही। सेन्ट जॉसफ्स सी.जी.एच.एस.एस. तृश्शूर की मेरी सहयोगी अध्यापिकाओं, आत्मीय मित्रों डॉ. जयलक्ष्मी, डॉ. बिन्दु राजेश, माया, षैनी और विद्या के साथ साथ मेरी ममतामयी चाचियों - जॉर्जियाना, आनी कुरियन, मेरे ससुरालवालों के प्रति भी आभार प्रकट करती हूँ जिनका प्यार एवं सहयोग सदैव उत्साह देता रहा। मेरी पहली हिन्दी अध्यापिका सिस्टर बैटीना की मैं याद करती हूँ जिनसे प्रभावित होकर ही मैं ने हिन्दी साहित्य पढने का निर्णय लिया था।

सविनय,

शालिनी जॉस

हिन्दी विभाग
कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय
कोच्चिन-22

तारीख दिसंबर 2007

विषय सूची

पहला अध्याय 1-46

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की रचना-प्रक्रिया के सूत्र एवं संवेदना

सृजनधर्मिता और सामाजिक सरोकार स्वातंत्र्योत्तर भारत के बदलते सामाजिक स्वरूप परिवेश के प्रति सर्वेश्वर की प्रतिक्रिया जीवनवृत्त व्यक्तित्व कृतित्व सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की रचनाओं की संवेदना सर्वेश्वर और उनकी कविता सर्वेश्वर की रचनासम्बन्धी मान्यताएँ सर्वेश्वर की राय में भारतीयता सर्वेश्वर की दृष्टि में अन्य साहित्यकार।

दूसरा अध्याय 47-99

सर्वेश्वर के नाटकों में सामाजिक चेतना के विभिन्न आयाम

'बकरी' लडाई अब गरीबी हटाओ हवालात हिसाब-किताब नुक्कड नाटक नृत्य नाटिका रेडियो रूपक - पीली पत्तियाँ चाँदी का वर्क - दो चीनी औरतें यहाँ हम एक हैं बर्फ ने कहा राजकीय सूक्ष्म यंत्रशाला धनिया रामकृष्ण परमहंस पाँच मिनट का नाटक वे क्या सोचते हैं एकांकी बुद्ध की करुणा सत्यवादी गोखले बाल नाटक कल भात आएगा हाथी की पों अनाप शनाप भों भों-खों खों लाख की नाक नाट्य समीक्षक सर्वेश्वर।

तीसरा अध्याय 100-171

सर्वेश्वर के कथा साहित्य की सामाजिकता का विश्लेषण

सूने चौखटे सोया हुआ जल पागल कुत्तों का मसीहा कहानीकार सर्वेश्वर बाल कथाएँ सर्वेश्वर के कथा साहित्य में बहती सामाजिक धारा।

चौथा अध्याय 172-238

निबन्धकार सर्वेश्वर और उनकी सामाजिकता

निबन्धकार सर्वेश्वर सांस्कृतिक निबन्ध साहित्यिक निबन्ध काव्य समीक्षक सर्वेश्वर उपन्यास समीक्षक सर्वेश्वर स्मृतिचित्र ललित कलाएँ और सर्वेश्वर संगीत सम्बन्धी निबन्ध रूस यात्रा फुटकर लेख।

पाँचवाँ अध्याय 239-288

पत्रकार सर्वेश्वर और उनकी सामाजिक दृष्टि

सडी गली राजनीति पर सर्वेश्वर की तीखी टिप्पणियाँ अनैतिक शिक्षा प्रणाली पर क्रुद्ध सर्वेश्वर ह्रासोन्मुख संस्कृति पर दुःखी सर्वेश्वर।

उपसंहार 289-296

ग्रंथ सूची 297-315

पहला अध्याय

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की रचना-प्रक्रिया के सूत्र एवं संवेदना

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की रचना-प्रक्रिया के सूत्र एवं संवेदना

"लीक पर वे चलें
जिनके चरण दुर्बल और हारे हैं
हमें तो जो हमारी यात्रा से बने
ऐसे अनिर्मित पंथ प्यारे हैं।"[1]

दूसरों के बनाऐ रास्ते से हटकर अपने लिए खुद राह बनानेवाले लोग समाज के लिए अनिवार्य हैं क्योंकि समाज की एक प्रवृत्ति यही है कि परंपरा को तोड़ना उसके वश की बात नहीं है चाहे वह परंपरा गलत हो या न हो। दूसरों के कथन को उसी प्रकार मानने के बजाय सोच विचारकर कुछ करनेवाले लोग समाज के आवश्यक घटक हैं। ऐसे ही लोगों से समाज को कुछ 'नया' मिलता है। इस 'नयेपन' का दान करनेवाले ही वास्तव में सर्जक हैं। क्योंकि किसी न किसी चीज़ की सृष्टि ही तो सृजन है। इसका मतलब यह है कि सृजन और समाज एक दूसरे के पूरक हैं।

---

1. एक सुनी नाव' सर्वेश्वरदयाल सक्सेना पृ. 39 (कविताएँ दो) प्र.सं. 1978

सृजनधर्मिता और सामाजिक सरोकार

'सृजन के लिए जो चीज़ ज़रूरी है, वही समाज है। समाज में निहित हर चीज़ सृजन का कारण बनता है। समाज अनंत सत्ता का सृजन है तो वह अन्य कई चीज़ों के सृजन की प्रेरणा बनता है। कोई भी सहज रचना सृजन है। चित्रकला, साहित्य, शिल्पकला आदि में कलाकार नये रूप में अपने मन की, अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति करता है इसलिए वे सृजक हैं। इस नयेपन को देनेकेलिए ज़रूरी है पुराने को जानना, वर्तमान को जाँचना। याने अपने समय के प्रति जागरूक होना आवश्यक है। "सर्जन से जुडे प्रत्येक व्यक्ति में तीसरी आँख का होना ज़रूरी है। यह उनकी बनावट का अनिवार्य अंग है। चूँकि साहित्यकार का सीधा साक्षात्कार मनुष्यों से होता है, वे उसी के सुख-दुःख की बात करते हैं, सो सामाजिक चेतना का ज्वार उसमें कुछ अधिक पैना होता है।"[1]

इसका मतलब यह है कि सृजन के लिए 'समाज' की ज़रूरत है। यह बात अलग है कि समाज के लिए 'सृजन' की ज़रूरत है या नहीं, वह व्यक्ति के दृष्टिकोण के अनुसार बदलता रहता है। यहीं पर 'प्रतिबद्धता' का प्रश्न उठता है।

यदि कोई अपने अनुभूत समाज के प्रति प्रतिबद्ध है तो उसके मन में समाज के लिए कुछ करने की बलवती इच्छा होती है। इस

---

1 साहित्य अमृत फरवरी 2002 पृ. 32
साहित्यकार का सीधा साक्षात्कार मनुष्यों से होता है नासिरा शर्मा

इच्छापूर्ति के लिए वह कोई-न-कोई रास्ता अपनाता है। कोई राजनीति में सक्रिय होने लगता है, कोई समाज-सेवा में जुड़ने लगता है तो कोई जनता को जागरित करनेवाली रचनाएँ करने लगता है। इनमें राजनीतिज्ञ और समाज-सेवी यदि अपने रास्ते से भटक जाएँ तो उसका निरीक्षण साहित्यकार करता है। साहित्य मनुष्य का ही कृतित्व है और मानवीय चेतना के बहुविध प्रत्यंतरों में अत्यंत महत्वपूर्ण भी है। राजनीतिज्ञ का क्षेत्र सीमित होता है, लेकिन साहित्यकार अपनी रचना द्वारा विश्वमानव बन जाता है। राजनीतिज्ञ के लिए दुनियाभर अपने व्यक्तित्व का असर डालने में समय लगता है, लेकिन साहित्यकार केवल एक रचना के द्वारा विश्वभर को अपनी ओर आकर्षित करने में समर्थ हो जाता है। इसका कारण यह है कि साहित्यकार का सीधा संबन्ध मानव मन से होता है। जहाँ भी हो मानव मन में कोई अंतर नहीं होता। मनुष्य मन की नब्ज़ पकड़नेवाला ही साहित्यकार है।

मानव मन को अपने कब्ज़ में करने केलिए साहित्यकार को मानव-मन की परख करनी चाहिए। मानव-मन की परख के लिए मनुष्यों को जानना है। अपने चारों ओर के ही नहीं, दुनिया-भर के मनुष्यों के मानविक विकारों को आत्मसात करना पड़ता है, याने समाज का नब्ज़ पकड़ना चाहिए। समाज की हर इकाई से हिले-मिले-जुले आदमी ही समाज को समझ सकता है, और उसमें निहित हर व्यक्ति की, जीव की वेदना समझ सकता है, तभी उसमें उस वेदना के कारण को मिटाने की प्रबल इच्छा उत्पन्न होती है। समाज के अवांछनीय तत्वों को आमूलचूल

मिटाने का काम करता है। तभी वह लेखन सच्चा लेखन बन जाता है। "कोई लेखक अपने जीवन के अनुभवों को अपनी रचना में उकेरता है, और इस तरह इन सामान्य अनुभवों को एक नये अर्थ से संपृक्त कर देता है, जिससे हमारे समाज का पाठक अच्छी तरह परिचित है। श्रेष्ठ रचना विचारधारा को छोड़कर आगे बढ़ जाती है।"[1]

व्यक्ति अपने समाज से जितना निकट बनता है, उतना वह समाज से प्रतिबद्ध हो जाता है। एक प्रतिबद्ध व्यक्ति ही समाज को बदल सकता है। "सच्चा लेखन हमेशा यथार्थ से लेखकों के संबंधों पर निर्भर करता है।"[2] अपने अनुभूत यथार्थ को अपनी रचनाओं में उभारने के कारण ही प्रेमचन्द महान साहित्यकार बने। समाज के प्रति प्रतिबद्ध लेखक टूटते हुए, पराजित होते हुए, निराश और असहाय महसूस करते हुए आदमी को खडे होने और संघर्ष करने की शक्ति देता है और इसप्रकार अपने को, अपनी रचना को और ज़िन्दगी को अर्थवान बनाने की कोशिश करता है।

"वास्तव में रचनाकार की प्रतिबद्धता दुहरी-होती है। एक स्तर पर वह अपने प्रति प्रतिबद्ध होता है, अर्थात, अपने अनुभव, अपने विवेक और अपनी रचना के प्रति। दूसरे स्तर पर वह उस समय, परिवेश या जीवन के प्रति प्रतिबद्ध होता है जिसके बीच सांस ले रहा होता है।"[3]

---

1 रामस्वरूप चतुर्वेदी साहित्य अमृत जुलाई 2002 पृ. 38
2. हावर्ड फास्ट साहित्य और यथार्थ पृ. 2 अनावाद विजय ्सुषमा, पीपुवस लिटरेसी प्र.सं. 1984
3. 'रचना के सरोकार' विश्वनाथ प्रसाद तिवारी पृ. 111, द्वितीय सं. 1996

आज का लेखक संघर्ष भरे समाज में रहता है। और उसकी कामना है कि वह उसका चित्रण करें, लेकिन इन संघर्षों से जूझने की शक्ति उसमें नहीं है। आम आदमी भी ऐसा बन गया है कि वह अपने ही दु:खों में रमित है, दूसरों के बारे में सोचने का उसके पास वक्त नहीं है। इसीलिए अपने पडोस में चीख सुनाई देने पर भी कारण जानने की आकांक्षा उसमें नहीं होती । इस विच्छिन्न लोक में जीनेवाला लेखक अपने को दुहराता रहता है, क्योंकि नई जीवन परिस्थितियों से उसका संबंध टूट गया है। अत: उसकी भाषा में रचनात्मक ताकत नहीं रही गयी हैं। यदि वह अपनी कलम को धारदार बनाना चाहता है, तो उसे अपने समाज के प्रति सजग होना है, अपनी सृजनधर्मिता निभानी है।

"लेखक मूलत: जीवन से ही जुड़ा होता है, उसी को वह आँकता है, उसी में से वह सत्य को ढूँढता है, उसी की तह में पैठकर वह जीवन-मूल्य भी खोजता है, उसी की विसंगतियों और अंतर्विरोधों से उनकी अनुभूति उद्वेलित होती है। किसी सत्ता अथवा पार्टी, अथवा सिद्धांत का समर्थन अथवा विरोध वह जीवन के ही परिप्रेक्ष्य में करता है, इससे हटकर नहीं करता।"[1]

लेखक हज़ारों तंतुओं से जीवन से जुड़ा होता है। प्रकृति से, परिवेश से, सामाजिक सम्बन्धों से, दायित्वों से, संस्कारों से और मान्यताओं से। इनसे कटकर पूर्णत: स्वतंत्र लेखन की कल्पना नहीं की जा सकती।

---

1 'अपनी बात' भीष्म साहनी पृ. 130, द्वि.सं. 1995

"मनुष्य की मनुष्यता जब उच्छलित होने लगती है, जब उसके अंदर का आनंद बाहर प्रकाशित हो उठता है, तब काव्य बनता है, और काव्य ही जब तथ्य जगत में विभिन्न उपादानों का आश्रय लेता है तो अन्यान्य साहित्यांगों के रूप में प्रकट होता है।"[1]

एक समझदार लेखक समय और समाज से समीपी साक्षात्कार करता है और अपनी रचना में उकेरता है। 'वास्तव में लेखन एक संपूर्ण संश्लिष्ट प्रक्रिया से गुज़रता है जिसमें प्रथम स्तर पर समय-समाज का नीरीक्षण होता है। फिर सही लेखक रचनात्मक तत्वों को अपनी चेतना का एक अंश बनाता है और कुछ समय तक ये अनुभव अंतर्निहित हो जाते हैं, लगभग अदृश्य। इस बीच कई अन्य तत्व प्राथमिक अनुभव को नया रूपाकार देते रहते हैं ओर सही समय में, रचना के रूप में उसका पुनर्जन्म होता है, जिस 'अनुभव की पुनर्रचना' भी कहा जाता है। इस प्रक्रिया में लेखक का सर्जनात्मक व्यक्तित्व सबसे महस्तपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। इसलिए एक ही दृश्य विभिन्न लेखकों द्वारा पृथक रूपों में आता है।"[2]

वास्तव में लेखक अपने समाज से विचार और मान्यताएँ ग्रहण करता है और उन्हें तराशकर कृति का आकार देता है। दूसरे शब्दों में कहें तो साहित्य संघर्ष को वाणी देता है, बेज़ुबान लोगों की जुबान

---

1 साहित्यकार का मर्म आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी पृ. 70

2. रचना और राजनीति प्रेमशंकर पृ. 11, प्र.सं. 1999

बनता है। समाज के बदलाव के अनुसार लेखक के व्यक्तित्व में भी बदलाव आता है। यानी सामाजिक परिस्थिति सृजनधर्मिता को बदलती है। इसीलिए समय की माँग के अनुसार, काल की अनिवार्यता के अनुसार लेखक के कृतित्व में बदलाव आता है। साहित्य के इतिहास का पुनर्पाठन इसका साक्षी है (किसी भी भाषा के साहित्य का)। तभी तो राजाओं के शासन के समय की रचनाएँ लोकतंत्र के ज़माने की रचनाओं से भिन्न हैं। आज़ादी के पहले और बाद की रचनाओं की विविधता भारतीय समाज में हुए बदलाव के चिह्न हैं। इसीलिए तो किसी वाद के पीछे भागनेवाले लेखक ने फिर वाद को छोड़कर समाज के निम्नतम वर्गों के मनुष्यों की ओर अपनी नज़र लगायी जिनके अनुसार सृजन एक सामाजिक दायित्व है। प्रगितशील लेखक संघ ऐसे लेखकों की जमावट है। समाज के प्रति अपने दायित्व को निभाने के लिए लेखकों को पहले स्वयं स्वाधीन होना है सभी प्रकार की गुलामी चिन्ताओं से उसकी संपृक्ति समाज की ज़रूरतों से होनी चाहिए। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए उसे समाज की पुरानी मान्यताओं, धारणाओं को शायद तोड़ना-छोड़ना पडेगा। "सर्जनात्मक व्यक्तित्व मूलतः स्वाधीन होगा और स्वाधीन होकर ही दायित्व का अनुभव किया जा सकता है।"[1] सृजनकार्य को धार्मिक माननेवालों को शायद लीक से हटकर चलना पडेगा।

साहित्यकार की साहित्यिकता को समझने के लिए उसके तत्कालीन समाज पर नज़र दौड़ना पडेगा। क्योंकि अपने समय की जाँच

1 समकालीन हिन्दी साहित्य विविध परिदृश्य : डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी - पृ. 37, द्वि.सं. 2000

है साहित्य। लक्ष्मीकांत वर्मा ने अपने काव्य संकलन 'कंचन मृग' की शुरुआत में कहा है - मैं ने केवल अपने युग के मारीच और उसके संदर्भ को प्रतिबिंबित करने की कोशिश की है। लीक से हटकर चलनेवाले सर्वेश्वर के व्यक्तित्व को पहचानने केलिए उनके समय और समाज को परखना पडेगा। क्योंकि "साहित्य का सृजन शून्य में नहीं होता है, जो तत्कालीन विचारकों तथा कथाकारों की रचनात्मक प्रक्रिया से धनिष्ठ रूप से संबन्ध रखता है।"[1] सन् 1927 में जन्मे सर्वोश्वर का रचनाकाल स्वातंत्र्योत्तर युग है। तबकी युगीन परिस्थितियों का आकलन आवश्यक है।

स्वातंत्र्योत्तर भारत के बदलते सामाजिक स्वरूप

15 आगस्त 1947 ई. को लगभग दो सौ पचास वर्ष की अंग्रेज़ी दासता के बाद भारत आज़ाद हुआ। स्वाधीन भारत की प्रधान चेतना उसके नव-निर्माण तथा विकास की थी और उसका लक्ष्य था एक शोषण-हीन, भेद रहित समाज की स्थापना समुन्नत, आत्म-निर्भर और गौरवशाली राष्ट्र का निर्माण। भारत को अपनी परंपरागत रूढियों, सामाजिक कुरीतियों, पिछडेपन, गरीबी व दैन्य से छुटकारा पाकर एक संपन्न एवं सम्मनित राष्ट्र के रूप में अपने को विश्वमानचित्र में स्थापित करना था।

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का प्रसार कश्मीर से कन्याकुमारी और कराची से रंगून तक के व्यापक विस्तृत भूभाग का स्पर्श करता था।

---

1 समकालीन हिन्दी साहित्य विविध परिदृश्य : डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी -पृ. 57, प्र.सं. 2000

किन्तु स्वातंत्र्योत्तर भारत के मानचित्र से कराची और रंगून के नाम काट दिए गए हैं। यह अंग्रेज़ों की कुटिल चाल की परिणति थी। आज़ादी की लड़ाई में समूचा राष्ट्र एकजुट होकर खड़ा हुआ था। शक्तिशाली अंग्रेज़ी साम्राज्य की सत्ता को चुनौती देकर भारतीय जनता ने अपनी एकता का प्रमाण दिया था। स्वाधीन भारत में परस्पर विद्वेष और सांप्रदायिक वैमनस्य के बीज बो दिए गए। विभिन्न धर्मों के प्रति भारतीयों ने जो साहिष्णुता दिखाई थी, वह अंग्रेज़ों के लिए हानिप्रद थी। अंग्रेज़ों ने 'फूट डालकर राज करने' की नीति के तहत सांप्रदायिकता के विष-वृक्ष का बीजारोपण किया। उस कुटिल चाल में अंग्रेज़ों को सफलता भी मिली। स्वतंत्रता के बाद यह विष-वृक्ष फलने-फूलने लगा जिसकी परिणति भारत और पाकिस्तान नामक दो हिस्सों में भारत के बँटवारे के रूप में हुई। एक ओर आज़ादी की खुशी थी तो दूसरी ओर विभाजन की त्रासदी। "आज़ादी मिलते ही जो भयंकर रक्तपात और संहार हुआ, उसमें शरणार्थियों के काफले ही नहीं आए बल्कि अपने देश, घर, परिवार में ही स्वयं आदमी शरणार्थी बन गया। ऊपरी सतह पर तो विकलांग और भयभीत शरणार्थी सीमाओं के पार से आए थे, पर आंतरिक स्तर पर एक बहुत बड़ा, समुदाय शरणार्थी बन गया था। वे सब लोग जो धर्म-निरपेक्षता में विश्वास करते थे, तथा जिन्होंने भारतीय एकता का स्वप्न संजोया था और जो उस माहौल में पैदा हुए थे, जहाँ, धार्मिक सहिष्णुता और उदारता एक बहुत बड़ा राष्ट्रीय मूल्य था वे विभाजन होते ही अपने आप में शरणार्थी बन गए थे।"[1]

---

1 कमलेश्वर नयी कहानी की भूमिका पृ. 58-59

स्वतंत्रता-प्राप्ति के तुरन्त बाद भारत के सामने अनेक समस्याएँ एक साथ आ खडी हुई। सबसे पहली समस्या जिसका तत्काल निवारण आवश्यक था, लाखों विस्थापितों के पुनर्वास की थी। दूसरी समस्या थी देशी राज्यों के विलिनीकरण ओर उनके संदर्भ में राष्ट्र की प्रशासनिक इकाइयाँ के निर्माण, विस्तार और पुनर्गठन की। इनके साथ समाज, शिक्षा, शासन, राष्ट्र, निर्माण आदि को लेकर अनगिनत आंतरिक समस्याएँ थीं। कितु आंतरिक समस्याओं से भयानक रूप था बाह्य समस्याओं का। स्वतंत्रता से केवल दो वर्ष पूर्व द्वितीय विश्वयुद्ध का अंत हुआ था। महायुद्ध की विभीषिका की अपेक्षा उसके अंत की विभीषिका अधिक भयावह थी। अण्वस्त्रों के आविष्कार ने विश्व के प्रत्येक व्यक्ति के अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न लगा दिया था। विश्व में दो सर्वाधिक समर्थ प्रतिद्वन्द्वी शक्तियाँ विकसित हो चुकी थीं - अमरीका और रूस। अमरीका पूँजीवादी देश है और रूस साम्यवादी। विश्व की दोनों शक्तियाँ प्रत्येक नवीन स्वतन्त्रता-प्राप्त राष्ट्र को अपनी ओर खींचकर अपना गुट मज़बूत बनाना चाहती थी ताकि संसार में सबसे अधिक साख-धाक उनमें से ही किसी एक की रहे। विश्व की बागडोर केवल अमरीका और रूस के हाथों में थी। भारतीय स्वतंत्रता के साथ, अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति का यह हाल था। भारत सुख और शान्ति के साथ आधुनिकतम समृद्ध और पूर्ण विकसित राष्ट्र के रूप में जीना चाहता था और इस प्रकार जीने की समस्या ही सबसे बडी समस्या थी।

स्वतंत्र भारत की आंतरिक समस्याएँ भी भयंकर थीं। विश्व के अनेक राष्ट्रों ने स्वातंत्र्य प्राप्ति से पूर्व रक्त बहाया है। भारतीय सरकार के सामने शरणार्थियों की समस्या सबसे विकट थी। "1959-60 ई. के अंत तक 392-94 करोड रुपए पाकिस्तान से आए हुए शरणार्थियों के पीछे खर्च किए गए थे।"[1]

औद्योगिक क्षेत्र में पिछडे हुए भारत में कुटीर एवं लघु उद्योगों की अवस्था भी चिन्त्य थी । साथ ही बेकारी, बढ़ती हुई जनसंख्या, शिक्षा, पिछडे वर्ग, विकलांग आदि की अनेक समस्याएँ देश की प्रगति को चुनौती दे रही थीं। अत: प्रबल पुरुषार्थ तथा वैज्ञानिक आधारों पर स्थित आयोजन द्वारा ही इन सामाजिक समस्याओं का हल किया जा सकता था। अत: भारत ने भी रूस के आदर्श पर योजनाबद्ध विकास द्वारा देशोत्थान की योजना बनायी। 26 जनवरी 1950 के दिन अपना संविधान प्रस्तुत करके प्रजातंत्रीय राज्य-व्यवस्था की घोषणा की जिससे प्रजा में आत्मविश्वास की भावना बढी।

सन् 1952 में प्रथम आम चुनाव के द्वारा देश ने लोकतंत्र का स्वागत किया। अपना शासक स्वयं चुनने के सुनहरे दिवा-स्वान दिखानेवाले राजनेताओं ने जनता को परिवर्तन का आश्वासन दिया। राजनेताओं के छल का शिकार होते समय जनता यह मान बैठी कि अब उसे राजा-महाराजाओं और सामंतों से मुक्ति मिल गई है। पर क्या वास्तव में उसे

---

1 के.के. देवत एण्ड जी.सी सिंह इण्डियन इकोनामिक्स पृ. 265

मुक्ति मिलि? वही नवाब, सामंत, साहूकार और शोषक देश-परिवर्तन कर नये-नये रूपों में जनता के सामने आए। "जिस आयोजन को ग्रामोन्मुख या समाजोन्मुख कहा जा रहा था.... वह नितांत पूँजीउन्मुख था।"[1]

देश के वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य की लक्ष्यहीनता, मूल्यहीनता, स्वार्थपरता, विद्रूपता आदि से स्वाधीन भारत के आदर्शवादी स्वप्न खंड-खंड होकर बिखर गये हैं। सुनिश्चित राजनीतिक उद्देश्यों के अभाव में सामान्य मानव विषाक्त जीवन व्यतीत करता हुआ नज़र आ रहा है। "स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् राजनीति धीरे-धीरे राष्ट्रीय सामाजिक जीवन से हटकर व्यक्तिगत योगक्षेम और स्वार्थपरता के पंक में लिप्त होने लगी और यह राजनीति उन नेताओं से शुरु हुई जिन्होंने स्वाधीनता आन्दोलन के समय में त्याग किया था। और अब वे स्वदेशी सरकार के महत्वपूर्ण पदों पर थे। लगता था जैसे वे अपने सारे त्याग का फल ब्याज सहित पा लेना चाहते हैं। स्वाधीन सरकार से आशा थी जैसा कि नेहरू ने कभी घोषित किया था) कि स्वाधीनता संग्राम के समय गद्दारी करने वाले अफसरों को चौराहे पर फाँसी लगा देंगे। किन्तु स्वाधीन सरकार की मशीनरी भी उन्हीं अफसरों और पुलिस से चलती रही। व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति तभी संभव हो सकती है जब अपना दल सत्ता में हो। लोकतांत्रिक पद्धति की सरकार तो बनी और उसके लिए चुनाव पद्धति भी स्वीकार की गई, किंतु प्रत्येक दल सत्ता प्राप्त करने के प्रयास में चुनाव के समय पैसा, पद, जातिवाद, क्षेत्रवाद आदि बुराइयों का खुलकर उपयोग करने लगा।"[2]

---

1 बटरोही कहानी संवाद का तीसरा आयाम पृ. 28
2. डॉ. रामदरश मिश्र हिन्दी कहानी अंतरंग पहचान पृ. 85

हमारा जीवन अस्त-व्यस्त हो गया है। दफतरों की लालफीताशाही, मंत्रियों के छल-कपट आदि देश के टूटने में मदद दे रही है। राष्ट्रीय प्रगति अवरुद्ध हो गयी है। आधुनिक राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में मानव स्वतंत्र होकर भी परतंत्र है। वह शासकों के अथवा अधिकारियों के हाथ की कठपुतली-सा बना हुआ है।

स्वातंत्र्योत्तर भारत के हर क्षेत्र में मानव मूल्य परिवर्तित, संक्रमित और विघटित हुए दृष्टिगोचर होते हैं। राजनीतिक अवसरवादिता, न्यायक्षेत्र की बेइंसाफी, अध्यात्मवाद की निश्चेष्टता, शासन की भ्रष्टाचारिता, अधिकारियों की निष्क्रियता, आपसी व्यवहारों की यांत्रिकता और भावशून्यता का मानव मन पर गहरा असर हुआ है। जीवन की अनिष्चितता, विपन्नता, बेरोज़गारी, अराजकता आदि प्रश्नों ने उसे विफल कर दिया है ।

विज्ञान की उपलब्धियों से प्रेरित व्यक्ति की बौद्धिक धारणा प्रबल हो उठी। वह अपने सजग अस्तित्व-बोध के कारण परंपरागत आदर्शों के बारे में प्रश्न करने लगा और उनमें परिवर्तन लाने की माँग भी करने लगा। आज़ादी के बाद संयुक्त परिवार की धारणाएँ बदलने लगीं; परिवारों के विघटन की स्थिति दृष्टिगोचर होने लगी।

स्वातंत्र्योत्तर भारत एक नवीन परिवर्तित रूप में हमारे सामने आता है, जहाँ एक ओर परंपरा से चले आ रहे संयुक्त परिवारों का विघटन हो रहा था और दूसरी ओर सामाजिक पारिवारिक संबन्धों के परंपराबद्ध रूप में परिवर्तन आ रहा था । परंपरा से विच्छिन्न होकर तथा

सभी प्राचीन मानव संबन्धों के मोहपाश से मुक्त होकर आज का व्यक्ति अधिकाधिक आत्मकेन्द्रित होता जा रहा है। यहाँ तक कि पिता-पुत्र, माँ-बेटी, पति-पत्नी या भाई-बहन जैसे निकटतम संबन्धों भी जैसे एक अजनबीपन समाता जा रहा है, जो एक दूसरे के पास रहते हुए भी बहुत दूर कर देता है। बढ़ती महँगाई अकाल, भुखमरी, बेरोज़गारी, आर्थिक समस्याएँ इन सबके बीच व्यक्ति अपनी आवश्यकताएँ भी पूरी नहीं कर सकता था। यही कारण है कि इसका अपने परिवार, पति-पत्नी, बाल-बच्छे से नाता टूट गया।

आज़ादी के बाद के वर्षों में भारत की जनता ने समझ लिया है कि सरकार चाहे कांग्रेस की हो या जनता पार्टी की, एक आम भारतीय की स्थिति में कोई फर्क नहीं पड़ता। पूँजीपतियों और नेताओं की सब धूर्तताओं को समझते हुए भी जनता कुछ नहीं कर पाती, उसके पास कोई विकल्प नहीं है। 'यह कुछ कर पाने की पीडा' उसे निरन्तर तोड़ती रहती है, उसके व्यक्तित्व का विघटन करती है। समस्त मूल्यों व आस्थाओं में से मानव का विश्वास टूटता जा रहा है और वह अन्दर ही अन्दर से खोखला होता जा रहा है। "आज बीसवीं शताब्दी समाप्त हो चली है। बीसवीं शताब्दी ने इंसान के मन में ज स्वप्न जगाए थे जो भ्रान्तियां उत्पन्न की थी, जो प्रत्याशाएँ पैदा की थी, वे सब एक-एक कर बुझ चली है। निर्भ्रान्त और आशारहित मनुष्यता आज किसी चौराहे पर नहीं बल्कि एक अंधी गली में खडी है जिससे बाहर निकलने का कोई रास्ता नज़र नहीं आता।"[1]

---

1. श्रीकांत वर्मा आधुनिक भारतीय लेखन का शंकर आलोचना जनवरी-मार्च 71 - पृ. 18

बीचरास्ते में खडे लोगों को राह दिखानेवाले हैं आज के साहित्यकार, ऐसा हम पूर्णतया नहीं कह सकते। पर कहीं के न रहनेवालों की विषमताओं को उभरनेवाले हैं आज के साहित्यकार। 'नहीं, मैं कोई धर्म नहीं मानती, मैं तथाकथित ऊँचे तबको को भी नहीं मानती। मेरा धर्म मानवता है, मैं न नारीवादी हूँ, न बौद्धिक। समाज की नाइन्साफी, औरत मर्द में विषमता, पुरुष-शासित समाज में औरत को दूसरे दर्जे से भी बदतर नागरिक बताये जाने से मेरा जी दुःखता है। मेरी लडाई इंसान से नहीं, उस व्यवस्था से हैं, जिसने इंसान को इन्सान नहीं रहने दिया है, मनुष्यता का गला घोंट दिया है।"[1]

परिवेश के प्रति सर्वेश्वर की प्रतिक्रिया

लेखक के जीवन पारिवारिक परिवेश और युगीन स्थिति का उसके साहित्य-सृजन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। किसी भी लेखक के साहित्य का विधिवत् अध्ययन करने के लिए आवश्यक है कि उसके जीवन और परिवेश के सम्यक अध्ययन किया जाय और उन स्रोतों की खोज की जाय, जिन्नने उसे साहित्य-सृजन के लिए उत्प्रेरित किया। क्योंकि वह परिवेश से रचना का प्रतिपाद्य ग्रहण करता है तथा रचना में उसकी पुनर्रचना कर पुनः उसे परिवेश को दे देता है। इस सारी प्रक्रिया में रचना और परिवेश का रिश्ता इस प्रकार तय होता है परिवेश से रचनाकार, रचनाकार से रचना और रचना से पुनः परिवेश।"[2]

---

1 तस्लीमा नज़रीन कथादेश अप्रेल 2004 पृ. 8, 9

2. परिवेश की चुनौतियाँ और साहित्य पृ. 10 हेतु भरद्वाप्त सं. 1984

वास्तव में सृजन लेखक के एकान्त क्षणों में होता है। और वह अपने मन की तृप्ति के लिए, अपनी भावना के अनुसार लिखता है। किन्तु इन क्षणों में भी उसका परिवेश उसके काल्पनिक चित्रों में विद्यमान रहता है।

लेखक का धर्म सहज मानव धर्म और लेखक की विजय का अर्थ मानव नियति की व्यापक स्तर पर विजय माननेवाले सर्वेश्वर ने अपने परिवेश और भोगे हुए यथार्थ को अपनी रचनाओं में उभारा। विभिन्न परिस्थितियों में जन्मे और पले साहित्यकार का व्यक्तित्व उसके साहित्य में प्रतिबिंबित होता है। इसलिए उसके साहित्य का मूल समझने के लिए उसके व्यक्तित्व को पहचानने की ज़रूरत है।

जीवन वृत्त

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का जन्म 16 सितंबर, 1927 ई. को बस्ती (उ. प्र.) जिले के पिकोरा गाँव में हुआ। उनका बचपन हरे-भरे खेतों, तालों और फूलों भरे गाँवों में बीता। "इन खेतों, मैदानों, तालाबों, फूलों, पगडंडियों, नदियों, पशु-पक्षियों का उसके ऊपर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उनके सृजन में यह सब अनेक रुपों एवं छवियों में दिखाई देता है। ग्रामीण युवा का मौजभरा, लापरवाही वाला, जोखिम झेलनेवाला अल्हडपन और बाद में पोदफन ही उनके रचनाकार में बने रहे। इन ग्रामीण संस्कारों ने उन्हें हरवाहों, चरवाहों, किसानों, मज़दूरों से तादात्मीकृत कराकर रखा था।"[1]

---

1 सर्वेश्वर दयाल सक्सेना अहिंसा मत चलो दौडो डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल भाषा सितंबर 1984 पृ. 90

सर्वेश्वर ने स्वयं लिखा है "कस्बेनुमा छोटे से शहर के बाहर, चारों तरफ दूर-दूर तक फैले खेतों, तालों और छोटे-छोटे गाँवों के बीच बचपन बीता, जिसमें खेतों की भेडों, घर के आसपास अनाथाश्रम के बच्चों के अलावा आर्थिक संघर्ष से उत्पन्न पारिवारिक कलह भी बचपन के साथी रहे। माता अस्वस्थ और अर्थ संकट से लडती हुई अंत तक अध्यापन का कार्य करती रही। पिता भी अध्यापक रहे।"[1]

भारतवर्ष में कायस्थ जाति सदैव से कलम की धनी रही है। इन लोगों में कृषि आदि से कहीं अधिक लगाव कोर्ट और कचहरियों से रहा है। कुछ समय पहले तक कोर्ट कचहरियों के सारे कागजात इन्हीं लोगों के हाथों में होते थे। स्वर्गीय हरदयालजी एक दिन इन्हीं कार्टों में काम करते हुए पश्चिमी उत्तर प्रदेश से बस्ती आ पहूँचे। फिर तो काफी दिनों तक वे यह कार्य करते रहे। कुछ आर्थिक विपन्नता, कुछ बस्ती के लगाव के कारण वे पुनः अपने जन्मस्थान वापस नहीं लौटे, वैसे शादी-विवाह में आना-जाना बराबर लगा रहा, उस समय वे बस्ती शहर के ही माल्वीय रोड़ से सटे हुए गाँव 'पिकौरा शिवगुलाम' में अपने पुत्र विश्वेश्वर के साथ रहते थे। आर्थिक परिस्थिति अच्छी न होने के कारण विश्वेश्वर जी को ऊँची शिक्षा न मिल सकी। उस समय देश में स्वतंत्रता की लहर ज़ोरों पर थी। विश्वेश्वरदयाल भी उस विचारधारा से काफी प्रभावित हुए। इसीलिए उन्होंने आर्यसमाजी ढंग से अपना विवाह किया । विमला जी

---

1 तीसरा सप्तक 206, तृ.सं. 1967

का नैहर जानसठ कसबा जिला मुज़फर नगर उत्तरप्रदेश में था। इनकी शिक्षा-दीक्षा जालन्धर में हुई।

विश्वेश्वरदयाल जी काफी पक्के विचारों के थे। उनकी पहली ज़िद सरकारी नौकरी न करने की थी और इसे उन्होंने जीवन भर निभाया। जीविका के लिए उन्होंने वैदिक पुस्तकालय की दुकान खोली, पर कुछ दिनों बाद वह फोटो फ्रेमिंग में बदल गयी, इसी प्रकार वे अपना पेशा बदलते रहे। वास्तविकता यह थी कि वे किसी काम को अधिक समय तक नहीं कर सकते थे। जब उनके प्रतिद्वन्द्वी तैयार हो जाते थे तो वे पुराना धन्धा छोडकर नये में शरीक हो जाते थे। यही क्रम जीवनपर्यन्त चलता रहा। वे पब्लिक हाईस्कूल, बस्ती में अवैतनिक बडे बाबू भी रहे। उनके मित्रों में परमात्माप्रसाद वकील, बाबु कटेश्वरनाथ (जिनके नाम से बस्ती का कटेश्वर पार्क है), पंडित धर्मनार्थ आदि थे।

विश्वेश्वर जी की पत्नी कन्या विद्यालय, जालंधर की पढ़ी थी। अतः उन्हें यहाँ गर्ल्स हाईस्कूल में अध्यापन का कार्य भी मिल गया। विश्वेश्वरदयाल अब भी मालवीय रोड़ से सटे गाँववाले मकान में ही रह रहे थे। यहाँ सर्वेश्वरदयाल जी का जन्म 1927 को हुआ। फलतः इनकी प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा भी बस्ती में हुई। जब वे यहाँ के गवर्नमेण्ड हाइस्कूल की नवीं कक्षा में पढ रहे थे, राजनीतिक चुहलबाजी के कारण उन्हें कॉलेज से निकाल दिया गया। फिर तो सर्वेश्वर को ऐंगलो संस्कृत हाईस्कूल, बस्ती के प्रधानाचार्य चक्रवर्ती ने शरण दिया। इसी विद्यालय से सर्वेश्वर ने हाईस्कूल की परीक्षा सन् 1941 में उत्तीर्ण की।

अभी तक उनके के पिता ने बडी मेहनत से मालवीय रोड से सटे, अनाथालय के बगल में एक छोटा सा घर बना लिया था। इसी नये घर में सर्वेश्वर के छोटे भाई श्रद्धेश्वर तथा छोटी बहन का जन्म हुआ। इधर सर्वेश्वर जी की माँ का तबादला बस्ती से बाँसगाँव और वहाँ से थोडे दिन बाद ही बनारस हो गया। सर्वेश्वर भी अपनी माँ के पास बनारस पहूँच गए। दो वर्ष बाद सन् 1943 में उन्होंने क्वीन्स कॉलेज बनारस से इन्टर की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् 1944-45 में आर्थिक विपन्नता और बहन की शादी केलिए पैसा इकट्ठा करने की नीयत से पढ़ाई छोड़ दी। वास्तव में सर्वेश्वर की आर्थिक स्थिति कभी अच्छी नहीं रही, फिर भी किसी तरह उन्होंने अपनी बहन का विवाह सन् 1946 में शाहजहाँपुर में किया। इस समय वे बस्ती में इण्डर कॉलेज में साठ रुपए की नौकरी कर रहे थे, जबकि उन्हें चालीस रुपए ही मिल जाते थे। सर्वेश्वर बहुत दिन तक बस्ती न रह सके। उनके हृदय की उत्कट अभिलाषा आगे बढ़कर कुछ कर गुज़रने की थी, फलतः वे बस्ती से इलाहाबाद पहूँच गए। वहीं से उन्होंने बी.ए. और सन् 1949 में एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् 1949 का वर्ष सर्वेश्वर के जीवन के लिए जितना आनंददायक था उतनी ही मर्मान्तक पीड़ा भी पहूँचाने वाला था। उनकी प्यारी माँ अपने बुरे स्वास्थ्य और पारिवारिक विपन्नता से जूझती हुई उसे हमेशा केलिए बिछड गयी। सर्वेश्वर घोर दुःख और विपन्नता को झेलते हुए दो-चार महीनें तक अपने पिता के साथ बस्ती में किसी प्रकार रहे। यहीं उन्होंने ताराशंकर नासाद के साथ 'परिमल' की स्थापना की। तभी ए.जी. ऑफिस इलाहाबद के सेक्रेटरी द्वारा तार देकर सर्वेश्वर को बुलाया गया।

सर्वेश्वर इलाहाबाद पहूँच चुके ते। वहाँ का ए. जी. ऑफीस सर्वेश्वर के लिए वरदान सिद्ध हुआ, वे वहाँ प्रमुख डिस्पैचर के पद पर कार्य कर रहे थे, पर प्रमुख अधिकारी इनकी साहित्यिक गतिविधियों से प्रसन्न रहा करता था। यही कारण था कि वहाँ उन्हें वही स्वतंत्रता मिली और यह स्वतंत्रता उनके साहित्यिक क्रियाकलापों के विकास में अत्यंत सहायक सिद्ध हुई। वे वहां सन् 1955 तक रहे, तत्पश्चात ऑल इंण्डिया रेडियो के सहायक संपादक (हिन्दी समाचार विभाग) पद पर कार्य करने लगे। यहाँ वे सन् 1960 तक रहे, इसी बीच सन् 1957, 11 सितंबर को इनकी पहली पुत्री शुभा का जन्म हुआ, परंतु इसी समय 1957 में ही उनके पिता का देहान्त बस्ती में हो गया। सन् 1960 के बाद वे दिल्ली से लखनाउ रेडियो स्टेशन पर आ गये। यहाँ वे सन् 1964 तक रहे, इसी बीच कुछ अरसे तक के लिए वे इन्दौर और भोपाल भी रहे। 25 अप्रैल सन् 1962 को इनकी छोटी पुत्री विभा का जन्म हुआ। सन् 1964 में जब 'दिनमान' पत्रिका निकली तो अज्ञेय के आग्रह पर अपने पद से इस्तीफा देकर वे पुनः दिल्ली आ गए और अज्ञेय के साथ 'दिनमान' में कार्य करने लगे। कुछ दिन सहायक संपादक रहे और बाद में वे उसके उप-प्रमुख संपादक हो गए। नवंबर 1982 से वे पराग के संपादक हो गए और मृत्युपर्यंत 23 सितंबर 1983 तक उसी पद पर रहे।

व्यक्तित्व

अपना परिचय देते हुए स्वयं सर्वेश्वर ने कहा है, "अपना परिचय देते समय पहली घोषणा जो मैं करना चाहता हूँ वह यही कि यहाँ

सभी शीशे बेढंगे हैं, सबमें बल पडे हैं, अतः किसी से भी मेरा सही परिचय आपको नहीं मिल सकता।"[1] स्वभाव से मिलनसार, लेकिन अपनी लीक पर चलनेवाले, किसी की नकल न करनेवाले सर्वेश्वर स्वयंको संस्कार, रुचि, विचार आदि में दूसरों से भिन्न पाते हैं और इसी कारण से दूसरों के साथ चलने में मुश्किल भी महसूस करते हैं।

बचपन से लेकर उनके तीन साथी रहे हैं विपत्ति, संघर्ष और निराशा। इसीलिए खरी बात कहने में सबसे आगे रहे हैं चाहे वह साहित्य के माध्यम से हो या न हो-

'जब सब बोलते थे
वह चुप रहता था
जब सब चलते थे
वह पीछे हो जाता था
जब सब निढ़ाल हो सोते थे
वह शून्य में टकटकी लगाए रहता था
लेकिन जब गोली चली
तब सबसे पहली वहीं मारा गया।"[2]

सर्वेश्वर बनावट को अपना शत्रु मानते हैं - बनावट वह अपने आपमें हो या दूसरों में, सहनीय नहीं है। "बनावट मेरा सबसे बडा शत्रु है। इसे न अपने में पनपने देता हूँ, न दूसरों में स्वीकार करता हूँ। जो कुछ करता हूँ सोच समझकर करता हूं, इसीलिए कभी पछताना नहीं

---

1 सर्वेश्वरदयार सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन, प्र.सं. 1992 पृ. 10

2. खूँटियों पर टँगे लोग सर्वेश्वरदयाल सक्सेना पृ. 36, तृ. सं. 1991

पड़ता। जिस काम को करके पछताना पडे, उसे ही मैं बुरा काम मानता हूँ। साफ बात कहता हूँ, साफ बात पसन्द करता हूँ ।"[1]

कवि कुँवरनारायण ने कहा है, "वह सर्वेश्वर नहीं जो प्यार और घृणा, आदर और अनादर, दोनों ही को अतिशयोक्ति की सीमा पर न पहूँचा दें। इसके बावजूद अंदर से वे कहीं बहुत ही निष्कपट और सरल स्वभाववाले व्यक्ति थे। जो जिस समय महसूस करते, उसे उसी समय धटक प्रकट कर देते थे। बिलकुल बच्चों की तरह खुश होते और उन्हीं की तरह रुष्ट।"[2]

भोग हुआ यथार्थ, जो सर्वेश्वर की रचनाओं में अनुभूत होता है, उसके पीछे उनका अपना अभावों से जुझता बचपन है। आर्थिक संघर्ष और स्थितियों को सोचने-समझने के पीछे विचारों के छोटेपन के कारण परिवार में हमेशा कलह रहा जिसका वे बचपन से ही मौन दर्शक रहे।

पिता साधारण तुकबन्दी करते थे। माँ को कहानियों का शौक था। सर्वेश्वर को क्या बनाएँगे, इस बात पर दोनो बहस करते थे। पिता को खुश रखने के लिए उन्होंने कवि बनना चाहा तो माँ को परेशान होते देख कहानीकार। आज तो वे दोनों है, पर उनका मानना है कि उस रूप में माँ-पिता दोनों पसंद नहीं करते होंगे।

---

1 सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन, पृ. 11

2. 'आज और आज से पहले कुँवर नारायण पहला सं. 1998 पृ. 209

अपने गार्हस्थ्य जीवन पर वे कहते हैं, 'माँ की इच्छा, माँ की पसंद से शादी की। पत्नी के साथ बस पति जैसा रिश्ता रहा, प्रेम भी उतना ही रहा। बच्चों ने जन्म लेकर उस रिश्ते को सहारा दिया, संभाला। पत्नी की मृत्यु पर एक ओर अकेला हो गया तो दूसरी ओर जैसे गृहस्थी के बन्धन से आज़ाद भी हो गया। फिर शादी करने की बात मन में आयी ही नहीं। खाली बच्चों से बंधना एक तरह का बंधना होता है। पत्नी हो तो वह बंधना कुछ और दूसरी तरह का होता है। आखिर हमारा इतना वैचारिक मेल भी नहीं था। जीवन कभी मेरे चुप लगा जाने कभी उसके चुप लगा जाने, कभी-मेरे अकुलाने-घुटने और कभी उसके अकुलाने-घुटने से कट रहा था। उसने मुझसे कहीं ज़्यादा सहा होगा ऐसा मेरा अनुमान है। इसलिए दुबारा शादी का सवाल नहीं उठा। कोई ऐसा मिला भी नहीं, जिसे पत्नी-रूप में पाने की आकुलता या विवशता अनुभव होती। बचपन में घोर, पारिवारिक कलह से भी मैं अपने बच्चों को मुक्त रखना चाहता था और उन्हें वह आर्थिक संकट भी नहीं झेलने देना चाहता था जो मैं ने झेला था।"[1]

सर्वेश्वर का व्यक्तित्व गहन चिंतन, विनम्र सौजन्य और कर्म-साधना से परिपूर्ण था। उनके स्वभाव के विषय में 'तीसरा सप्तक' में कहा गया है, स्वभाव से न अच्छा न बुरा, बाहर से गंभीर, सौम्य, पर भीतर वैसा नहीं। विपत्ति, संघर्ष, निराशाओं से घनिष्ठ परिचय के कारण

---

1 भवानीप्रसाद मिश्र सर्वेश्वरदयाल सक्सेना अंतरंग साक्षात्कार कृष्णादत्त पालीवाल, प्र.सं. 1988 पृ. 48-49

ज़रूरत पड़ने पर खरी बात कहने में सबसे आगे। अपनों के बीच बेगानों सा रहने की और बेगानों को अपना समझने की मुख्य आदत थी, काहिली, चुस्ती, सोचना अधिक, करना कम, अपनी लीक पर चलना और किसी की परवाह न करना ये उनके मुख्य दोष हैं, दूसरों की दृष्टि में। आकांक्षा कुछ ऐसा करने की, जिससे दुनिया बदल सके। मन का असंतोष और मित्रों का सहयोग उनकी संपत्ति थी।"[1]

राजनीति से सर्वेश्वर का कोई गहरा संपर्क नहीं था। बस्ती में क्रांतिकारियों के प्रति रुमानी रूझान था। उनका साहित्य पढ़ता था। उन जैसा बनने की सोचता था पर माँ की नौकरी छूट जाने की आशंका से क्रांतिकारी नहीं बना। लेकिन राजनीति में सक्रिय भाग लेने वाले उनके घनिष्ठ मित्र रहे हैं। 'इलाहाबाद विश्वविद्यालय के दिनों में जितेन्द्रसिंह और विजयदेव नारायण सभी मेरे अभिन्न थे। दोनों ही लोहियावाथी थे। उन दिनों मैं 'परिमल' का सदस्य था। ये दोनों भी 'परिमल' में थे। राजनीतिक चेतना का बहुत कुछ इन दोनों से उन दिनों छनकर मेरे पास आता था और अक्सर उसका असर कविताओं में भी दिखता था।"[2]

कृतित्व

"मेरे लिए लेखक का धर्म सहज मानव का धर्म है, सहज स्वीकृति सहज समर्पण का धर्म। इसके लिए मैं जिस कृत्रिम आदमी से

---

1 तीसरा सप्तक पृ. 220

2. भवानीप्रसाद मिश्र सर्वेश्वरदयाल सक्सेना अंतरंग साक्षात्कार कृष्णादत्त पालीवाल -पृ. 47 प्र.सं. 1988

लड़ रहा हूँ उसे परास्त कर देना ही मेरे लेखक की विजय है। लेखक की विजय का अर्थ है मानव नियति की एक व्यापक स्तर पर विजय।"[1] इसलिए सर्वेश्वर की मानवीय सहानुभूति केवल भोगे हुए यथार्थ तक सीमित नहीं है, वह उपेक्षित, शोषित, दलित, सामान्य जन-जीवन की ओर उन्मुख होकर उनका संवेदनशील चित्रांकन करने में भी रस लेता है।

किसी वाद या किसी 'लेबुल' के आधार पर नहीं लिखते थे, जो भी लिखना वे चाहते थे, वही लिखा। "जो जीवन मैं जीता था, वही लिखता था। यही स्थिति आज भी है। किताबी कविता या दूसरों की मनचाही कविता मैं ने नहीं लिखी। राजनीतिक दलों का आदमी था नहीं, कोई साहित्यिक आंदोलन भी मुझे नहीं चलाना था। दोनों के साथ रहकर भी अलग रहता है। मोर्चे पर कभी मैं नहीं रहा।"[2]

सर्वेश्वर का कृती व्यक्तित्व कवि, कहानीकार, उपन्यासकार, अनुवादक, नाटककार, संपादक, रंग-समीक्षक, कला समीक्षक, निबन्ध लेखक, पत्रकार आदि अनेक छवियों में उभरता रहा। अपने आपको वे एक प्रत्येक विधा के लेखक नहीं मानते। कवि हैं या कथाकार ऐसे सवाल भी वे पसन्द नहीं करते। "एक विधा से दूसरी विधा के बीच दीवार नहीं होती। रचते समय सबके साथ एक-सी ज़िम्मेदारी होती है और एक-सा सुख या दुख ही उभरकर छूता है तो कविता बन जाती है और जब बात

---

1 सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 13

2. भवानीप्रसाद मिश्र : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना अंतरंग साक्षात्कार कृष्णादत्त पालीवाल - पृ.. 49

भी अपना अलग रंग फेंकती है तो कहानी और जब बात सामाजिक राजनैतिक मोड़ लेकर आज के सवालों से मुखातिब होती है तो नाटक लिखना ज़रूरी लगता है।"[1]

सर्वेश्वर ने पहली कविता 1941 ई. में लिखी थी जो 'आर्यमित्र' (लखनउ) में प्रकाशित हुई जब वे नवीं कक्षा का छात्र थे। उनका व्यवस्थापित रूप से काव्य-सृजन 1949 ई. से प्रारंभ होता है। 1951 ई. में सर्वेश्वर की कविताएँ 'प्रतीक' में प्रकाशित हुई। उनकी पहली कहानी 'क्षितिज के पार 1942 में शंभूनाथ सिंह द्वारा संपादित क्षत्रिय मित्र' में छपी, बाद में वह 'माया' में भी छपी थी।

कवि रूप में सर्वेश्वर को अज्ञेय जी ने (तीसरा सप्तक' (1959 ई.) में स्थान दिया और तब से उनकी चर्चा नये कवियों में होने लगी। इसके बाद उनके कविता-संग्रहों के प्रकाशनों का क्रम शुरु हुआ। उनके कविता संग्रह हैं

1 काठ की घटियां (1959)
2. बाँस का पुल (1963)
3. एक सूनी नाव (1966)
4. गर्म हवाएँ (1969)
5. कुंआने नदी (1973)

---

1 भवानीप्रसाद मिश्र सर्वेश्वरदयाल सक्सेना अंतरंग साक्षात्कार कृष्णादत्त पालीवाल - पृ.. 52

6. जंगल का दर्द (1977)

7 खूँटियों पर टँगे लोग (1982)

8. क्या कहकर पुकारूँ (प्रेम कविताओं का संग्रह, मृत्यु के बाद 1985 में प्रकाशित)।

सर्वेश्वर ने बाल कविताएँ भी लिखी हैं 'जो बतूता का जूता' और 'महँगु की टाई' संग्रहों में प्रकाशित है।

सर्वेश्वर ने पहली कहानी 'क्षितिज के पार' 1943 ई. में लिखी थी जो क्षत्रिय मित्र' (वाराणासी) में प्रकाशित हुई थी। इस कहानी में प्रथम प्रेम का चित्रण किया गया है। उनके तीन कहानी संग्रह है 'कच्ची सडक', 'अँधेरे पर अंधेरा' और 'बदला हुआ कोण' जिनमें कुल 61 कहानियाँ हैं। 5 बाल कथाएँ भी हैं। उनके तीन उपन्यास हैं 'सूने चौखटे' 'सोया हुआ जल' और 'पागल कुत्तों का मसीहा।'

'नाटक के क्षेत्र में भी उनका महत्वपूर्ण योगदान है। "उन्होंने पहला एकांकी 'ज़िन्दगी की लौ' 1948 में लिखा। इसके कुछ ही दिन बाद 'मौत की घाटी' नामक एकांकी लिखा। ये दोनों ही एकांकी 1948 में, इलहाबाद की किसी प्रदर्शिनी में मंचित किए गए। लेकिन आज ये एकांकी उपलब्ध नहीं है। 1948 ई. में इलाहाबाद में 'इंडियन नेशनल थियेटर' की स्थापना की गयी, जिसके सर्वेश्वर सचिव मनोनीत किए गए। इसके बाद इनके नाट्य लेखन में एक लम्बा अन्तराल आया। फिर आठवें दशक में आकर वे नाट्य लेखन में सक्रिय हुए।" उनकी नाट्य कृतियां इस प्रकार है।

1 नाटकताक ,सर्वेश्वर धीरेन्द्र शुक्ल -प्र.सं. पृ. 28

नाटक

बकरी

लड़ाई

अब गरीबी हटाओ

हवालत

हिसाब   किताब

नुक्कट नाटक

मर गया ले जाओ

नृत्य नाटिका

होरी धूम मच्योरी

रूपमती - बाजबहादुर

सावन घन आए

रक्षा बन्धन

रेडियो रूपक

पीली पत्तियाँ

चाँदी का वर्क

दो चीनी औरतें

यहाँ हम एक हैं

बर्फ ने कहा

राजकीय सुक्ष्म यंत्रशाला

धनियां

रामकृष्ण परमहंस

पाँच मिनट का नाटक

वे क्या सोचते हैं

एकांकी

बुद्ध की करुणा

सत्यवादी गोखले

बाल-नाटक

कल भात आएगा

हाथी की पों

अनाप-शनाप

भों भों खों खों

लाख की नाक

और इसके साथ-साथ रंगमंच पर लिखे गए अस्सी से ज़्यादा निबन्ध भी हैं।

निबन्ध

उनके निबन्धों में उनका अपना परिचय देनेवाले आत्मलेख हैं, साहित्यिक निबन्ध हैं, संस्मरणात्मक लेख हैं, नृत्यकला पर आधारित लेख हैं, संगीतकला पर लिखे गए लेख हैं, फुटकर लेख हैं, रूस-यात्रा संबंधी यात्रा-वृत्त है जिसका नाम 'कुछ रंग कुछ गंध' है।

पत्रकारिता

'चरचे और चरखे' स्तंभ के ज़रिए साहित्य, राजनीति, कला, संस्कृति, संगीत पर बेबाक टिप्पणियाँ लिखकर हिन्दी साहित्य और पत्रकारिता को समृद्ध किया।

56 वर्ष के जीवन-काल में सर्वेश्वर ने जो कुछ सुना, गुना, लिखा, सब मानवता से संबद्ध था। उनका साहित्य उनका जीवन है। उनके लिए लिखना भोगी हुई स्थितियों से उबर जाना है। "दोहरी ज़िन्दगी बिताता हूँ; एक समर्पण की एक विद्रोह की, एक यथार्थ की एक कल्पना की, एक भावना के स्तर पर एक विचारों के स्तर पर। दोनों स्तरों को एक कर देने का संघर्ष निरंतर बना रहता है और उसी तनाव की स्थिति में लिखना पड़ता है। पहले स्तर पर मैं अपनी विवशताओं से बंधा हूँ, निरंतर घुटन का अनुभव करता हूँ, दूसरे स्तर पर में मुक्त रूप से हूँ संपूर्ण अस्तित्व के साथ हूँ, खुली सांस लेता हूँ। सामाजिक नियति से बंधे आदमी का धर्म और देश काल की सीमा से उठकर लेखक का धर्म दोनों ही मेरे हैं। एक मुझसे बंधा गया है एक से मैं बंधा हूँ। मुझमें इतनी सामर्थ्य नहीं है कि दोनों को एक कर दूँ। दो विपरीत शक्तियाँ मुझे निरंतर अपनी-अपनी ओर खींचती है और उस गहन यातना के क्षणों में मेरी हर कराह हर चीख मेरा साहित्य है।"[1]

सर्वेश्वर के गद्यों को काव्यमय कहने में कोई गलती नहीं है। "वे अपने गद्य लेखन में भी कवि व्यक्तित्व को सहयात्री बनाये रखते हैं।"[2] 'दरअसल अलग-अलग विधा में लिखने का कोई सृजनात्मक विषय नहीं होता कहानीनुमा कविता, कविता नुमा कहानी आखिर होती है

---

1 सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ट तीन पृ. 12, 13

2. सर्वेश्वर मुक्तिबोध और असेय डॉ. कृपाशंकर पाडेय प्र.सं. 1997 पृ. 31

और नाटक भी कब कविता-कहानी से दूर का रिश्ता रखता है मेरी मूल प्रकृति कविता की है।"[1]

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की रचनाओं की संवेदना

"जिस संकट से हमारा देश गुज़र रहा है और व्यवस्था, अशिक्षित, तनमन से कमज़ोर, जातपांत, संप्रदाय, क्षेत्रीयता से ग्रस्त जनता के असन्तोष को जिस तरह गोली, लाठी, अश्रुगैस से दबा रही है वैसी स्थिति में कविता लिखना सुखद कार्य नहीं है। लेकिन सच्चाई यही है कि कविता ऐसी स्थिति में लिखी जा रही है। आज़ादी के 25 साल बाद आम आदमी हर तरह से और विपन्न ही हुआ। हर तरह से वह टूटा है। सबने अपने मतलब से उसे छला है। सत्ता और राजनीतिक दल सबसे वह ऊब चुका है। उसका विश्वास सब पर से उठ चुका है। महंगाई, गरीबी उसे तोड़ चुकी है उसकेलिं ज़िन्दा रहने और आगे बढ़ने का कोई रास्ता नहीं है। मैं उस आदमी के साथ उसकी यातना में खड़ा हूँ। संवेदना का कोई भी रास्ता दिखाई नहीं देता। जब कलम मेरे हाथ में है तो मैं उसे लेकर ही आम आदमी की लडाई में उसके साथ रहना चाहता हूँ।"[2]

आम आदमी के प्रति सर्वेश्वर के मन में जो संवेदना है, वही उनकी रचनाओं का मूल स्वर है। किसी राजनीतिक या धार्मिक पार्टी का

---

1. भवानी प्रसाद मिश्र ओर सर्वेश्वरदेयाल सक्सेना का अंतरंग सांक्षात्कार डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल पृ. 52
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड 3 पृ. 20

सदस्य बनकर नहीं, बल्कि अपने आप में जो आम आदमी है उसके प्रति प्रतिबद्धता के तहत वे रचना करते हैं। मैं किसी राजनीतिक दल का सदस्य नहीं हूँ क्योंकि कोई भी राजनीतिक दल आम आदमी के साथ नहीं है, उसका नाम भले ही हो। वह अपनी लडाई में अकेला है। मैं उसके साथ किसी राजनीतिक दल के नेता की तरह नहीं हूँ। न उनकी तरह उसका नाम लेता हूँ। मैं उसका नाम लेता हूँ क्योंकि वह मेरा ही नाम है। मैं भौतिक रूप से भी और संवेदना के स्तर पर भी उसकी यातना झेलता हूँ। अतः मेरी कविता उससे अलग नहीं हो सकती। जितनी ही उसकी लडाई साफ होती जाएगी उतनी ही मेरी कविता भी।"[1]

सर्वेश्वर और उनकी कविता

कवि रूप में सर्वेश्वर के अज्ञेयजी ने तीसरा सप्तक (1959 ई.) मे स्थान दिया और तबसे उनकी चर्चा नये कवियों में होने लगी। "कविता लिखना मुझे आसान लगता है। कम श्रमसाध्य है। चाहे तो इसे यह मान लेकि मेरी मूल प्रकृति कविता की है। अक्सर लोग मानते भी हैं। इसमें मुझे कोई एतराज नहीं।"[2]

अज्ञेय सर्वेश्वर को पहले कवि मानते हैं। इसका कारण वे बताते हैं, "उन्हें पहले कवि मानने में मैं उनकी रचना का मूल्यांकन नहीं,

---

1 सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड 3 - पृ. 20

2. भवानिप्रसाद मिश्र और सर्वेश्वरदयाल सक्सेना अंतरंग साक्षात्कार कृष्णदत्त पालीवाल प्र. सं. 1988 पृ. 52

बल्कि उनकी संवेदना के प्रकार का निरूपण करना चाहता हूँ। अनुभव का स्तर-भोक्ता संवेदना और भोग्य परिवृत्त के आपसी सम्बन्ध का स्तर-कविता का है, कवि को जिस सत्य से प्रयोजन है, वह उसी क्षेत्र का है। मैं कहना चाहता हूँ कि अपनी सामाजिक दृष्टि, और अपनी रचनाओं में स्पन्दनशील गहरी सामाजिक चेतना के बावजूद सर्वेश्वर को सर्वप्रथम अनुभव से प्रयोजन है; सन्दर्भ से केवल आनुषंगिक रूप से।"[1]

मूलतः सर्वेश्वर संघर्ष और विद्रोह के कवि हैं। उन्होंने जीवन के सतही यथार्थ की तलछट का चित्रण नहीं किया, यथार्थ की भीतरी पर्त को खोलने का हर संभव यत्न किया है। उन्हें राजनीतिक, आर्थिक विसंगतियों को समाज में व्याप्त पाकर इतनी तकलीफ है कि उनका माथा गरम रहता है। "वे डार्विन के विकासवादी सिद्धान्त के उस पक्ष से सहमत नहीं हो जाते कि 'शक्तिशाली जिएगा, गरीब या दुर्बल मरेगा'। इस बात की चुनौती ही उन्हें समाजवादी चिंतन मानववाद आदि की ओर ले जाती है।"[1]

'काठ की घण्टियाँ' 1949 से 1957 तक की रचनाओं का संग्रह है। इन कविताओं में वे एक ओर अपनी आत्मचेतना के प्रति अत्यधिक सजग प्रतीत होते हैं तो दूसरी ओर व्यापक समष्टिचेतना के प्रति उनका गहरा लगाव मन को आकर्षित करता है।

---

1 सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड एक पृ. 11,12

2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना अहिंसा मत चलो-दौडो डॉ. कृष्णदात पालीवाल, भाषा सितंबर 1984 पृ. 92

"मैं उस भटकती हुई प्यासी आत्मा का,
दर्द भरा संगीत हूँ, जो मुझे अपने सफर में
इस वीरान राह की, अन्धी चट्टानों पर,
खामोशी का ताज बनकर छोड गयी।"[1]

'बाँस का पुल' (1957-63) कवि सर्वेश्वर का दूसरा काव्य संग्रह है। इस काव्य संग्रह में आपका व्यक्तिगत चिन्तन, समष्टि चिन्तन में पूर्णरूप से परिवर्तित हो गया। युग की कसक इसमें वास्तविकता के साथ चित्रित हुई हैं।

"निडर आगे बढ़ों, तुम्हारी राह में एक छोटा-सा
बाँस का पुल है।"[2]

'एक सूनी नाव में' 1963 से 1966 तक की रचनाएँ संग्रहीत की गई है। इस काव्य संग्रह में कवि के निजी जीवन और समसामयिक, सामाजिक, राजनीतिक, जीवन की त्रासदी परस्पर गुम्फित है। इनकी कविताएँ राजनीति से भागती नहीं क्योंकि वह आज के जीवन का हिस्सा है। लेकिन राजनीतिक मतवाद से उनका अलगाव अवश्य है। आपके काव्य में इन्सान से बड़ा कुछ भी नहीं है, न ईश्वर न प्रवृति सबका कद उनके यहाँ एक है।

---

1 कविताएँ एक (काठ की घण्टियाँ) सर्वेश्वरदयाल सक्सेना पृ. 24

2. कविताएं एक (बाँस का पुल) सर्वेश्वरदयाल सक्सेना पृ. 176

मैं हँसता हूँ, गाता हूँ
रोता हूँ चीखता हूँ,
प्यार करता हूँ, गालियाँ देता हूँ,
लेकिन हर स्थिति में,
वैसे का वौसा ही रह जाता हूँ
जैसे मैं मुर्दों के बीच हूँ,
उन्हें ही उठा रहा हूँ, रख रहा हूँ,
उनसे ही लिपट रहा हूँ, लड रहा हूँ
उन्हें ही बाँध रहा हूँ,
छोड़कर आगे बढ़ रहा हूँ,
इस मृत नगर में"[1]

'गर्म हवाएँ' 1966 से 69 तक की रचनाओं का संग्रह है। इसमें कवि की कसक अंकित है। उनका भोगा हुआ सत्य इसमें उद्‌घाटित हुआ है। पत्नी की मृत्यु का गहन अवसाद इसमें दर्शाया जा सकता है। यह संग्रह उन्होंने अपने प्रिय मित्र एवं साथी श्री विजयदेवनारायण साही, तथा धर्मपत्नी श्रीमती विमला को समर्पित कर लिखा है। इसमें उनका व्यंग्य अधिक चुभीला, प्रतीक और अधिक सार्थक तथा बिम्ब बेहद गहरा होता गया है।

"मैं ने कब कहा-
मैं नया कवि हूँ।
इसी से जानता हूँ
सत्य की चोट बहुत गहरी होती है

---

1 कविताएं दो (एक सूनी नाव) सर्वेश्वरदयाल सक्सेना पृ. 45

मैं नया कवि हूँ   इसी से मानता हूँ
चश्मे के तले ही दृष्टि बहरी होती है,
इसी से सच्ची चोटें बाँटता हूँ-
झूठी मुसकानें नहीं बेचता ।"[1]

'जंगल का दर्द' कवि की कर्मयात्रा क पांचवॉ पत्थर है। जिस पर लिखा हर शब्द इन्सानी कारनामों की कुंजी है। कविने इसमें भेडियों से निपटने के लिए मशाल की बात कही है, विघटित मूल्यों के बीच निर्द्वन्द्व कर्म से जुड़कर गतिशील शुरुआत का आह्वान किया है। कवि के लिए रचना का अर्थ सार्थक ज़िन्दगी की खोज और मानव नियति की तलाश है।

"चट्टानों पर झिझोंड रहा है अपना शिकार,
काला तेन्दुआ,
चट्टानें चट्टानें नहीं रहीं
तेंदुओं में बदल गयी है।
एक तेंदुआ सारे जंगल को
काले तेंदुए में बदल रहा है।"[2]

'कुआनो नदी' उनकी काव्यसाधना का अनूठा संस्करण है। इस कविता पर सर्वेश्वर स्वयं कहते हैं, "इस कविता का प्रारंभ 3 सितंबर, 1972 को हुआ था और इसकी समाप्ति 1 दिसंबर 1972 को हुई। यह तीन कविताओं की एक श्रृंखला की अंतिम है। पहली कविता कुआनो नदी

---

1 गर्म हवाएँ सर्वेश्वरदयाल सक्सेना पृ. 26

2. जंगल का दर्द सर्वेश्वरदयाल सक्सेना पृ. 63, द्वि.सं. 1994

में देश की गरीबी का चित्रण है। दूसरी कविता कुआनो नदी के पार में देश में चारों ओर फैली हिंसा थी और तीसरी कविता कुआनो नदी खतरे के निशान पर, में उस उद्वेलन का जो सामाजिक परिवर्तन के लिए हिंसा का जवाब हिंसा ही देने के लिए आकुल हैं। देश की जेलों में 32 हज़ार युवक कैद हैं। इनपर आरोप है कि ये हिंसात्मक क्रांति द्वारा व्यवस्था को उलटना चाहते हैं। इस आरोप पर सैकड़ों युवक गोली के घाट उतारे जा चुके हैं। देश के मध्यमवर्ग का आदमी इन क्रान्तिकारी शक्तियों का साथ दे या न दे इस दुविधा में है। हिंसा का रास्ता उसे पसंद नहीं, पर कोई और चारा भी उसे नहीं दिखाई देता। वर्तमान समाज में अब सुधार की गुंजाइश नहीं है केवल आमूल परिवर्तन का ही विकल्प है। लेकिन पुरातन का मोह छूटता नहीं। कविता में उस आम आदमी की मनस्थिति का चित्रण है जो क्रान्तिकारी शक्तियों को न तो स्वीकार कर पाता है न अस्वीकार कर पता है।"[1]

स्वाभिमान से भरते हुए आदमी की,
एक उपेक्षा भरी हँसी,
बुलेट से ज़्यादा गहरा घाव करती है,
एक लाश की छाती
विजेता की छाती से ज़्यादा चौडी होती है ।"[2]

'खूँटियों पर टँगे लोग' 1976 से 1981 तक की रचनाओं का संकलन है। इन कविताओं में नियति और स्थिति को स्वीकार कर लेने

---

1 सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 20

2. खूँटियों पर टँगे लोग सर्वेश्वरदयाल सक्सेना पृ. 20

की व्यापक पीड़ा है। यह पीड़ा कवि के आत्म से शुरु होकर समाज तक जाती है और समाज से कवि के आत्म तक आती है, इस तरह कवि और समाज को पृथक न कर, एक करती हुई उसके काव्य व्यक्तित्व को विराट कर जाती है। कवि न खुद से काटकर समाज को देखता है, न समाज से काटकर खुद को।

‘मुझे यह मुक्ति नहीं चाहिए
अपने लिए आजाद हो जाने से बेहतर है
अपनों के लिए गुलाम बने रहना।”[1]

उनकी कविताएँ घोर सामाजिक-राजनीतिक यथार्थ-से जूझनेवाली कविताएँ है, अपनी कविताओं के द्वारा अपने क्रान्तिकारी के इच्छुक’ मन को वे प्रस्फुटित करते हैं।

“मेरा जूता
जगह-जगह से फट गया है
धरती चुभ रही है।
मैं रुक गया हूँ
जूते से पूछता हूँ
‘आगे क्यों नहीं चलते?
जूता पलटकर जवाब देता है
मैं अब भी तैयार हूँ।
यदि तुम चलो।
मैं चुप रह जाता हूँ

1 कुआनो नदी, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना तृ.सं. पुनर्मुद्रित 1994 पृ. 60

कैसे कहूँ कि मैं भी
जगह-जगह से फट गया हूँ।"[1]

सर्वेश्वर के लिए कविता उनकी अपनी संवेदना के ताल का फैलता और गहरा होता जल है। इसलिए भूख से पीडित व्यक्ति की पीडा से उनका मन मथित है।

"गोली खाकर
एक के मुँह से निकला-
'राम'।
दूसरे के मुँह से निकला 'माओ'।

लेकिन
तीसरे के मुँह से निकला-
'आलू।'
पोस्टमार्टम की रिपोर्ट है
कि पहले दो के पेट
भरे हुए थे।"[2]

कविता सर्वेश्वर के लिए इतिहास में नाम लिखाने का, धन और यश कमाने, समाज में प्रतिष्ठा बनाने का ज़रिया नहीं है। "वह एक ऐसा कर्म है जिससे मैं अपने लिए सार्थक होता हूँ अपने को पहचानने की कोशिश करता हूँ। अन्यथा मैं साधारण हूँ। साधारण बना रहना चाहता हूँ

---

1 खूँटियों पर टँगे लोग, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना पृ. 32
2. वहीं पृ. सं. 37

मैं अपनी कविता के द्वारा अपने ही हारे, थके, ऊबे, टूटे, निहत्थे लड़ते मन से बात करता हूँ।"[1]

सर्वेश्वर और उनका गद्य साहित्य

उनकी कविताओं में जो सामाजिक अन्तर्धारा बहती है, वही गद्य साहित्य में भी बहती है। उनके गद्य साहित्य में गूँजती सामाजिक यथार्थ आगे के अध्यायों में विस्तार से कहा गया है।

सर्वेश्वर की रचनासम्बन्धी मान्यताएँ

सर्वेश्वर अपने आपको प्रभाववादी लेखक नहीं मानते हैं। सब कहते हैं कि उनपर राममनोहर लोहिया की विचारधारा का प्रभाव है। पर सर्वेश्वर उनका इनकार करते हैं, "राम मनोहर लोहिया पर कविता लिखने मात्र से मैं लोहियावादी नही हूँ। न इसी कारण मेरी रचनाओं में लोहियावाद ढूँढना चाहिए।"[2] उनके अनुसार कवि के लिए हर आदमी बराबर है, और वह यह चाहता है कि गरीबी दूर हो, अन्याय शोषण खत्म हो। जब वह कहता है कि हिंसा का रास्ता गलत है, तो वही कहता है। कोई लोहिया, मार्क्स या गांधी उसके पीछे नहीं बोल रहा होता। क्योंकि यह बात अपनी संवेदना के बल पर अपने अनुभव से वह कहता है।

---

1 भवानीप्रसाद मिश्र सर्वेश्वरदयाल सक्सेना अंतरंग साक्षात्कार डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल - पृ. 56

2. वहीं पृ. 57

सर्वेश्वर के अनुसार उनकी कविताओं का कथ्य और रूप दोनों में बदलाव जीवन- यात्रा के बदलाव से ही जुडे होते हैं। क्योंकि कविता भीतर से उपजती है। अपनी रचना प्रक्रिया के बारे में वे कहते हैं, "मेरी सबसे बडी कमज़ोरी है, अनेक ऐसी स्थितियों से चिपके रहना, जिनका मेरे लिए कोई मूल्य नहीं है और फलस्वरूप निरन्तर एक तनाव के बीच जाना। वही तनाव मुझे लिखने को विवश करता है। मैं अपने उन कवि मित्र से सहमत हूँ जिन्होंने मेरे बारे में लिखा था कि मेरे लिए लिखना, भोगी हुई स्थितियों से उभर जाना है। कुछ थोड़ा-सा और जोडना चाहता हूँ। जिन स्थितियों में जिस स्तर पर मैं जीता हूँ, शायद अधिक आवेग के साथ। इस तरह दोहरी ज़िन्दगी बिताता हूँ, एक समर्पण की, एक विद्रोह की, एक यथार्थ की, एक कल्पना की एक भावना के स्तर पर एक विचारों के स्तर पर। दोनों स्तरों को एक कर देने का संघर्ष निरंतर बना रहता है और उसी तनाव की स्थिति में लिखना पड़ता है। पहले स्तर पर मैं अपनी विवशताओं से बंधा हूँ, निरन्तर घुटन का अनुभव करता हूँ, दूसरे स्तर पर मैं मुक्त रूप से हूँ, संपूर्म अस्तित्व के साथ हूँ, खुली सांस लेता हूँ। सामाजिक नियति से बंधे आदमी का धर्म और देश-काल की सीमा से उठकर लेखक का धर्म, दोनों ही मेरे हैं । एक मुझसे बाँधा गया है एक से में बंधा हूँ। मुझमें इतनी सामर्थ्य नहीं है कि दोनों को एक कर हूँ। दो विपरीत शक्तियाँ मुझे निरन्तर अपनी-अपनी ओर खींचती है और उस गहन यातना के क्षणों में मेरी हर कराह हर चीख मेरा साहित्य है। लेखक होना मेरा सबसे बडा दुर्भाग्य है। दोनों

स्तरों की इस दूरी को जो जितना ही कम करने में समर्थ होता है, वह मुझे उतना ही अपना लगता है, जो जितना ही बढ़ाता है वह मुझे उतना ही बडा शत्रु लगता है। ये दोनों ही मेरे लेखक का निर्माण करते हैं।"[1] समाज में जब अनचाही घटनाएँ होती हैं, तो उनके लेखक मन में तनाव उत्पन्न होता है। ऐसी स्थिति में उनके अन्दर कविता, कहानी, नाटक आदि जन्म लेते हैं।

इसलिए वे जनता के लिए नाटक लिखते है। देश के उन तीन चौथाई लोगों को वे जनता मानते हैं जो अशिक्षित हैं, किसान, खेतिहर, मज़दूर या मिल मज़दूर हैं। उनके अनुसार नाटक को जनवादी नाटक होना चाहिए। जनवादी नाटक से उनका मतलब यह है, "जनवादी नाटक को तमाम शोषण और अन्याय की बुनियाद में जाना होगा यानी वर्ग संघर्ष को समझना होगा, इस सारे अन्याय-शोषण के पीछे, सामाजिक बनावट और रिश्तों की बुनावट की नींव में जो आर्थिक आधार है, उस आर्थिक आधार के जो राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय सूत्र हैं इन सबको समझना होगा - इस तरह उस बुनियाद को समझकर ही जनवादी नाटक लिखा जा सकता है क्योंकि जनवादी-नाटककार इसे समझेगा नहीं, तब तक नाटक के द्वारा वह न कहीं पहूँच पाएगा न पहूँचा पाएगा।"[2]

बादों में बाँटकर साहित्य को परखने की रीति उन्हें कभी भी अच्छा नहीं लगा। अस्तित्ववाद का नये लेखन पर प्रभाव पर उनकी

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड 3 पृ. 12, 13
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड दो पृ. 272

टिप्पणी है, कवि केलिए अस्तित्ववाद क्या है यह जानना ज़रूरी नहीं है। केवल इतना ही जानना ज़रूरी है कि आज मानव अस्तित्व को कौन-कौन से खतरे हैं और आगे कौन-कौन से खतरे पैदा होनेवाले हैं। यदि कवि इसे जानता है और इसे महसूस कर सकता है तो कविता लिख सकता है और अच्छी बडी कविता लिख सकता है।

इसी प्रकार उनके अनुसार रचनाकार नारी हो या पुरुष, कोई फर्क नहीं पड़ता है। "क्योंकि कलम लेकर रचता हुआ व्यक्ति न नारी होता है न नर- वह रचनाकार है। रचनाकार अश्लीलता बचाने के लिए कोई भी आचार संहिता मानकर रचना नहीं कर सकता। रचनाकार के भीतर जो चल रहा है मथ रहा है वह तो प्राकृत भाव से बाहर आएगा ही। यही तो साहित्य की सही और सामान्य भाव-भूमि है।"[1] सामाजिक-परिवेश परिवर्तनशील हैं तो उसमें पैदा होनेवाले मूल्यों में भी लगातार बदलाव आता रहता है। भाव-विचार का यह बदलाव रचना में लगातार चला करता है।

सर्वेश्वर की राय में भारतीयता

सर्वेश्वर के अनुसार भारतीयता का वह अर्थ नहीं है जिसे विशिष्ट या आध्यात्मिक कहकर प्रचालित किया जा रहा है। और न भारतीयता 'हिन्दू' होना है। उनके अनुसार भारतीयता मानवीयता है जीव

---

1 भवानीप्रसाद मिश्र और सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का अंतरंग साक्षात्कार, डॉ. कृष्णादत्त पालीवाल पृ. 62

करुणा है सबको साथ मिलाकर जीने की चाह है। हिन्दू-मुसलमान, सिख-ईसाई ही नहीं - मानव ही नहीं - जीवों में तितली से चींटी तक को अपने साथ रखकर जीने का महाभाव है। यह महाभाव ही भारतीयता है।

सर्वेश्वर की दृष्टि में अन्य साहित्यकार

सर्वेश्वर के अनुसार अज्ञेय की बडी भारी ऐतिहासिक भूमिका रही है। किसी भी नई प्रतिभा को पहचानने की जो शक्ति अज्ञेय में थी वह हिन्दी के अन्य किसी भी रचनाकार या संपादक में न थी। "मुझे और मेरे जैसे बहुत से नये रचनाकारों को अज्ञेय जी ने गले लगाया और साहित्य क्षेत्र में खडा किया। नयी कविता में अज्ञेय जी की भूमिका को मैं महावीर प्रसाद द्विवेदी जैसा महत्वपूर्ण मानता हूँ।"[1] अतः शुरु के लेखन में उन्हें निराला के बाद अज्ञेय ने झकझोरा। बाद में उन्होंने अपनी राह स्वयं यह कहकर बनाई, "राह पर वे चले जिनके चरण थके, दुर्बल और हारे हैं।

पर मुक्तिबोध के साथ सर्वेश्वर का वैचारिक तालमेल बैठता था। मुक्तिबोध की रचनाएँ उन्हें भीतर से कुरेदती थीं। सर्वेश्वर के अनुसार भारतीय समाज के चरित्र की जितनी गहरी पकड़ मुक्तिबोध को थी नये रचनाकर्म में वह पकड़ उन्हीं की थी उन जैसा कोई दूसरा न था। मुक्तिबोध के निधन पर उन्होंने कविता लिखी थी 'कवि मुक्तिबोध के

---

1 भवानीप्रसाद मिश्र और सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का अंतरंग साक्षात्कार, डॉ. कृष्णादत्त पालीवाल पृ. 68

निधन पर'। उनके प्रेरणा गुरु मुक्तिबोध है। सर्वेश्वर अपने को उन्हीं की परंपरा का कवि मानते हैं। सर्वेश्वर मैथिलीशरण गुप्त को हिन्दी भाषा और साहित्य का निर्माता मानते हैं। इसलिए उनपर उन्होंने एक श्रद्धानत रचना की है।

गाँधीजी के त्याग और तप का उनके मन में अपार आदर है। सर्वेश्वर कहते हैं, 'रोज़ गाँधी की हत्या आँखों के सामने हो रही है मेरा पत्रकार इसे वर्दाश्त कर जाता है। लेकिन मेरा रचनाकार मुझे चैन नहीं लेने देता। पर मैंने उनपर न कविता लिखी थी , पर 'बकरी' नाटक लिखा है। 'बकरी' नाटक गाँधी-विचार का नाटक नहीं है वह मेरे क्रान्तिकारी और सत्ता-विरोधी स्वभाव की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है।"[1] सर्वेश्वर के प्रिय कहानीकार स्टीफेन ज़्विग, दजाई ओसामू, आकुतागावा हैं। नये लिखनेवालों में निर्मल वर्मा, रघुवीर सहाय, कुंवर नारायण और श्रीकान्त वर्मा उन्हें प्रिय है।

मानव की शक्ति में अटूट आस्था रखने वाले साहित्यकार हैं सर्वेश्वरदयाल सक्सेना। उनके अनुसार हर सार्थक सृजन-चाहे वह कविता, नाटक, उपन्यास कुछ भी है रोज़मर्रा के हँसते-रोते उपकरणों की सहायता से रचा जाता है। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहूंच सकते हैं कि यथार्थ से सरोकार रखनेवाले साहित्यकार हैं सर्वेश्वरदयाल सक्सेना।

---

1 भवानीप्रसाद मिश्र और सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का अंतरंग साक्षात्कार डॉ. कृष्णादत्त पालीवाल पृ. 69

रामस्वरूप चतुर्वेदी के इस कथन से हम सहमेत हो सकते हैं कि सर्वेश्वर ने यातना को सहनशीलता के रूप में देखा है, जो उनके दृष्टिकोण की रचनात्मकता की परिचायक है, तथा जीवन की जय घोषित करनेवाले दर्शन का मूल सूत्र है। अस्पताल की एक नर्स में मानवतावाद की व्यापक भावभूमि उन्होंने देखी है। इस व्यक्तित्व से कवि को सहने की प्रेरणा मिलती है दुख-दर्द को सहने की, समग्र जीवन को सहने की । निराश अथवा पलायन की स्थिति सर्वेश्वर में नहीं मिलती। जीवन के प्रति उनका अनुराग सहज है, आस्था अडिग है।"[1]

❖❖❖

1. समकालीन हिन्दी साहित्य विविध परिदश्य : अत रामस्वरूप चतुर्वेदी, द्वि.सं. 2000 -पृ. 48

दूसरा अध्याय

सर्वेश्वर के नाटकों में सामाजिक चेतना के विभिन्न आयाम

सर्वेश्वर के नाटकों में सामाजिक चेतना के विभिन्न आयाम

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने जो नाट्ययात्रा तय की है वह लंबी नहीं है, फिर भी साठोत्तरी नाटककारों में उनका नाम और काम विशेष उल्लेखनीय है। उनका संपूर्ण नाट्य साहित्य अपने परिवेश के प्रति गहरी जागरूकता का परिचायक है।

व्यवस्था की विसंगतियों और सड़ते हुए समाज की विद्रूपताओं के खिलाफ आम आदमी की प्रतिक्रिया है उनका नाट्य साहित्य। 'बकरी', 'लड़ाई', 'अब गरीबी हटाओ' 'हवालात' 'हिसाब-कितब' आदि नाटक, 'मर गया ले जाओ' शीर्षक नुक्कट नाटक, 'होरी धूम मच्यो री' 'रूपमती बाजबहादूर' सावन घन आए, 'रक्षा बन्धन' आदि नृत्य नाटिकाएँ, दस रेडियो रूपक, दो एकांकी, पाँच बाल नाटक और रंगमंच पर समीक्षात्मक निबन्ध आदि उनकी उल्लेखनीय नाट्य रचनाएँ हैं। वे अपने नाटकों से समाज में फैल हुए भ्रष्टाचार, शोषण, गरीबी आदि पर प्रकाश डालते हुए इन समस्याओं से मुक्त होने के लिए आम जनता की तरफ से संगठित संघर्ष की माँग करते हैं।

बकरी

बकरी आम आदमी की पीडा को, आम आदमी की भाषा में, आम आदमी के सामने प्रस्तुत करनेवाला महत्वपूर्ण नाटक है। इसमें भोले-भाले ग्रामीण लोगों की अभावग्रस्त करुण स्थिति को राजनीति के क्रूर सन्दर्भों में रखकर देखा गया है। इस नाटक में तीन डाकु पुलिस की मदद से एक गरीब ग्रामीण युवती की साधारण सी बकरी को गाँधीजी की विशिष्ट बकरी की परंपरा की अंतिम कडी कहकर हड़प लेते हैं। उस बकरी को गाँधीजी की बकरी बताकर ग्रामीणों को छलने के प्रसंग मुख्य रूप से नाटक में उभरते हैं। स्त्री के विरोध करने पर उसे भारत सुरक्षा अधिनियम के अन्तर्गत कैद करा देना, बेचारी औरत का ढाई साल जेल के सींखचो में रहकर बकरी बकरी चिल्लाती रहना 'बकरी संस्थान' 'बकरी सेवा संघ' 'बकरी मंडल' आदि संस्थाओं के नाम पर दरिद्रता, अकाल और बाढ से पीडित ग्रामीणों से डाकुओं द्वारा धन हड़प लिये जाना, बकरी को देवी मानकर ग्रामीणों का बकरी के चारों ओर घूमकर पूजा गीत गाना आदि घटनाएँ नाटकीय व्यंग्य और करुणा को व्यंजित करती हैं। डाकू लोगों को आगे चलकर चुनाव जीतते हुए तथा देश के नेता बनते हुए दिखाकर सक्सेना ने स्वतंत्र भारत की अन्धी शासन व्यवस्था के तथाकथित बहरे पहरेदारों की असलियत का परिचय दिया है। ग्रामीणों को यह धमकी देना कि यदि बकरी के थन के चिह्न पर कर्मवीर को वोट न देंगे तो बकरी देवी ग्रामीणों को सज़ा देगी और उनको यह वादा देना कि 'चुने जाते ही तुम्हारे गाँव तक की सड़क पक्की

करा देंगे।"[1] आदि चुनाव संबंधी हथकंडों की ओर संकेत देते हैं। व्यवस्था की चालों चालाकियों और साजिशों को चुनौती देनेवाला एक युवक भी है जो पैसे का गुलाम नहीं, ताकत से न डरता है, जिसका अपना कोई गिरोह भी नहीं। गलत को गलत कहने से वह तनिक भी हिचकिचाता नहीं "गरीबों की बकरी पकड़कर उनसे पहले पैसे दुहे। अब वोट दुह रहे हैं, फिर पद और कुर्सी दुहेंगे।"[2] युवक को वोट की तोड़ फोड़ करने के अपराध में जेल में डालते है। यही युवक नाटक के अन्त में नारा लगाता हुआ प्रविष्ट होता है, कर्मवीर, दुर्जनसिंह और सिपाही उसको घोरकर रस्सी से बाँधने के साथ नाटक की समाप्ति होती है।

अपने देश की दुर्गति पर सर्वेश्वर केवल अपने क्रोध और दुःख प्रकट करके बैठते नहीं, बल्कि स्थितियों को बदलने की आस्था भी प्रकट करते है, "गाँवों के धर्मभीरु और अंधविश्वास भरे लोगों की जड़चेतना को युवक के माध्यम से आन्दोलित करके अततः इन लुटेरों की पराजय और दुनिया को बदल डालने के संकल्प के साथ नाटक की समाप्ति होती है।"[3]

कुछ आलोचक बकरी को गाँधीजी के सिद्धान्तों का प्रतीक न मानकर निरीह जनता को मानते है। 'आजकी तथाकथित गाँधी बकरी (गाँधीजी के नाम पर कमानेवाली राजनैतिक टोली) स्वार्थपरायणता का

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड दो पृ. 37
2. वहीं पृ. 38
3. जयदेव तनेजा नयी रंग-चेतना और हिन्दी नाटकार सं. 1994 पृ. 157

साधन बनती है। यहाँ बकरी गरीब जनता का प्रतीक है, जिसका गाँधी के नाम पर उनके अनुयायी दोहन कर रहे है। गरीब जनता 'बकरी' अपने स्वामी अर्थात् सत्ताधारी गाँधी के नाम पर शोषण करनेवाले लुटेरों की टोली की बुद्धि शूरता, विवेक, ईमानदारी, सच्चाई आदि को चर रही है।"[1] लेकिन बकरी द्वारा धन, पद और कुर्सी मिलने की बात ही इसको गलत सिद्ध कर देती है।

'बकरी' की कहानी दरअसल भारत की सत्तर प्रतिशत उस अशिक्षित, अल्पबुद्धि, धर्मभीरू, आम आदमी की कहानी है जिन्हें लूटने की सज़िश है कि सर्वेश्वर अंत में इन्कलाब लाते हैं। सर्वेश्वर की राय में 'बकरी' उनकी राजनीतिक समझ के संपूर्ण लगाव का नाटक है। "मूलतः वह आज़ादी के बाद टूटनेवाले आदर्शों, सन्दर्भों, आचरणों और मूल्यों का खुलासा है। 'बकरी' मेरे राजनीतिक संघर्ष के तीव्र और सहज होने की ज़रूरी परिणति है।"[2]

हिन्दी रंगमंच और विकसित नाट्य शिल्प को जोड़नेवाली उल्लेखनीय कृति है 'बकरी'। इसमें दो अंक हैं, और प्रत्येक अंक मं तीन-तीन दृश्य। नाटक का आरंभ 'भूमिका दृश्य' से होता है। संस्कृत नाटकों की तरह नट-नटी मंगलाचरण से शुरू करते हैं। गीतों को नौटंकी गायन शैली में बांधा गया है और पारसी नाटकों की तरह दोहा, चौबोला, दौड़,

---

1. आज का हिन्दी नाटक प्रगति और प्रभाव डॉ. दशरथ ओझा प्र.सं. 1984 - पृ. 69
2. भवानीप्रसाद मिश्र और सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का अंतरंग साक्षात्कार डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल पृ. 70

बहरेतवील का प्रयोग किया है। नट मंगलाचरण में राजनीतिक सन्दर्भ देकर उसे समसामयिक बनाता है। प्रत्येक दृश्य के आरंभ में 'नट गायन' की योजना की गई है। 'नटगायन' वास्तव में दृश्य-दृश्य के बीच की कड़ी है। वह घटनाओं पर कमेंट भी करता है और आगे की घटनाओं की पूर्व-सूचना देने का कार्य भी करता है। 'रूप की दृष्टि से नाटककार ने संभ्रान्त वर्ग के लिए लिखे और प्रस्तुत किये जा रहे विशुद्ध साहित्यिक - रूपवादी एवं बौद्धिक नाटकों से हटकर संस्कृत, पारसी और लोक नाटकों की भारतीय जन मानस में समाई रंग-शैलियों के अद्भुत समन्वय से अपने नाटक का रूप रचा है।"[1]

नरनारायण राय के अनुसार इस नाटक के नाट्य संरचना शिल्प में लोकनाट्य की शैली अपनायी गयी है, जो हमारी अपनी ज़मीन की उपज है। "पारंपरिक नौटंकी शैली में लिखा गया यह नाटक अपने सहज दृश्यबोध ओर मंचशिल्प के कारण गाँव और शहर, हर जगह के आम आदमी के लिए एक सहज सुलभ नाट्य प्रस्तुति होगी।"[2]

'बकरी' का मंचन कई बार, कई जगहों में हो चुका है, हिन्दी के सर्वाधिक जनप्रिय नाटकों में एक है 'बकरी'। इसकी प्रथम प्रस्तुति 1974 जुलाई 13 को कविता नागपाल के निर्देशन में त्रिवेणी कलासंगम, नई दिल्ली की उद्यान रंगशाला में हुई।

---

1. समकालीन हिन्दी नाटक डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल पृ. 27
2. आधुनिक हिन्दी नाटक 'एक यात्रा दशक' 1969-1978 प्र.सं. 1979 पृ. 173

लडाई

लेखन-क्रम की दृष्टि से 'लडाई' नाटक को सर्वेश्वर अपना पहला नाटक मानते हैं "इसे लेखक का पहला नाटक माना जाए और यदि प्रतिबद्ध रंगकर्मियों की सारी ज़रूरत इससे पूरी न पड़ती हो तो इसके लिए लेखक को क्षमा किया जाये।"[1] 'लडाई' नाटक पहले कहानी के रूप में लिखा गया था और उसकी हिन्दी जगत् में बहुत चर्चा हुई थी। रेडियो नाटक के रूप में फिर उसका रूप-परिणाम किया गया। ज़्यादा हेर-फेर नहीं किया जा सका। केवल उद्घोषक की जगह गायक रख दिया गया है। "एक बार एक विधा में कस जाने पर दूसरे में फिर नये सिरे से ढालना, स्वयं लेखक के लिए भी कठिन हो जाता है। यह रचनात्मक कठिनाई इसे रंगमंच के लिए तैयार करने में लेखक ने अनुभव की है।"[2]

'लड़ाई' में समाज की सड़ी गली मान्यताएँ अपनी पूरी कटुता और तीखेपन के साथ-साथ प्रकट होती हैं। जर्जर और भ्रष्ट देश को परिवर्तित करने का, दम भरनेवाले नई पीढ़ी का प्रतिनिधि है, नाटक का युवक सत्यव्रत। एक फरेबी दुनिया में वह ढोंग, बेईमानी, गरीबी, मानसिक गुलामी, औपनिवेशिक संस्कार, स्वार्थान्धता सबसे अकेला लड़ता है। वह खुद गलत न करने का तथा औरों को गलती न करने देने का निश्चय कर लेता है और इस प्रयास में उसका साथ देने के लिए बीवी बच्चे भी तैयार

---

1. लडाई (इस नाटक के बारे में) पृ. 6
2. वहीं प्र. 1979

नहीं। दुनिया का कायदा आज ऐसा हो गया है कि गलत को गलत कहना गलत है, गलत काम को अपनी आँखों से देखने के बाद भी चुप रहना पड़ता है। कान, आँख, मुँह बंद करके रहना आज शरीफ आदमी का काम है। तो सत्य के लिए लड़नेवाले सत्यव्रत की उपेक्षा सबके द्वारा होना स्वाभाविक है।

बासी रोटी बेचनेवाला अपने को बेईमान पुकारने वाले सत्यव्रत से बिगड़ता है। चोरी,घूस, निकम्मेपन आदि बीमारी लगी हुई राशन दूकान और दूकानदार की पोल खेलने का यह बुरा परिणाम निकलता है कि वह चपरासी द्वारा बाहर धकेल दिया जाता है। व्यवस्था के विरुद्ध आवाज़ उठाने का सत्यव्रत का उपदेश उसके संपादक मित्र को इसलिए खटकता है कि व्यवस्था की ज़्यादा कड़वी आलोचना करें तो पत्रिका की आर्थिक स्थिति ठीक न रहेगी। सत्यव्रत बहुत जल्दी समझ लेता है कि समाज की कोई भी संस्था शोषण से बची नहीं, हर कहीं बेईमानी और झूठ का बोलबाला है। देश के स्कूलों में अंग्रेज़ी भाषा का ज़्यादा उपयोग होने लगा है। अपने बेटे के स्कूल जाकर सत्यव्रत प्रिंसिपल से बहस करता हैं कि प्रिंसिपल ने क्यों बेटे की शिकायत न सुनी। प्रिंसिकल ने कहा कि बेटे ने शिकायत अंग्रेज़ी में नहीं की इसीलिए। धर्म भावना की आड़ में पाखंड खुले आम विचरण कर रहा है, शांति के नाम पर इस गरीब देश में लाखों रुपयों की बरबादी हो रही है। पाप का नाश और आत्मा की शांति के लिए पधारनेवाले स्वामी महेश्वरानंद कोठी पर रहते हैं, कार पर चलते हैं, गरीब जनता से बडी रकम वसूल करते हैं। सत्यव्रत देश में फैले हुए ढोंग

और पाखण्ड के प्रति तीखा असन्तोष और आक्रोश ज़ाहिर करता है "स्वतंत्रता के बाद इस अर्थ में प्रगति हुई है कि लोग खुद को और दूसरों को और अधिक ठगना सीख गए हैं। चोरी, मक्कारी, झूठ-फरेब और सबके भाव चढे हैं और लोग उनपर आदर्शों के अच्छे से अच्छे लेबल लगाना सीख गए हैं।"[1] गलत बात से लड़ते-लड़ते सत्यव्रत को मन और तन पर असह्य आघात सहना पड़ता है। मिनिस्टर साहब के आदमी को अस्पताल में 'बेड' देने के लिए एक गरीब ग्रामीण की जान को खतरे में डालनेवाले डॉक्टर के विरुद्ध आवाज़ उठाते ही वह पुलिस की पकड़ में आ जाता है, याने में पुलिस की लात भी खानी पड़ती है। सत्यव्रत की अकेली लडाई और उसमें उसकी विफलता से ज़ाहिर है कि समाज के अन्धकार को कोई एक या दो व्यक्ति दूर नहीं कर सकते, इसके लिए सामूहिक एकता की आवश्यकता है। अपने इस नाटक को एक प्रतिबद्ध नाटक मानते हुए सक्सेना जी ने लिखा है "यह नाटक दिखाता है, वैसे अकेले लडाई समाज और व्यवस्था को तोड़ती नहीं, स्वयं गरिमामय होते हुए भी टूट जाती है, अधिक नहीं रह जाती। इस ट्राजडी का अनुभव करना संगठित प्रयास की ओर बढना है।[2]

लडाई की प्रथम प्रस्तुति ओम शिवपुरी के निर्देशन में 'दिशांतर' द्वारा त्रिवेणी कलासंगम में हुई।

---

1. लडाई सक्सेना पृ. 30-31
2. लडाई सर्वेश्वर दयाल सक्सेना इस नाटक के बारे में प्रथम सं. 1979

अब गरीबी हटाओ

'अब गरीबी हटाओ' उस जन के समर्थन का नाटक है जो सदियों से आज तक एक व्यापक अनुमान और शोषण का शिकार बना हुआ है। यह नाटक उसकी आकांक्षाओं और घुटन को, उसकी यातना और संघर्ष को उस चट्टान के नीचे दिखाने की कोशिश करता है जो हर बार व्यवस्था की सुरक्षा के नाम पर उसके ऊपर रख दी जाती है।

'गरीबी हटाओ' यह नारा आज अपना अर्थ खो चुका है। प्रत्येक नेता कुर्सी का हकदार बनने के पहले आम जनता को इस वादे से लुभाता है कि देश की गरीबी हटाना उनका लक्ष्य है।

मुख्यमंत्री का शब्द इसका स्पष्ट प्रमाण है - हमारा देश गरीब है, गरीबी हटाना हमारा पहला काम है... हमारी प्राथमिकता है.... हम गरीबी हटाने के लिए एक अलग मंत्रालय भी बना रहे हैं - गरीबी हटाओ मंत्रालय। हरिजनों के कल्याण के लिए हरिजन कल्याण मंत्रालय का भी काम हो रहा है। ....अब तक पिछले तीस सालों में हम गरीबी हटाओ कार्यक्रम पर छः करोड बानवे अरब रुपया खर्च कर चुके हैं।' आज़ादी की एक लंबी अवधि के बाद भी देश की प्रगति वैसी है, यह सर्वेश्वर ने स्पष्ट शब्दों द्वारा व्यक्त किया "सारा देश वहीं का वहीं चक्कर काट रहा

---

1. अब गरीबी हटाओ भूमिका
2. वहीं पृ. 18

है। सच तो यह है कि किसी को भी कहीं पहुँचने की चिंता नहीं, न आगे बढ़ने की चिन्ता। हर क्षेत्र में दीमक लग रही है।"[1]

चुनाव के हथकंडों पर भी इस नाटक में व्यंग्य की बौछार है। गाँव में सरकारी सहायता से प्रधानमंत्री का पिट्ठू गुंडा 'शर्मा' अपने विरोधी की स्वयं हत्या के उपरान्त गरीब ग्रामीण हरिजन को हत्यारा सिद्ध करता है। उससे प्रतिशोध लेने के लिए गंडासी लेकर हरिजन जेल से बाहर आया तो अपनी बीवी और बच्चों की दर्दनाक दास्तान उसे सुननी पड़ी। पति के जाने के बाद बेचारी भूखों मरने लगी तो दोनों बच्चों के साथ कुएँ में कूदने जा रही थी कि पुलिस पकड़ ले गई। वह राजा, मंत्री, सिपाही की वासना पूर्ति का साधन बनती है। सर्वेश्वर ने देश में हर कहीं रक्षकों के वेश में बैठे हुए लुटेरों के शोषण के शिकार बननेवाली आम जनता की यातना का तथ्यपूर्ण विश्लेषण किया है "लोग के इस तंत्र में बस पिटता ही गरीब है, यही दुर्भाग्य पकडे बैठा है अपना नसीब।" इस शोषण को समाप्त करने के लिए सक्सेना ने एकमात्र यही उपाय सोचा कि शोषित वर्ग विशेषकर ग्रामीण दलितों को सशक्त क्रान्ति के लिए तैयार करना ही होगा।

भारतीय समाज की बदहालत पूरे नाटक में आदि से अंत तक दीखती है। भारतीय समाज को प्रगति की ओर अग्रसर करने की जिन नेताओं ने ठान ली है, वे इस देश के लुटेरे हैं। नेता को इस नाटक में

---

1. अब गरीबी हठाओ सर्वेश्वरदयाल सक्सेना पृ. 19

सूत्रधार के रूप में रखा गया है क्योंकि नेता जो है, सब कहीं दखल देता है, सारे देश को नचाने वाला होता है।

गरीबी को इस नाटक में एक चिरन्तन समस्या के रूप में देखा गया है। राजतंत्र में गरीबों का शोषण हुआ है और लोकतंत्र में हो रहा है। गरीबी परंपरा के रूप में चली आ रही है। इस तथ्य को स्पष्ट करने हेतु सर्वेश्वर ने आदमी औरत का नाम क्रमशः गरीबा और गरीबन रखा है, जो राजतंत्र में भी है, लोकतंत्र में भी। कोई भी तंत्र गरीबी नहीं हटा पाता, बल्कि हटाना ही नहीं चाहता। वास्तव में गरीबी हटाने के लिए गरीब को ही संघर्ष करना है।

अपने इस नाटक के बारे में स्वयं सर्वेश्वर ने लिखा है कि 'अब गरीबी हटाओ' कोई नारा नहीं है, न यह शीर्षक किसी नारे से जुडा हुआ है। इसका संदर्भ एक व्यापक मानवीय नियति है और उसी संदर्भ में इसे ग्रहण किया जाना चाहिए। नाटक व्यवस्था विरोध का नाटक नहीं है, जन समर्थन का नाटक है।

मंत्री लोग चुनावों में हरिजनों का समर्थन चाहते हैं, पर उनकी दुर्दशा का विवरण वे सवर्णों से पूछ रहे हैं। इस कारण जन कल्याण के समस्त दाबे इमारतें, कमीशनों और मौखिक लिखा-पढ़ी तक ही सीमित रह जाते हैं। न्यायालयों से निर्धन के लिए न्याय की कोई गुंजाइश नहीं। झूठे मुकदमे, जेलों में अकारण ठूँस देना, अनाथों के समान भटकते उनके बच्चे - यही सब उनके भाग्य में है। अतः निर्धन पति के जेल से भाग कर

गाँव आने पर सब कुछ खोया हुआ मालूम होता है। उन्हें बडे आदमी साँपों के समान प्रतीत होते हैं जो अनेक नस्लों में विभक्त होकर व्यक्तियों को ठस रहे हैं। इनसे जूझने के लिए सम्मिलित प्रयास और एक जुट संघर्ष की आवश्यकता है।

आधुनिक युग की कथा के समानान्तर चलती दूसरी, प्राचीन युग की कथा राजा और मंत्रियों द्वारा कुछ-कुछ समान प्रकार से जनशोषण की कथा है, जहाँ पराई नारी को बलपूर्वक अपनी बनाना, लूटना और फिर दोष सैनिकों पर आ जाना सामान्य सी बातें है। सैनिक की घर बसाने की एक सामान्य चिंता एक पाशविक और बेचैनी भरे अधूरे जीवन में परिवर्तित हो गयी है। वस्तुतः प्राचीन और आधुनिक युग में एक ही प्रकार के स्थिति निर्माण द्वारा नाटककार बताना चाहते है कि शोषण का क्रम युगों से चल रहा है। अन्त में नाटककार ने एक सार्थक समाधान दिया है कि इस नाटक का समापन दर्शकों के हाथ में है, क्योंकि नाटक का जनता की चेतना में उभरना एवं स्वयं जनता पर निर्भर करना है।

सर्वेश्वर जानवादी नाटकों से क्या आशा रखते हैं, वे सब 'अब गरीबी हटाओ' में है। यानी यह नाटक जनवादी नाटक है। जनवादी नाटकों को सारा तामझाभ, साहित्यिक गूढ़ता, रहस्यमयता छोड, सड़क पर आना है, खुले में सांस लेना है और उस आदमी से बात ही नहीं करनी है, उसे हँसाना और रिझाना ही नहीं, उसे समझाना रास्ता दिखाना और संगठित होकर, एक होकर एक समान लक्ष्य की ओर बढाना है जो इस पूँजीवादी, साम्राज्यवादी और उपनिवेशवादी सभ्यता में आर्थिक

सामाजिक, राजनीतिक, हर तरह के शोषण और अन्याय का शिकार है और अपनी लड़ने-जूझने की ताकत और अपनी अस्मिता खोता जा रहा है और अपने मानवीय रिश्तों और प्रेम की परिधि को सिकुडते-सिकुडते लुप्त होते देख रहा है।

'अब गरीबी हटाओ' का प्रथम मंचन 'रंगपीठ' द्वारा भानुभारती के निर्देशन में आईफैक्स हाल में हुआ था।

हवालात

एक देश की संपत्ति वहाँ की युवशक्ति है। हमारे भारत के शासक लोग अब भी उस संपत्ति का गलत इस्तेमाल कर रहे हैं। नौकरी न मिलने से वे बेकार घूम रहे हैं और कई तरह के अत्याचार भी करते रहते हैं। अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए पुलिस भी किसी न किसी बहाने युवकों को पकड़कर हवालात ले चलते हैं ताकि उन्हें कुछ मिलें। हमारी शासन व्यवस्था और सामाजिक व्यवस्था युवकों को लूट रही हैं। लेकिन बेकार और बेठिकानों के लिए हवालात भी एक राहत है, क्योंकि वहाँ तो खाना भी मिल जाएगा, आराम भी हो जाएगा। 'हवालात' में युवकों की इस बेचारी हालत का चित्रण हुआ है।

बर्फीली तूफानी रात में पार्क के कोने में एक नंगे पेड़ के नीचे सर्दी में ठिठुरते हुए खडे रहने वाले तीन लडकों से एक पुलिसवाला

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड दो पृ. 275

पूछताछ करता है कि कौन भाग रहा था। बीस साल के वे लड़के बहुत जल्दी स्थिति भाँप लेते हैं और पुलिसवाले को यह समझाने की कोशिश करते हैं कि वे तीनों भयानक आदमी हैं, खतरनाक काम करनेवाले हैं, उनका बाहर रहना समाज के लिए खतरा है, इसीलिए उन्हें हवालात ले चलना ही उचित है।

पर पुलिसवाला मानने को तैयार नहीं है। क्योंकि उसे मालूम हो गया हैं कि युवक बेकार हैं, उनके पास कुछ भी ऐसा नहीं है जिससे उसको लाभ पहूँचे। इसलिए पुलिस उनकी आखों में पट्टी बाँधकर हवालात ले चलने के बहाने वहीं घुमाता रहता है।

यही हमारे देश की स्थिति है कि जहाँ था, वहीं खड़ा है। प्रगति नहीं हुई है। सिपाहियों की अवस्था पर भी इसमें व्यंग्य किया गया है। अपनी जिन्दगी की अच्छी परवरिश के लिए आवश्यक वेतन उन्हें नहीं मिलता है, इसीलिए वे कुछ 'अतिरिक्त' चाहते हैं। युवकों का कथन यह ज़ाहिर करता है, "हममें आपमें कोई फरक नहीं। देखिए, इस बर्फीली रात में आप भी भटक रहे हैं और हम भी। फर्क इतना है, आपके ऊपर मोटा लबादा है। गर्म लबादा। ताकतवालों का दिया हुआ। भीतर हमारी हड्डियाँ एक जैसी नंगी है। बेसहारा चूसी हुई।"[1]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड दो पृ. 118

हिसाब-किताब

बाल-पीड़ा का दर्दनाक खाका 'हिसाब-किताब' में खींचा गया है। अकाल में मारे गए माँ-बाप के अनाथ बच्चों को बाल-कल्याण केन्द्र में डाल दिया गया है। खूब काम करवाने पर भी उन्हें अपनी भूख मिटाने मात्र रोटी नहीं दी जाती। बच्चे जब ज़्यादा माँगते हैं तो उनके हिसाब को गलत साबित करते है। भूख के मारे रोनेवाले बच्चों को हँसाने का काम एक जोकर पर सौंपता है। जोकर की कोशिश असफल हो जाती है। जोकर उन्हें हिसाब सिखाता है, पर बच्चे मानते नहीं। इसपर जोकर की टिप्पणी हमारी व्यवस्था को चोट पहूँचाती है, "जो जितना ही गरीब होता है उसका हिसाब उतना ही कमज़ोर होता।"[1]

बालकों के कल्याण करने का दावा लगाते हुए अपना काम-धन्धा करनेवाले लोग निरीह बालकों का शोषण कर रहे हैं। वे अनाथ है, इसलिए पूछनेवाला कोई नहीं है। अपने देश के हर नागरिक की रक्षा करना शासकों का कर्तव्य है। पर इन निष्कलंक बालकों की चिन्ता करने के लिए शासकों को वक्त ही कहाँ है?

नुक्कड नाटक

नुक्कड़ नाटक नाटककारों के लिए व्यवस्था के विरुद्ध लड़ने का हथियार है। शिक्षित-अशिक्षित जनता को जगाने, झकझोरने और सोचने समझने के लिए नुक्कड़ नाटकों की भूमिका काफी सराहनीय रही

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड दो पृ. 124

है। नुक्कड नाटकों में जाति-पांति, ऊंच-नीच, सांप्रदायिकता, दहेज, भ्रष्टाचार और हर तरह के शोषण के खिलाफ स्वर ऊँचा किया जाता है। 'मर गया ले जाओ' सर्वेश्वर का नुक्कड़ नाटक है।

मर गया ले जाओ

हमारे समाज में गरीबों की ज़िन्दगी अभिशाप की ज़िन्दगी मानी जाती है। कोई भी जनमते ही गरीब नहीं हैं, व्यवस्था ने ही उसे गरीब बनाया है। लेकिन यहाँ गरीब को समाज की सुविधाएँ नहीं मिलती, क्योंकि उसके पास पैसे नहीं है। अपने शासन के आधीन जनता की सब तरह की रक्षा करना शासकों का कर्तव्य है। पर यहाँ इलाज भी नहीं मिलता है, मरने पर दफनाने का काम भी इलाज से ज़्यादा महँगा होता है। आदमी क्या करें, उसका जीना भी मुश्किल हो गया है, मरना भी। चैन से मरना उसकी किस्मत में नहीं लिखा है।

'मर गया ले जाओ' में अपने पति के इलाज करने के लिए पैसे बटोरने में अक्षम गरीब औरत से मुर्दे आदमी को 'ले जाने' का पैसा मँगनेवाली सरकार की खिल्ली उडायी गयी है। रोनेवाली औरत को समझाने की कोशिश उसके साथ आए पुरुष करता है। पुरुष कहता है कि औरत के रोने से क्या फायदा है? वह क्यों नहीं समझती कि हमारे यहाँ पैसे नहीं तो इलाज भी नहीं होगा। मरने पर कफन के लिए बारह रुपए,

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड दो पृ. 128

लकड़ी के लिए पचास रुपए, घी के लिए चौबीस रुपए ये लोग माँग रहे हैं। इसलिए वह औरत से कहता है कि लावारिसों जैसा दफनाना ही अच्छा है। वह तो सरकार करेगी।

जिन्दा रहने से मरना तो और महंगाया गया है। आदमी का यह कथन समाज के आगे एक प्रश्नचिह्न लगाता है।

नृत्य नाटिका

नाटक, नुक्कड नाटक, एकांकी आदि के साथ-साथ नृत्य नाटिका में भी सर्वेश्वर का ध्यान गया है। उनके नृत्य-नाट्यों पर किसी न किसी रूप में अंशतः पारसी रंगमंचीय परंपरा और तंत्र का प्रभाव है। इनमें उन्होंने पुरानी नाट्यपरंपरा के साथ आधुनिकता को जोड़ दिया है। नृत्य-नाट्य अथ से इति तक नृत्य और गीत से समन्वित है। ये नृत्य-नाट्य प्रेक्षकों को आकर्षित एवं मंत्रमुग्ध करते हैं।

'होरी धूम मच्यो री' 'रूपमती-बाजबहादूर' 'सावन घन आए' और 'रक्षा बन्धन' उनकी नृत्य-नाटिकाएँ हैं।

'होरी धूम मच्चो री' में लोकपर्व होली के उत्सव को प्रस्तुत किया है। 'रूपमती-बाजबहादूर' की कथा ऐतिहासिक है। रूपमती और बाजबहादूर का प्रेमाख्यान इसका मूल आधार है। 'सावन घन आए' में सावन ऋतु का वर्णन हुआ है। 'रक्षा-बन्धन' में राखी के पावन पर्व का महत्व बताया गया है। इसमें दर्शाया गया है कि दुर्बल और असमर्थ की रक्षा समर्थ, संपन्न लोगों को ही करनी चाहिए। आश्रित और आश्रयदाताओं

का यह पारस्परिक सम्बन्ध ही सभ्यता के विकास की कड़ी है। परंतु दुनिया आज इस महत्व को समझ नहीं पा रही है। संघर्षों और तूफानों का सामना स्वयं ही करना पडता है।

रेडियो रूपक

सर्वेश्वर ने दस रेडियो रूपक लिखे हैं जिनका कथ्य एक दूसरे से बिल्कुल अलग है, लेकिन सबका समान सामाजिक धरातल है।

पीली पत्तियाँ

एक-दूसरे के प्रति आकर्षित होकर भी अलग-अलग रहने को विवश एक स्त्री और पुरुष के भिन्न-भिन्न भावों को ध्वनि की सहायता से व्यक्त किया गया है। स्मृति चित्र, अतीत दृश्य, भविष्य-दृश्य, वर्तमान दृश्यों आदि दृश्यों के सहारे यह कहा गया है कि पीली पतियों का टूटना ही अच्छा है। पीली पतियाँ वृद्धावस्था का प्रतीक है, आवांछनीय तत्वों का प्रतीक है। पुरुष का कथन इसे सार्थक कर देता है, "जिनका मूल्य खत्म हो गया है, उनका कोई स्थान नहीं, पीली पत्तियाँ पीली पत्तियाँ हैं। उन्हें नष्ट होना चाहिए। उनसे मोह कैसा। वह उन गलतियों को न दोहराए जो हमने-तुमने की है।"[1]

चाँदी का वर्क

'चाँदी का वर्क' भिन्न दृष्टिकोण रखनेवाले पति और पत्नी की कहानी है जिनके बीच बेटा समवेत दम घुटकर जीता है।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड दो पृ. 163

माया व्यावहारिक दृष्टि से स्थितियों को परखनेवाली है। वह हमेशा अपने पति की शिकायत करती रहती है कि उन्होंने कभी भी अपनी पत्नी और बेटे के लिए कुछ नहीं किया बल्कि दूसरों की सेवा की। माया के अनुसार अपने दायित्व को भूलकर मौज मस्ती में रहना पलायन है, कायरता है।

माया के पति दीनदयाल अपनी विरक्ति में ही आनंद लेते है। उनके अनुसार रुपया-पैसा, सगे-सम्बन्धी, सम्मान, प्रतिष्ठा जो भी आदमी जोड़ता है, जिनके लिए ज़िन्दगी भर सच को झूठ, झूठ को सच करता है, वे सब अपनी मृत्यु के वक्त मनुष्य में वेदना उत्पन्न करते हैं।

दीनदयाल की मृत्युशैया पर पड़ते वक्त भी माया उनकी सेवा-शुश्रूषा करने नहीं जाती, बल्कि अपने विश्वास पर अडिग रही। समवेत का प्रश्न उसे सोचने को विवश करा देता है कि पिता की मृत्यु के समय उपस्थित न होकर माँ ने कौन-सी सफलता प्राप्त की? माया को तब लगा कि हर व्यक्ति का सत्य अलग-अलग होता है और सबको अपना सत्य अलग-अलग खोजना चाहिए। समवेत ने जब यह कहा कि वह पिता के मार्ग को अपनाकर सत्य खोजेगा तब माया चौंक जाती है और टूट जाती है। क्योंकि उसके जीवन का मक्सद उसका अपना बेटा है। पर बेटा यदि पिता की राह चुन ले तो वह क्या कर सकती है।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड दो पृ. 174

दो चीनी औरतें

कम्यूनिस्ट शासन के अधिकार में आनेके बाद चीनी सरकार ने अपने देश के लोगों के प्रति जो अमानवीय चेष्टाएँ कीं, उनपर 'दो चीनी ओरतें' में प्रकाश डाला गया है। दो औरतों को दिखाकर यह समझा गया है कि एक ही देश के लोग कैसे भिन्न सोचते हैं।

चैंग एक श्रमिक है, वह अपने सात दिन के बच्चे को देखना चाहती है। बच्चा शिशुपाल केन्द्र में है। वहाँ की प्रबन्धिका बाईस साल की वैंग है, जिसकी शादी नहीं हुई है। वैंग के लिए माओं के आदर्श ही सब कुछ हैं। वह चेंग को बच्चे को देखने की अनुमति नहीं देती है। अपने बीमार बच्चे के लिए चैंग रोती है, बिलखती है, वैंग से कहती है कि अपने अंतः करण की बात सुन लो। लेकिन वैंग के अनुसार ईश्वर 'अन्तःकरण' आदि शब्द बोर्जुआ हैं और इन शब्दों ने ही चीन को गुलाम बना रखा था। चैंग भी कम्यूनिस्ट आदर्शों को माननेवाली है, उसके अनुसार भावनाएँ मानवीय होती हैं, बोर्जुआ नहीं।

वैंग धमकी देती है कि सरकार के विरुद्ध बोलने के जुर्म पर चैंग को अदालत में पेश किया जाएगा। चैंग वैंग से ईश्वर के नाम पर, माओ के नाम पर न्याय की माँग करती है।

यहाँ हम एक हैं

आधुनिकता के नाम पर पुरानी पीढ़ी को अनदेखा करनेवाली आज की पीढ़ी के लिए एक उपदेश के रूप में यह रेडियो रूपक लिखा

गया है। इसमें लेखक कहते हैं कि पुरानी और नयी मान्यताओं के सहयोग से ही समाज की प्रगति होगी। एक के बिना दूसरा नहीं। भूत को भूलकर वर्तमान में जीना असंभव है।

किशोर पूजा के वक्त टोपी लगाना नहीं चाहता क्योंकि आजकी पीढ़ी टोपी नहीं लगाती। लेकिन उसके पिताजी टोपी पहनने को ज़िद करते हैं। उनके मत में टोपी पहनने से आदमी शरीफ लगता है। किशोर की सहेली कुसुम की राय में पिताजी के मान्यतानुसार करने से कोई नष्ट नहीं होगा क्योंकि समन्वय के मार्ग से किया गया हर परिवर्तन सुदृढ़ होता है, वही प्रीतिकर मार्ग है, दोनों पक्षों को सुख भी मिलता है।

बर्फ ने कहा

अस्पताल में भरती एक घायल सैनिक और उसकी सेवा-शुश्रूषा करनेवाली नर्स की मनःस्थिति दर्शायी गयी है। दोनों अपनी-अपनी जगह में अकेले हैं। साधारण लोगों से भिन्न ज़िन्दगी बितानेवाले हैं सैनिक और नर्स। उन्हें अकेलेपन की ज़िन्दगी बितानी पड़ती है। उन्हें नाम से नहीं अभिहित किया जाता। उनका भावुक मन हमेशा ऐसा साथी चाहता है जिससे सब कुछ बाँट सकता है। बर्फ यहाँ प्रतीक है, एक नयी ज़िन्दगी की घोषणा करनेवाला है। सैनिक को नर्स पसंद आयी, जिसे वह इस रूप में प्रकट करता है, "बर्फ ने कहा, यह सारी सुषमा, यह सारा सौन्दर्य

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड दो पृ. 185

तुम्हारा है, तुम्हारे लिए है। इस जीवन के महत्व को समझो, जियो।"[1] और वे दोनों बर्फ के कथनानुसार एक हो जाते हैं।

राजकीय सूक्ष्म यंत्रशाला

'आकाश को छूनेवाली दैत्याकार मशीनें भी कितने छोटे-छोटे पुर्जे और पेचों के बल पर खडी होती हैं। उनकी वास्तविक शक्ति का पता उस समय लगता है जब एक नन्हे से पुर्जे की खराबी से सारी मशीन रुक जाती है। ...इसीलिए हर बडी व्यवस्था को शक्तिमय बनाने के लिए छोटी व्यवस्थाओं को शक्ति संपन्न करना पड़ता है। सूक्ष्म यंत्र विराट औद्योगिक भवन की नींव के पत्थर होते हैं।"[1]

प्रगति की ओर बढ़ने के लिए लघुमानव की प्रतिष्ठा आवश्यक है, यह सन्देश देनेवाला रूपक है। इसकी विशेषता वाचक-वाचिका द्वारा राजकीय सूक्ष्मयंत्रशाला से पाठकों को परिचित कराना है।

धनिया

सर्वेश्वर ने 'गोदान' उपन्यास से प्रभाव ग्रहण करते हुए उसके नायक होरी और उसकी पत्नी धनिया को एक अलग परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है, 'धनिया' रेडियो रूपक में सर्वेश्वर ने होरी और धनिया के माध्यम से भारतीय कृषक परिवार की दीन-हीन दशा को उद्घाटित किया है। इस रूपक की शुरुआत उद्घोषक द्वारा हुई है जो धनिया की चारित्रिक

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड दो पृ. 185

विशेषता बताता है। "यह धनिया है। अभावों में पली हुई, एक दीन-हीन भारतीय कृषक की गृहिणी। रोकर गाकर जिंदगी की गाडी खींचने में सुबह से शाम तक दत्तचित्त। उसकी छः संतानों में अब केवल तीन जिंदा है, तीन दवा-दारु के बिना बचपन में ही मर गई। बाल छत्तीसवें साल में ही सारे पक गए हैं, चेहरे में झुर्रियां पड़ गई हैं। सारी देह ढल गई है, और सुंदर गेहुआं रंग सांवला पड़ गया है, आंखों से कम सूझने लगा है महज पेट की चिंता के कारण। लेकिन उसे अपनी चिंता से अधिक अपने पति की चिंता बनी रहती थी"[1]

रामकृष्ण परमहंस

इस रेडियो रूपक में रामकृष्ण परमहंस की कथा कही गयी है। उनके जन्म के बारे में कहा गया है कि वे विष्णु के अवतार है। रामकृष्ण के विश्वास पर प्रकाश डाला गया है - "मैं देखता हूँ विभिन्न नामों और आकारों में वह ईश्वर ही है जो घूमता है, कभी पवित्र आदमी में, कभी ढ़ोंगी में, कभी पतित अपराधी में। नारायण सब कहीं है, सब में हैं, सबकुछ हैं। जब कमल खिलता हैं मधुमखियाँ स्वेच्छा से शहद की तलाश में आ जाती हैं। अपने चरित्र के कमल को पूरी तरह से खिलने दो परिणाम सामने आएगा।"[2]

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड दो पृ. 190
2. वहीं पृ. 199

पाँच मिनट का नाटक

'पाँच मिनट का नाटक' में राजेश और लक्ष्मी पति-पत्नी के रूप में चित्रित हुए हैं। राजेश को घर के कामों में परेशानी होती है। उसका दृष्टिकोण है कि घर का काम पत्नी करे। और घर की समस्याओं को भी पत्नी ही हल करे। जैसे वह स्वयं दफ्तर की परेशानियों को हल करता है और दफ्तर का कोई झगडा पत्नी के सामने नहीं रखता। "देखो लक्ष्मी, मुझे रोज-रोज़ का यह झगडा पसंद नहीं। कोयले खराब हैं, चाकू तेज़ नहीं है, सबजी बासी है, आटा खतम है, नौकर अनाडी हैं अपनी गृहस्थी की परेशानियाँ तुम हल करो, जैसे अपने दफ्तर की परेशानियाँ मैं हल करता हूँ। मैं तो अपने दफ्तर का कोई झगडा तुम्हारे सामने नहीं रखता।"[1]

लक्ष्मी का मत है कि गृहस्थी का काम दफ्तर के काम से कठिन है। इसी बात को लेकर दोनों में झगड़ा होता है। और तब राजेश यह समझौता करता है कि हम पाँच मिनट के लिए अपने-अपने काम बदल लेते हैं। परंतु दाल जल जाती है अर्थात् राजेश घर के क़ाम ठीक से नहीं कर पाता उधर ऑफिस में लक्ष्मी फाईलों में उलझ जाती है। यहाँ राजेश का ऑफिसर फोन पर कई प्रकार की हिदायतें देता है। और लक्ष्मी परेशान होकर टेलीफोन रिसीवर पटक कर हाँफने लगती है। पूरा पाँच मिनट होने के पहले ही वे अपना नाटक समाप्त करते हैं।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड दो पृ. 200

इस छोटे से रूपक द्वारा सर्वेश्वर यह बताना चाहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति जहाँ काम करता है और जो काम करता है उसकी परेशानियों वही जानता है, उसे दूसरा नहीं समझ सकता, क्योंकि वह उस काम और काम में आनेवाली परेशानियों का आदि हो चुका है।

वे क्या सोचते हैं

सर्वेश्वर का 'वे क्या सोचते हैं' रेडियो रूपक हास्य-व्यंग्यपूर्ण है। रूपक का प्रारंभ उद्घोषक द्वारा हुआ है। उद्घोषक दुनिया की यह सच्चाई बताता है कि दुनिया का हर पुरुष किसी-न-किसी नारे के बारे में सोचता है तो हर नारी किसी न किसी पुरुष के बारे में। उनका यह सोचना कभी इतना असंतुलित हो जाता है कि लोगों के लिए हास्य का विषय बन जाता है।

एकांकी

सर्वेश्वर ने दो ही एकांकी लिखे हैं। वे हैं बुद्ध की करुण और सत्यवादी गोखले।

बुद्ध की करुणा

भगवान बुद्ध के जीवन की एक घटना दर्शायी गयी है जिसमें एक बकरी के लिए अपने प्राण तक त्यागने को तैयार, सिद्धार्थ का व्यक्तित्व निखर आता है। "महात्मा बुद्ध के बाल जीवन पर लिखा गया

---

1. सर्वेस्वरदयाल सक्सेना व्यक्ति और साहित्य डॉ. कल्पना अग्रवाल पृ. 239

यह एकांकी देश के नवयुवकों में प्राणी मात्र के प्रति दया और करुणा के भाव जगाता है, साथ ही जीवन की सार्थकता और आत्मविकास के लिए उन्हें अहंकार त्यागने का संदेश देता है।"[1]

सत्यवादी गोखले

गोपालकृष्ण गोखले के स्कूली जीवन की एक छोटी घटना को एकांकी का रूप दिया गया है जिससे गोखले की ईमानदारी प्रकट है। बच्चों को प्रेरणा देनेवाला एकांकी है। अपने अध्यापक की मार से डरकर गोखले नकल करता है और सही उत्तर लिखने के लिए अध्यापक उसकी प्रशंसा भी करता है। लेकिन बालक गोखल खुश नहीं हुआ क्योंकि उसने नकल किया है। उसने अध्यापक से कहा कि अध्यापक की मार के भय से नकल किया है। यह सुनकर अध्यापक उसकी प्रशंसा करता है, "मेरी आदत खराब है, लेकिन अब मैं नहीं मारूँगा। मैं तुम्हारी सच्चाई से खुश हुआ। देखो लड़को तुम इसकी सच्चाई से सबक लो। दुनिया में सच्चे और ईमानदार आदमी ही महान् होते है। तुम महात्मा बनोगे।"[2]

बाल नाटक

कल भात आएगा

हमारी शासन-व्यवस्था की क्रूरता ने आम आदमी की ज़िन्दगी को हराम कर दिया है। सदियों से शासन के हथौडों के थपेडे खाकर आम

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड दो पृ. 217
2. वहीं

आदमी सब कुछ सहने का आदी हो गया है और ज़्यादा सहने की ताकत नहीं रही, इसलिए व्यवस्था की अनास्था देखने पर भी लोग बम्बे की तरह आँख-कान बंद करके मुँह खुले खडे हैं, वे एक स्थान में जमें हुए हैं, क्योंकि हिलने तक की धीरता उनमें नहीं रही। लेकिन आजकी पीढी सबकुछ सहनेवाली नहीं है। अपना पेट काटनेवाली व्यवस्था के विरुद्ध अपनी आवाज़ बुलंद करने से वह डरती नहीं। अपने माँ-बाप और पूर्वजों की आवाज़ को खत्म करनेवाली क्रूर व्यवस्था को उखाड़ फेंकने की शक्ति बटोरने में आजकी पीढी सफल हुई है। 'कल भात आएगा' भूख से पीडित जनता के ताकतवर होने की कथा है।

इस नाटक में तीन पात्र हैं बम्बा, बच्चा, और डाकिया। बम्बा पुरानी शोषित गरीब पीढी का प्रतीक है। बच्चा भूखी पीढ़ी का और डाकिया क्रूर शासक का प्रतीक है।

बच्चे की ज़िन्दगी में एक ही मकसद है, एक दिन भरपेट भात खाना। उसकी हर बात में, उसके हर गीत में भात आता है। क्योंकि वह भूखा है। वह ये सब कहता है बम्बे से जो भूखी रहने का आदी है। बच्चा बम्बे को अपने साथ लेकर भात खाने के सप्ने संजोता है। इसलिए वह बम्बे को हिलाने की कोशिश करता है। बच्चे की यह कोशिश देखकर डाकिया उसे लात मारता है, जान से मारने की धमकी देता है। पर बच्चा अपनी कोशिश जारी रखता है, क्योंकि वह भात खाने केलिए उतावला है। आम आदमी की हर कोशिश शासन-व्यवस्था को डराती है। इसलिए

पनपने के पहले ही उसको दबाने की कोशिश की जाती है। लेकिन बच्चा हिम्मत न हारकर ज़मीन को खोदने लगता है लेकिन तभी व्यवस्था की गोली चलायी जाती है जो उसकी अंतिम पैंतरेबाज़ी है। बच्चे की दर्दनाक कराह सुनने पर बम्बा अपने को उखाडने का संघर्ष करता है और उखड़कर बच्चे की ओर भागता है। तब घायल बच्चा हँसता है वे दोनों साथ-साथ भात खाने जाते हैं। पुरानी शोषित, पीडित जनता को (बम्बे को) नयी पीढी (बच्चा) शोषण से बचाती है और दोनों एक हो जाती है।

यह विरोधाभास की बात लगती है कि दुनिया के सबसे बडे संपन्न एवं अमीर व्यक्ति की गिनती में भारत जैसे गरीब देश के कुछ व्यक्तियों के नाम पहली पंक्ति में आते हैं। हमारे देश में भूखमरे गरीब जनता की तादाद भी बहुत बडी है। हमारी व्यवस्था की दुर्बलता भी यही है। जहाँ लाखों निरीह बच्चे दाने-दाने के मोहताज है, वही, पूँजीपतियों की भरमार है। गरीब होना कोई पाप नहीं है।

हाथी की पों

'हाथी की पों' बच्चों को कर्मठ होने की प्रेरणा देता है। इसकी कथावस्तु कुतूहल से परिपूर्ण है। एक बूढ़ा बाबा हाथी की पों ढूँढ रहा है। हाथी की पों का रहस्य बाबा ने नहीं बताया केवल यही है कि वह इस दुनिया की सबसे कीमती चीज़ है। सोना-चाँदी, हीरे, जवाहरात उसके सामने मिट्टी है। एक बार दीख जाए तो फिर खोती नहीं। यह सुनकर

सभी बच्चे हाथी की पों ढूँढने लगते हैं। बच्चों का शोर सुनकर गाँव का एक आलसी आदमी भी उनके साथ ढूँढने लगता है क्योंकि बच्चों ने कहा कि हाथी की पों मिलने पर बिना काम किए ही मालामाल हो जाएगा। काफी ढूँढने के बाद जीवन में पहली बार उस आदमी को पसीना आ गया है और इसीलिए उसे पहली बार ठंडी हवा अच्छी लगने लगी।

आदमी प्रार्थना करने लगता है कि हाथी की पों मिल जाए। बाबा का यह कथन कि केवल प्रार्थना करने से नहीं मिलेगी, प्रार्थना करने के बाद खोजना पडेगा, खोजने से मिलेगी, बिना मेहनत करके, ईश्वर से प्रार्थना करके सब कुछ हासिल करने के लालची, आलसी लोगों की आँख खुलने के लिए है। आदमी और बच्चों ने मिलकर प्रार्थना की और आँखें खोली तो देखा कि बाबा गायब है। बाबा की चिट्ठी थी जिसमें हाथी की पों का रहस्य खुला लिखा था, "जिस चीज़ को भी खोजो पूरी लगन से खोजो। मेहनत से जो मिलता है, वही 'हाथी की पो' है। वही दुनिया में सबसे कीमती, सबसे सुन्दर, सबसे बडी है, उसे जिस रंग में चाहो उस रंग में खोज लो।"[1]

अनाप-शनाप

विरोधी प्रकृति के दो व्यक्तियों के बीच दोस्ती नहीं हो सकती क्योंकि उनके विचार, दृष्टिकोण और आदत भिन्न है, और ऐसे लोगों के

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड दो पृ. 240

मिलने से कोई काम न होगा। जो होगा अनाप शनाप ही होाा, इसकी सूचना देनेवाला नाटक है 'अनाप-शनाप'।

इस नाटक में तीन पात्र हैं - एक है अनाप जो सीधा चलता है दूसरा शनाप जो उल्टा चलता है। तीसरा चपड़कनाती है जो दो कदम आगे, एक कदम पीछे चलता है। अनाप और शनाप दोस्त बनकर एक ही घर में रहने का निश्चय करते हैं। घर की बात लेकर दोनों में तर्क-वितर्क हो गया क्योंकि दोनों की भिन्न रुचि है। दोनों लड़ने लगते हैं, तभी चपड़कनाती आकर इसका गलत फायदा उठाता है।

चपड़कनाती के कथन के अनुसार दोनों के कमीज़ें उतारकर सिर के बल खडे होते वक्त चपडकनाती उनके कपडों के जेब काटते हैं।

भों भों - खों खों

जानवर यदि मिलकर रहे तो आदमी का गुण पाता है, यदि आदमी एक दूसरे से लडे तो जानवर से भी बदत्तर हो जाता है। भों भों खों-खों द्वारा सर्वेश्वर बच्चों को मिलकर काम करने की प्रेरणा देते हैं।

यह एक कुत्ते और बंदर की कहानी है जिनके बीच लड़ाई कराके मदारी अपना लाभ उठाता है। मदारी उन्हें नचाता है, खूब पैसा भी कमाता है पर कुत्ते और बंदर को भरपेट भोजन तक नहीं देता। रोटी दिखाकर मदारी उनका शोषण करता रहता है। तब चूं चूं चूं चिडिया आकर उन्हें विद्रोह के लिए प्रेरित करती है। चूं चूं चूं बहुत से कुत्तों और

बन्दरों को बुला लाती है और सभी मिलकर मदारी को भगाते हैं। इसप्रकार यह नाटक सहयोग और संगठन पर बल देते हुए शोषण के प्रति विद्रोह की प्रेरणा देता है और आधुनिक बोध जगाता है।

लाख की नाक

'लाख की नाक' बच्चों को ईमानदार रहने की प्रेरणा देने के साथ-साथ भ्रष्ट व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य भी करता है। राजा के घूसखोर मंत्री तलवारों को सूंघकर, उनके पक्के लोहे की परीक्षा करता है। जो लोहार घूस देता है, उसीकी तलवारें खरीदी जाती हैं। राजा की सेना युद्ध में हार जाती है क्योंकि तलवारें कच्चे लोहे की हैं। एक लोहार, जो घूस नहीं देता था, अपनी तलवार में मिर्च लगाकर लाता है और मंत्री को परीक्षण के लिए देता है। ज्योंही मंत्री उसे सूँघता है, उसे छींक आ जाती है और झटके से मंत्री की नाक कट जाती है। राजा को मंत्री की घूसखोरी का पता लग जाता है। मंत्री को अपने राज्य से बाहर निकाल देता है। मंत्री कटी हुई नाक की जगह लाख की नाक लगवाता है, पर वह सूर्य की गरमी से पिघल जाती है। नाक मनुष्य की मर्यादा और ईमानदारी का प्रतीक है। यदि एक बार नष्ट हो जाए तो पुनः प्राप्त नहीं किया जा सकता।

सतही स्तर पर कार्यों की जाँच करना ही हमारी व्यवस्था जानती है। बाढ़ आजाए,भुखमरा हो जाए, ठंड से मारे जाए, सबकी वे ऊपर हवाई जहाज में बैठकर सूँघकर स्थितियों की भांप लेती है। ऐसी स्थिति में न्याय कहाँ होता है? यथार्थ स्थिति की कहाँ तक सच्ची परख होती है।

नाटक के अंत तक 'ले लो नाक' और 'नाक को कटने से बचाना है' 'नाक से ही यहाँ ज़माना है, यही स्वर चलते हैं जो समसामयिक स्थिति से जुड़ते हैं। इस व्यंग्य को राजा, रानी, मंत्री, सेनापति और साथ ही लोहार, लोहारिन, लड़की के माध्यम से दो वर्गों की टकराहट से और उससे उत्पन्न हास्यात्मक स्थिति को प्रस्तुत किया गया है। लोमड़ का मुखौटा लगाए चोबदार भी संपूर्ण संदर्भ का हिस्सा बनता है। पिपहरी, बांसुरी, सीटी, टीन की ढ़ोलक बजाते बच्चे खेल रहे हैं। राजा-रानी का लिल्ली घोड़ी पर सवार होना, परेड़ की सलामी का अभिनय करना, नाचना रोचक सत्य लगता है। सेनापति की कमर में टूटी हुई तलवार लटकाना, राजा के आनेपर मनहूस आवाज़ों का आना, एक कुत्ते का राजा के चारों ओर भौंकना रोना सब सांकेतिक हैं और सहज ढंग से व्यंग्य को पुष्ट करता है। अतः गिरीश रस्तोगी का यह कथन बिलकुल सही है कि "सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने बच्चों की मानसिकता, उनके स्वभाव को समझते हुए इधर जितने भी बाल-नाटक लिखे हैं, उनमें एक ओर बाल नाटकों के प्रचलित कथानक और परिवेश से हटकर आधुनिक संवेदना, आजका संदर्भ और व्यंग्य मिला हुआ है; दूसरी ओर शैली-शिल्प के सहज आकर्षक प्रयोग है।"[1]

इस नाटक का प्रथम मंचन कविता नागपाल के निर्देशन में नवंबर 1974 को रघुवीर सिंह जूनियर माडर्न स्कूल, नई दिल्ली, छः से आठ वर्ष तक की आयू के बच्चों द्वारा किया गया।

---

1. गिरीश रस्तोगी, नटरंग-खंड 9 अंक 35, 1980 पृ. 96

नाट्य समीक्षक सर्वेश्वर

नाट्य समीक्षक सर्वेश्वर, नाटककार सर्वेश्वर से कम प्रतिभावान नहीं है। नाटकों में सर्वेश्वर का जो व्यक्तित्व हमारे सामने दीप्तमान है, वही समीक्षा में भी निखर आता है।

नाटकों की समीक्षा करने में उनका मूल आधार है आम जनता जो अशिक्षित है, किसान खेतिहर, मज़दूर या मिल मज़दूर हैं। उनके अनुसार कोई भी वाद या आन्दोलन इस आम जनता के मद्देनज़र करना है।

"जनता के लिए नाटक' पर विचार करते वक्त वे कहते हैं कि यह एक विषय नहीं, आंदोलन है। उनके अनुसार "जनता के लिए नाटक जनता के शिल्प के जीवंत तत्वों को ग्रहण कर, उससे सीखकर, समसामयिक समस्याओं को खुले में उनके बीच ले जाकर खेलने के अपेक्षाकृत ढीले मनोरंजक विन्यास से मंडित होगा।"[1] 'बकरी' उनके अनुसार जनता के लिए लिखा गया नाटक है। ऐसे नाटक के लिए पाँच बातें ज़रूरी मानते हैं जिन्हें वे रंगपंचशील कहते हैं

1) जिस पश्चिमी ढंग के रचनात्मक विन्यास और चरित्रों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म मनोविश्लेषण की बात आधुनिक रंगकर्मी कहते हैं - उससे बचना है।
2) नाटक को तामझाम, प्रकाश व्यवस्था, ध्वनि संयोजन जैसी प्रेक्षागृही टीमटाम से मुक्त कर उसे खुले में लाओ।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड दो पृ. 271

3) नाटक को आम आदमी यानी जनता यानी तीन चौथाई अशिक्षित लोगों की सोच-समझ आशाओं आकांक्षाओं, धार्मिक शोषण, अन्धविश्वास तथा एक नवनिर्मित समाज की समस्याओं से जोडो। नाटक द्वारा इन्हें दृष्टि दो, उन्हें जबान दो।

4) हास्य और व्यंग्य का सहारा लो। उसके सूत्र ताने-बाने में न छूटने दो ओर 'टोटल थियेटर' की रचना करो जो हमारा अपना है।

5) छद्म राष्ट्रीय स्थापित प्रतिमानों के मोह से बचो और जिसे गवार कहते हैं, उस गंवार से सीखकर उसकी संवेदना की भाषा और व्याकरण को लेकर उसके पास जाओ और गंवार कहे जाने पर शरमाओ मत।

सर्वेश्वर के अनुसार राजनीतिक नाटक जन-नाटक और जनवादी नाटक में अंतर है, उनके अनुसार 'मुख्यमंत्री' 'महाभोज' 'जाति ही पूछो साधु की' जैसे नाटक राजनीतिक नाटक है, अंधेर नगरी जन-नाटक है, जनवादी नाटक नहीं। वे मानते हैं कि जनवादी नाटक के 'विषय-वस्तु और रूप दोनों में पूरा-पूरा परिवर्तन ज़रूरी है। न तो केवल विषय-वस्तु का परिवर्तन जनवादी नाटक हो सकता है, न केवल परिवर्तन। जनवादी नाटक को तमाम शोषण और अन्याय की बुनियाद में जाना होगा-यानी वर्गसंघर्ष को समझना होगा, इस सारे अन्याय - शोषण के पीछे, सामाजिक बनावट और रिश्तों की बुनावट की नींव में जो आर्थिक आधार है, उस आर्थिक आधार के जो राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय सूत्र हैं इन सबको समझना

होगा इस तरह उस बुनियाद को समझकर ही जनवादी नाटक लिखा जा सकता है क्योंकि जनवादी नाटककार इसे समझेगा नहीं तब तक नाटक के द्वारा वह न कहीं पहुंच पाएगा न पहुँचा पाएगा।

जनवादी कवि जो कहते हैं, जनवादी नाटककार को वह नहीं कहना चाहिए। जनवादी कवि एक पैर साहित्य की नाव में, दूसरा जनचेतना की नाव में रखकर खडा होना चाहते है। दो नावों में पैर रखने का नतीजा सब जानते है। इसलिए जनवादी नाटककार को साहित्य की चिंता न करके जन की चिंता करनी है। उसे सीधे अपने दर्शक को देखना है अस्सी प्रतिशत गाँव की अनपढ़ जनता की ओर, किसी नाट्य समीक्षक और साहित्य के पंडे की ओर नहीं। उसे ज़मीन पर खड़ा होना है।

ऐसे जनवादी नाटक बंद प्रेक्षागृहों में नहीं खेला जायेगा। उसे बाहर निकलकर बाहर सड़क पर, गाँवों की अमराइयों और चौपालों में आना पडेगा। और देशकाल के अनुरूप अपने खडे होने का ढंग बदलना होगा, अपना अंदाज़ बदलना पडेगा। इसलिए जनवादी नाटक जन का हो जाएगा, उन सबका हो जाएगा जो अपने जन से जुडा होने की घोषणा करते हैं। "वह न केवल कम्यूनिस्ट पार्टी का होगा, न मार्क्सवादी कम्यूनिस्ट पार्टी का, न मार्क्सवादी लेनिनवादी कम्यूनिस्ट पार्टी का।"[1] चौराहे पर आकर वह बदलता है। काल के थपेडों में नष्ट होना जनवादी नाटक की नियति है। क्योंकि चौराहा नाटक रोजमर्रा के सवालों से जुड़ता है।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड दो पृ. 274

सर्वेश्वर की मान्यता है कि जनवादी नाटक की मंज़िल एक शोषणमुक्त समाज की रचना करता है, जहाँ सब समान है।

जनवादी नाटक को 'गटर नाटक' कहनेवाले समीक्षकों पर वे आरोप लगाते हैं कि वे अभिजात संस्कृति के पोषकों के षड्यंत्र के शिकार हैं। इसलिए वे लोग नाटकों को दूर-दर्शन और रेडियों से जोड़ने की वकालत करते हैं बिना यह सोचे हुए कि इनसे जुडना उस सत्ता की शर्तों पर ही संभव है जिससे लड़ना ही उनका मूलाधार है। सर्वेश्वर कहते हैं कि जनवादी नाटकों का आधार शहर नहीं गाँव होंगे। अतः जनवादी नाटकों को सारा तामझाम, साहित्यिक गूढ़ता, रहस्यमयता छोड सड़क पर आना है, खुले में सांस लेना है और उस आदमी से बात ही नहीं करनी है, उसे हंसाना और रिझाना ही नहीं है; उसे समझाना, रास्ता दिखाना और संगठित होकर, एक होकर एक समान लक्ष्य की ओर बढ़ाना है जो इस पूँजीवादी, साम्राज्यवादी, और उपनिवेशवादी सभ्यता में आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक हर तरह के शोषण और अन्याय का शिकार है और अपनी लड़ने - जूझने की ताकत और अपनी अस्मिता खोता जा रहा है और अपने मानवीय रिश्तों और प्रेम की परिधि को सिकुड़ते-सिकुड़ते लुप्त होते देख रहा है।

'थोड़ा सरकिए, बच्चों को जगह दीजिए' में सर्वेश्वर यह माँग करते हैं कि नाटकीकरण में बच्चों की जो प्रतिभा है, उसके विकास के लिए कुछ किया जाय। श्रीमती रेखा जैन की संस्था उमंग के द्वारा बच्चों

के जो नाटक खेले गेए उनकी तारीफ करते हुए वे कहते हैं कि बच्चों में असाधारण प्रतिभा है, पर इनके लिए कोई रास्ता नहीं है। संस्कृति की दुनिया में बडे लोग बडे-बडे संस्थान बनाकर जगह घेरकर बैठे हुए है, बच्चों को जगह देने के लिए कोई तैयार नहीं है।

सर्वेश्वर उन नाटकों को सफल मानते हैं जो सीधा आम जनता को छूते हैं, उनकी भाषा में, उनकी शैली में खेले गए हों, जो ऊपरी तामझाम से बिल्कुल अलग हो।

पर्वतीय कलाकेंद्र, दिल्ली द्वारा आयोजित 'अजुवा बफौल' उन्हें इसलिए अच्छा लगा कि बिना किसी अतिरिक्त मंचसज्जा के सीधे-सादे तरीके से हुमायूंनी भाषा की मिठास और उसकी लोकधुनों की रंजक छटाएँ सुमघुर कंठों से पेश की गयी। उत्तरांखंड की अमर शौर्य गाथा है अजवा बफौल। उसका कथानक पारंपरिक लोकथाओ का है जिसमें देशप्रेम, आत्मसम्मान, नृशंसता और अन्याय पर न्याय की विजय, त्याग, प्रेम, क्षमा, लोककल्याण के लिए प्रतिबद्धता और आहंसक तरीके से सत्ता-परिवर्तन का जनवादी संदेश निहित है।

इसीप्रकार राजधानी के राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के द्वितीय वर्ष के छात्रों द्वारा प्रस्तुत 'चंद्रमासिंह उर्फ चमकू' नाटक की वे सराहना करते हैं। लू शुन की प्रसिद्ध कहानी 'आक्यू की सच्ची कहानी' का भानु भारती द्वारा किया गया खूबसूरत नाटकीय रूपांतरण है। रूपांतरण अवधी में है। सर्वेश्वर के अनुसार इस नाटक की विशेषता इसमें कलाकारों ने रूढ़ग्रस्त

अभिनय व्यक्तित्व को छोड़कर सहज अभिनय प्रस्तुत किया। रूपांतरण में समसामयिक भारतीय राजनीतिक परिवेश को बुना गया है और भोजपुर क्षेत्र के नक्सलवादी आन्दोलन की पृष्ठभूमि में गाँव को और उसके चरित्रों को समाहित करने का प्रयत्न किया गया है। सर्वेश्वर कहते हैं, "प्रस्तुति में मंच रूप और अभिनय ही श्रेष्ठ नहीं थे, गाँव का पूरा वातावरण, चरित्रों का अवधी में ही बोलने का अपना अलग-अलग लहजा उनके वस्त्र, उनके चाल, सब अलग प्रतिमान बनाते थे। पहली दफा ऐसा हुआ अलग-अलग भाषा क्षेत्रों से आए छात्र अपने उच्चारण में बेढंगे नहीं दीखे बोली में सबकी भाषिक कमज़ोरियाँ खप गयीं।"[1]

सर्वेश्वर कभी भी ऐसा नहीं मानते हैं कि नाटक 'अभ्यस्त' लोग ही करें। 'यह घर मेरा नहीं' नाटक की सराहना वे इसलिए करते हैं कि इस नाटक को जिन्होंने प्रस्तुत किया, वे न साहित्यकार हैं, न नाट्य व्यवसायी,न नाट्यशिक्षण संस्थाओं के निष्णात लोग। ये जीविकोपार्जन के लिए अलग-अलग काम करते हैं लेकिन कुछ ऐसा कहने के लिए नाटक लिखते और खेलते हैं जो उन्होंने झेला है।

यदि कोई नाटक समसामयिक समाज को अनदेखा करता है तो सर्वेश्वर को वह खलता है। मृणाल पांडे का नाटक 'जो राम रचि राखा उर्फ किस्सा मन्ना सेठ का' नाटक की वे शिकायत करते हैं कि वह नाटक अपनी भाषा, संगीतमय छंदों की सफाई, अपनी व्यंग्यात्मक शैली, बारीक

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड दो पृ. 278

चुटकियों की छटा के बावजूद दृष्टिहीन है। इतना ही नहीं, समसामायिक सामाजिक लडाई के प्रति इस हद तक असंवेदनशील है और उसे उलझाकर रखता है कि प्रतिबद्ध सामाजिक दृष्टि रखनेवाला प्रेक्षक इसे लेखिका का चरित्र ही नहीं; इस लडाई को गुमराह करनेवाली सत्ता और पूँजी की ताकतों के षड्यंत्र में साझीदार मान बैठता है। सर्वेश्वर अपने क्रोध को गुप्त न रखते हैं और कहते हैं कि यह नाटक और खेला जा रहा है - प्रतिबद्ध रंगकर्मियों और प्रेक्षकों के मन में और गुस्सा जगाता जा रहा है और सत्ता और पूँजी के लोगों को, जो अपने अस्तित्व रक्षा के लिए इस बडी सामाजिक लडाई के विरुद्ध है, और खुश करता जा रहा है।

सर्वेश्वर हमेशा कुछ अलग सोचनेवाले हैं और उसी तरह सोचनेवाल की वे सराहना भी करते हैं। त्रिपुरारी शर्मा का 'बहु' नाटक उन्हें इसीलिए पसंद आया कि वह नारी-मुक्ति का नाटक है जबकि हिन्दी में केवल नारी-संघर्ष के नाटक ही लिखे जाते हैं।

हिन्दी नाटकों की मंच गति को एक नया आयाम दोनेवाले नाटक के रूप में भानु भारती के 'दि एलिफैंट' की प्रशंसा करते हैं। वह एक आधुनिक जापानी नाटक है जिसके लेखक हैं बेत्सुयाकूमिनोरु। अपनी प्रस्तुति में भानुभारती ने नाटक के संकेतिक अर्थों, अभिप्रायों और निहितार्थों की ही रक्षा नहीं की बल्कि सादे मंच पर कल्पनाशील प्रकाश योजना, पात्रों की गति, भंगिमाओं तथा बोलने के ढंग से ऐसे वातावरण को भी सृष्टि की जिसने हिंदी में होते हुए भी जापानी जीवन का एक

विश्वसनीय चित्र मंच पर प्रस्तुत किया। चित्र त्रासद था। क्योंकि नाटक हिरोशिमा पर परमाणु बम गिराए जाने के आतंककारी प्रभाव को बेहद सघन रूपमें प्रस्तुत करता था।

'लोक रूपों का प्रयोग क्यों' नामक लेख में सर्वेश्वर हिन्दी नाटकों का लोकनाट्य रूपों में मढ़े जाने की ज़रूरत पर विचार प्रकट करते हैं। उनके अनुसार नाटकों में लोकनाट्य रूपों का सही इस्तेमाल सार्थक तभी लगता है, जब उद्देश्य शहरों से निकलकर लोक तक पहुँचने का हो और वह सब प्रेषित करने का हो जिसकी जानकारी लोक अस्तित्व केलिए ज़रूरी होती जा रही है और जिसके आधार पर एक नया लोकमानस तैयार किया जा सकता है जो समाज की रचना के लिए शोषण और अन्याय से नये संघर्ष का महत्व समझे। लोक को यहाँ तक ले जाना आज नाटक का काम है क्योंकि वह अभी फिल्मों के और पूँजी की तमाम विद्रूपताओं के नाटक खेला जा सकता है और गाँव-गाँव पहूँचाया जा सकता है। इस यात्रा को संपन्न करने के लिए लोकनाट्य रूपों का इस्तेमाल अनिवार्य है शेष तो दिखावा और छलना है।

राजनीति और समाज से जुडे जो भी नाटक खेले जाते है, सर्वेश्वर उनके पक्ष में है, यद्यपि उनका मंचीकरण उतना अच्छी तरह नहीं हुआ हो। राजधानी के श्रीराम संस्कृति कला केन्द्र के तलघर में अभिकल्प द्वारा प्रस्तुत डॉ. कुसुम कुमार का नाटक 'सुनो शेफाली' का और अधिक मंचन हो जाए, यही सर्वेश्वर की आशा है। उसका प्रस्तुतीकरण उतना

अच्छा नहीं निकला, फिर भी सर्वेश्वर इसलिए उसकी तारीफ करता है कि नारक समसामयिक राजनीति के एक ऐसे छद्म को अपना विषय बनाता है जिधर नाटककारों का ध्यान बिल्कुल नहीं गया है। नाटक में एक समाजसेवी का चरित्र उकेरा गया है जो उच्चकुल का होते हुए भी अपने लडके का व्याह एक हरिजन लड़की से इसलिए करना चाहता है ताकि वह उसका इस्तेमाल अपने चुनाव प्रचार में कर सके। संबंधों को भी राजनीति के मोहरे की तरह खेला जाता देख हरिजन लड़की जो सचमुच उस समाजसेवी के लड़के को प्यार करती है, उससे शादी करने से इनकार कर देती है। लेकिन समाजसेवी उसकी माँ को फुसलाकर उसकी छोटी बहन से अपने लडके की शादी कर देता और अपनी योजना में कामयाब हो जाता है। नाटक यह संकेत देता है कि जात पांत का इस तरह राजनीति में इस्तेमाल जात-पांत से मुक्त होना नहीं बल्कि उससे और भी घटिया ढंग से जुडना है। सर्वेश्वर चाहते हैं कि यह नाटक और खेला जाना चाहिए और इस महत्वपूर्ण विषय को मंच पर आना चाहिए।

सर्वेश्वर के अनुसार भीष्म साहनी का 'कबीरा खड़ा बाज़ार में' आलेख और प्रस्तुति दोनों ही स्तर पर निराश करता है। कबीर का बहुमुखी व्यक्तित्व है "एक ओर रोज़मर्रा की ज़िन्दगी से लड़ते हुए साधारण व्यक्ति थे तो दूसरी और महान साधक थे। वह एक ओर समाज सुधारक की तरह समाज की बराबरी की लडाई लड़ रहे थे तो दूसरी ओर आध्यात्मिक लड़ाई भी। धर्म, भक्ति, प्रेम, योद्धा और इन सब के ऊपर एक संवेदनशील, अपने को भाषा के हर जोखम में डालता महान कवि।

यह राग-विराग एक साथ कबीर में इस तरह मिला है कि उसे नाटकीय भाषा में बांधना कठिन है। कबीर के व्यक्तित्व के अनगिनत पहलुओं को जिनमें से कोई भी किसी से कम नहीं, समेट लेना आसान नहीं है।"[1] भीष्म साहनी कबीर के व्यक्तित्व से केवल भावात्मक एकता का मुद्दा खरोंचकर ले आए, पर वह प्रभावशाली नाटक नहीं बना।

सर्वेश्वर के अनुसार इस नाटक की सबसे बडी गलती कबीर को पात्र बनाकर मंच पर लाने की है। वह इसलिए है कि महापुरुषों का एक व्यक्तित्व मन और मस्तिष्क में सदा रहता है, उसे मंच पर दिखाना उन्हें छोटा करना होता है। इसकी भाषा सबसे ज़्यादा अखरती थी कि वह न अवधी थी न भोजपुरी। अच्छे गायकों का अभाव भी नाटक पर बुरा प्रभाव डाला। 'कबीर पर नाटक' लेख में सर्वेश्वर का समीक्षक व्यक्तित्व निखर आता है।

सर्वेश्वर प्रतिबद्ध नाटककार है, समाज के प्रति, रंगमंच के प्रति, नाटक के प्रति वे प्रतिबद्ध है। इसलिए उन्हें समाज और राजनीति से जुडे हुए नाटक अधिक अच्छे लगते हैं जबकि मनोविश्लेषणात्मक नाटक उतने अच्छे नहीं लगते। पाठक या प्रेक्षक भी ऐसे सोचने लगे हैं।

स्त्री-पुरुष संबंधों के नाटकों की ओर से नाटक लिखनेवालों और खेलनेवालों का ध्यान ऐसे नाटकों की ओर जाने लगा है जो आज की राजनीतिक सामाजिक स्थिति से जुडे हों। रंगकर्मियों की चिंता अब

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड दो पृ. 294

ऐसे नाटकों के खेलने की होती जा रही है जो इंसान के मन की रचना से अधिक समाज की रचना के संदर्भ में प्रासंगिक हों। "इसलिए अब मोहन राकेश उतने नहीं खेले जाते जितना ब्रेश्ट के नाटकों का अनुवाद तथा हिन्दी में लिखे कुछ एक-दो राजनीतिक नाटक खेले जाते हैं। अन्य भारतीय भाषाओं से अनूदित वे ही नाटक ज्यादा खेले जा रहे हैं जो देशकी सामाजिक राजनीतिक संरचना से अधिक प्रतिबद्ध हैं जिनमें विजय तेंदुलकर और बादल सरकार के कुछ नाटक आते हैं।"[1]

सर्वेश्वर का मानना है कि हिन्दी में एक-दो को छोडकर राजनीतिक नाटक नहीं हैं। ऐसा कहने से सब गलत समझेंगे कि राजनीति पर कोई नाटक नहीं लिखा गया; यह नहीं है। जैसे नाटकों की कमी नहीं है जिनमें राजनीतिक फिकरेबाजी होती है। उनकी मान्यता है कि राजनीतिक फिकरेबाज़ी राजनीतिक नाटक नहीं है, न ही भोंडे व्यवस्था विरोध का नाटक राजनीतिक नाटक है। व्यवस्था विरोध गालियाँ देना नहीं है। क्योंकि गलियों देने से गलियों खानेवाला जीवित रहता है, उसका अहित नहीं होता। अक्सर व्यवस्था भी यही चाहती है कि उसे गलियाँ देनेवाले लोग बने रहें और वह यह कह सकें कि उसने गलियाँ देनेवालों को स्वाधीनता दे रखी हैं विरोधियों का वह सम्मान करती है। लेकिन वस्तुतः यह नपुंसक विरोधियों का सम्मान होता है। सर्वेश्वर के अनुसार सही राजनीतिक नाटक ऐसा सतही विरोध नहीं करता। वह गलत

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड दो पृ. 301

व्यवस्था-शोषक या अन्यायी व्यवस्था के अस्तित्व के लिए चुनौती बनता है क्योंकि वह उन चालों को बेनकाब करता है जिनपर वे अपना साम्राज्य खड़ा करते हैं। "इस तरह व्यापक अर्थों में वह व्यवस्था विरोध से नहीं मानवीय नियति से जुड़ता है और देशकाल से ऊपर भी उठ जाता है। अतः सही राजनीतिक नाटक सामाजिक, राजनीतिक तंत्र को उसके आर्थिक ताने-बाने के साथ वर्ग चेतना की भूमि पर परखता हुआ उसे मानवीय नियति से जोड़कर देशकाल से ऊपर उठाता है।"[1]

इसलिए सर्वेश्वर चाहते हैं कि हिन्दी मंच को सही राजनीतिक नाटकों की जरूरत है। क्योंकि रंगजगत तेज़ी से बदल रहा है। नाटक देखने और करनेवालों की ज़रूरतें बदल गयी हैं, उनकी माँगें बदल रही हैं।

राजधानी के श्रीराम कला संस्कृति केन्द्र में 'कोरस' नाट्य मंडली ने भास के संस्कृत नाटक 'ऊरुभंगम्' को मणिपूरी भाषा में रीतिबद्ध प्रयोगात्मकता के साथ प्रस्तुत किया। सर्वेश्वर के अनुसार इस नाटक को हर रंगकर्मी के लिए देखना ज़रूरी था क्योंकि इससे बहुत कुछ सीखा जा सकता है और क्षेत्रीय कलाओं से समसामायिकता को पुष्ट करने का मुहावरा अपनाया जा सकता है। "इस नाटक के प्रस्तुति संवादों के साथ नृत्य गीतियों के संघटन परंपरा और आधुनिकता का सुंदर गुंफन तथा सामूहिक रूप से संवाद बोलने की कुशलता के कारण और अधिक ध्यान आकर्षित करती है। वेशभूषा, संगीत, नृत्यगतियां निराली हैं ही,

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड दो पृ. 303

और मणिपूरी न जाननेवाले तमाम दर्शकों को अपने आकर्षण में बांधे रहती है।"[1]

सर्वेश्वर जी के अनुसार एक नाटक की समीक्षा के आधार उसके कथ्य, शिल्प, संगीत, अभिनय, भाषा आदि है। यद्यपि कथ्य उतना अच्छा नहीं है, तो भी संगीत, भाषा और सफल अभिनय आदि अच्छा है तो नाटक देखा जा सकता है। हबीब तनवीर का सूत्रधार-77 इस तरह का नाटक है। 'बादल सरकार द्वारा आयोजित कार्यशिविर जो रंगकर्मियों के लिए था, उसकी सर्वेश्वर खूब निंदा करते हैं। प्रशिक्षण के नाम पर वहाँ क्या हुआ, इसमें संदेह है। वहाँ सब अंग्रेजी का प्रयोग करते थे। सर्वेश्वर के अनुसार यह भ्रष्ट संस्कारों का द्योतक है। उन्हें आश्चर्य होता है कि बादल सरकार जैसे नाटककार को अपने द्वारा संचालित शिविर में न भाषा की चिंता थी, न किसी सामाजिक चेतना या दृष्टि की। "एक प्रशिक्षार्थी से दिनमान द्वारा यह पूछे जाने पर कि कार्यशिविर कैसे लगा उत्तर मिला एक अच्छी-खासी पिकनिक जैसा मज़ा आया। कहीं कोई बंधन नहीं था, अच्छा लगा। सर्वेश्वर पूछते हैं, क्या मात्र अच्छा लगना ही अभीष्ट होना चाहिए?"[2]

किसी कहानी को नाटक का रूप देने पर यह ध्यान देना चाहिए कि कहानी और कहानीकार के साथ न्याय करें। राजधानी के

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड दो पृ. 303
2. वहीं पृ. 312

लिटिल थियेटर द्वारा प्रस्तुत नाटक कफन प्रेमचंद की कहानी पर आधारित है, पर उसके साथ न्याय नहीं कर सका। लेखक की समझ में नहीं आता कि किसी महान कृति के साथ कितनी आज़ादी ली जा सकती है? पूरा नाटक एक गहरी करुणा जगाने के बजाय हास्य जगाता है, नाच-गाने तथा कथाओं के पिरोये जाने से मूल बिन्दु से पृथक करता है। गरीबी की करुणा नहीं जगाता, गरीबी की मज़ाक उडाता है। सर्वेश्वर कहते हैं, नाटक में नाटक भी गया, कहानी भी गयी। कोई ज़रूरी नहीं कि यदि इस कहानी का नाटक नहीं बनता तो जबरदस्ती बनाया जाय। इससे अच्छा बिना कहानी को लपेट हुए एक स्वतंत्र आलेख लिखा जाता। कफन पर कफन न डाला जाता।

हबीब तनवीर के 'चरनदास चोर' की सराहना सर्वेश्वर करते हैं क्योंकि उसका कथा शिल्प, संगीत, लोकधुन, अभिनय नृत्य सब बेजोड़ है। इस नाटक का लेखक और निर्देशक हबीब तनवीर है जो लोकमंच का हनुमान कहलाता है।

सर्वेश्वर कहते हैं रंगमंच के विकास के लिए और उन्हें साधारण सिनेमा देखानेवाले प्रेक्षकों तक पहूँचाने के लिए हल्के-फुल्के मनोरंजनों की सख्त जरूरत है। मसलन मराठी के दो हास्य नाटकों के हिंदी रूपांतरों की प्रस्तुति के कारण पहली बार टिकट खरीदकर देखनेवालों की भीड लिटिल थियेटर में टूटी। पर निराशाजनक बात यह है कि हिन्दी में हास्य नाटक बहुत कम है। हिन्दी में ज़्यादातर नाटक या तो अंग्रेज़ी से अनूदित हैं या अन्य प्रान्तीय भाषाओं से।

सर्वेश्वर हमेशा कृत्रिमता के विरोधी थे। इसलिए कुछ लिखने के लिए लिखना यह उनकी राय में ढोंग है। सुरेन्द्र वर्मा का नाटक 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' को वे उतना अच्छा नहीं मानते। उनकी राय है कि यदि यह नाटक पंद्रह-बीस साल पहले लिखा गया होता तो कथा और शैली दोनों ही दृष्टियों से रंगप्रेमियों का ध्यान आकर्षित करता। "एक ऐतिहासिक और पौराणिक प्रसंग चुनना, फिर उस काल विशेष के चरित्रों को विश्वसनीय बनाने के लिए उस काल की भाषा की खोज के बहाने अटपटी संस्कृतनिष्ठ बोझिल भाषा लिखना और बीच-बीच में कुछ ऐसी परते उकेरना जिससे नाटक समसामयिक सवालों से जुड़ जाए यह सब नाटककार के आत्मविश्वास की कमी का सूचक है। यह समसामयिक यथार्थ से पलायन है जो साहस की कमी से उत्पन्न होता है।"[1]

सर्वेश्वर के अनुसार ऐतिहासिक या पौराणिक कथानक चुनकर प्रेक्षक को अदेखे सुदूर अतीत में ले जाना और उसकी कल्पना को उसके अनुभव से परे ले जाकर उस पर रचनाकार का अवांछित आतंक लादना उस काल की वेशभूषा, कृत्रिम भाषा सबसे नाटकीयता उत्पन्न करने की चेष्टा करना, ये सब नाटक के शार्टकट है। सर्वेश्वर कहते हैं, "रोजमर्रा के यथार्थ से रोजमर्रा की भाषा के सहारे नाटकीयता उभारने और सवालों के सीधे टकराने का साहस जिस रचनाकार में नहीं होता, वह इस

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड दो पृ. 338

शार्टकट को अपनाता है। सुरेंद्र वर्मा प्रतिभाशाली युवा नाटककार है, उन्हें इस शार्टकर से बचना चाहिए। भाषा और सवालों से सीधे टकराना चाहिए। यदि उन्हें स्त्री पुरुष के रिश्ते के सवाल ही आज सबसे अहम सवाल लगते हैं तो भी उनसे सीधे साक्षात् करना ही श्रेयस्कर है।"[1]

सर्वेश्वर भारत की पुरानी लोक शैलियों को बरकराए रखने के समर्थक है। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय और एशियाई रंगमंच संस्थान के छात्रों ने अपने दीक्षांत समारोह के अवसर पर कर्नाटक की प्राचीन नृत्य नाट्य शैली यक्षगान में भीष्म यज्ञ प्रस्तुत किया। सर्वेश्वर उसके लिए उनको बधाई देते हैं। उनकी राय में यक्षगान जैसे लोकरूप सांस्कृतिक निधियाँ हैं जिन्हें सुरक्षित रखने के साथ-साथ पुनर्जीवित करने के लिए उनके सही रूपों को जानना ज़रूरी है। इस जानकारी से ही वर्तमान के लिए उनकी सामर्थ्य की पहचान की जा सकीा है। अपने देश के इन लोकरूपों की व्यापक जानकारी कराने की दिशा में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय द्वारा यक्षगान की प्रस्तुति को पहला सराहनीय कदम मानकर उसका स्वागत किया जाना चाहिए। एक नौटंकी की समीक्षा नौटंकी में ही करनेवाले सर्वेश्वर पहले समीक्षक होंगे और उस नौंटकी की खिल्ली उडाता है।

है प्रार्थना अब यही, यूं गुस्सा न गोबर कीजिए,
अब छोडिए यह बचपना कुछ काम सोबर कीजिए,

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड दो पृ. 338

है लोक नाटक को जरूरत आज सच्चे आग की,
फैशन नहीं, सच्ची लगन सच्चे लगे अनुराग की।"[1]

आधुनिकता का दावा लगाते लिखे और खेल जानेवाले नाटकों की सर्वेश्वर कटु आलोचना करते है। कुछ लोग पश्चिमी नाटकों के आधुनिक मुहावरे की नकल करके भारतीय नाटक में आधुनिक मन का चित्रण करते हैं, जो एकदम गिरा हुआ है। रमेश बक्षी का 'देवयानी का कहना है' इस तरह का एक नाटक है। सर्वेश्वर कहते हैं कि इस नाटक में सारी आधुनिकता सतही दीखती है और किसी बडे संकट से न जुड़कर अर्थहीन आवेश और बचकानेपन से जुडती है। "आधुनिक लेखक ऐसा नाटक लिखकर आधुनिकता को बदनाम करता है और समाज को बजाय आगे खींचने के पोंगापंथियों के घेरे में ढकेलता है।"[2]

राजधानी में 'हयवदन' की खूब चर्चा रही। 'हयवदन' यक्षगान के रूप पर आधारित गिरीश कर्नाड का नाटक है। इस नाटक का अनुवादक हिंदी में ब.व. कारंत ने किया। समकालीन समाज से इस नाटक को जोड़ा गया है, इसलिए सर्वेश्वर को अधिक महत्वपूर्ण लगा। लेखक ने लोकतंत्र और तानाशाही की कार्य पद्धति की ओर इशारा किया, और इस तरह वह केवल भावना का नाटक न होकर विचारों का नाटक बना है इसीलिए समसामयिक आधुनिक नाटक को नया तेवर देता है।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड एक पृ. 368
2. वहीं पृ. 370

जिस लोकरूप में सारे नाटक को ढाला गया है और जिसको बहुत ही सफल रूप निर्देशक ब.व. कारंत ने दिया, वह सराहनीय है।"[1]

समकालीन सामाजिक यथार्थ को उभारनेवाली नाट्यकृतियों की सर्वेश्वर सराहना करते हैं। किशोर घोष की कहानी पर आधारित नाटक सगीना महतो का निर्देशन बादल सरकार ने किया। यह कहानी उस सामाजिक मर्म को छूती है जो मज़दूर संघर्षों, पूँजीपतियों, मज़दूर वर्ग के त्रिकोण में स्थित है और मज़दूर नेताओं और मज़दूर आंदोलनों की नियति की ओर संकेत करती है। सर्वेश्वर इसमें यह खूबी देखते हैं कि यह ऊपर से देखने पर पूँजीपतियों द्वारा मज़दूरों का शोषण और उनके विरुद्ध मज़दूरों की लडाई की हिमायत करती दीखती है। लेकिन गहराई से देखने पर इस लड़ाई को ट्रेड यूनियन के माध्यम से जोड़ने के खतरे उभारकर बेजान बनाती है। बडी सफाई से मज़दूरों की लडाई को एक राजनीतिक शक्ति बनाने की प्रक्रिया की जड़ काटती है।"[2]

"किस्सागोई, कहानी की प्रस्तुति जो नाटक नहीं है" में सर्वेश्वर कहते हैं कि कहानी की प्रस्तुति अलग विधा है, नाटक अलग। इस एक लेख द्वारा सर्वेश्वर का समीक्षक व्यक्तित्व उभरकर आता है। किसप्रकार कहानी की प्रस्तुति नाटक से भिन्न है, वह सटीक ढंग से इसमें बताया गया है वे कहते हैं कि दो कहानियों की प्रस्तुति एक जैसी नहीं

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड दो पृ. 395
2. वहीं

हो सकती। इसलिए कहानी की प्रस्तुति का फार्मुला नहीं हो सकता, जैसे अक्सर नाटक का होता है। हर कहानी अलग 'ट्रीटमेंट' चाहती है। कहानी की प्रस्तुती दर्शक असावधान होकर नहीं देख सकता। नाटक में थोडी असावधानी से उतना बनता-विगड़ता नहीं, जितना कहानी में। कहानी का एक-एक वाक्य महत्वपूर्ण है। वहाँ कोई घटना ही नहीं है, बल्कि घटना को गहरी मानवीय चिन्ताओं से जोड़कर रखना है। इसलिए सर्वेश्वर प्रेक्षकों से अनुरोध करते हैं कि वे अपने को तैयार करें और हल्के फुल्के नाटकीय मनोरंजन की आशा लेकर ही इन प्रवृत्तियों को देखने न जाएं। वे यह दायित्व भी लेकर जाएँ कि उन्हें कथा के साहित्यिक रूप को भी कुछ गहराई से समझना है।

आई.एस. जौहर का नाटक भुट्टो की प्रस्तुति रोक दिया गया है, इस खबर पर सर्वेश्वर टीका-टिप्पणी करते है। इस नाटक को इसलिए रोक दिया गया है कि यह दो देशों के रिश्ते को खराब कर सकता है। सर्वेश्वर की समझ में नहीं आता कि नाटक के कारण कैसे दो देशों के संबंध बिगड जाते हैं जबकि संबंध राजनीति बिगडती है, संस्कृति नहीं। यदि नाटक से संबंध बिगडते तो बर्नार्ड शा के नाटक 'मैन आफ डेस्टिनी' को लेकर इंग्लैंड और फ्रांस में लडाई हो जानी चाहिए थी क्योंकि उसमें नेपोलियन की खिल्ली उडायी गयी है।

वास्तव में 'भुट्टो के भुट्टो और जिया पाकिस्तान के स्वर्गीय प्रधानमंत्री भुट्टो और वर्तमान राष्ट्रपति जिया के चरित्र पर कहीं भी

आरोपित कलंक नहीं लगाते बल्कि उनकी अपनी-अपनी कर्मियों और विशेषताओं को इस खूबी से रेखांकित करते हैं कि मानव स्वभाव की परते खुलती हैं।"[1]

कठपुतली नाटकों की ओर भी सर्वेश्वर के समीक्षक व्यक्तित्व का ध्यान गया है। उनके अनुसार कठपुतली नाटक को नाटक के समान नहीं होना चाहिए। वे इसलिए कहते हैं कि अब सारी दुनिया में कठपुतली का तमाशा सडक से हटकर बडे-बडे प्रेक्षागृहों में पहुंच गया है और बतर्ज नाटक और फिल्म के पूरे यथार्थवादी मंच पर उसे प्रस्तुत किया जाने लगा है। सर्वेश्वर इसे सराहनीय नहीं मानते हैं। उनको दुःख है कि अब भी हमारे यहाँ कठपुतली नाटक साहित्य नहीं है। नाटक का आलेख कठपुतली नाटक का आलेख नहीं हो सकता।

निष्कर्षतया हम यह कह सकते हैं कि सर्वेश्वर एक समीक्षक भी है। उनकी समीक्षा का मूल आधार सामाजिक यथार्थ है। नाटककारों ने किस प्रकार समसामयिक समाज को अपने नाटकों में उभारा, यही उनकी कसौटी है। नाटकों को अधिक जनकीय और क्षेत्रीय बताने के पक्ष में हैं सर्वेश्वर।

उनकी समीक्षा पढ़ने पर मालूम हो जाता है कि वे हिन्दी या उत्तर भारत तक सीमित नहीं थे, बल्कि दक्षिण के नाटककारों से भी उनका परिचय था, उनके नाटक भी उन्होंने देखे हैं।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड दो पृ. 274

7
8971-11 51X

नाटकों की समीक्षा करने में उनकी भाषा की असीम क्षमता है। चौराहा नाटकों पर कहने के लिए उन्होंने जो कहा है, वह उनकी अपनी भाषा है, "चौराहा नाटक छोटा, बिना ज़्यादा लपेट के सीधी बात कहनेवाला, दो टूक शैली में होगा। बात वहाँ ज़रूरी है। बात दाल की तरह होगी, कला उसमें बघार की तरह। यह वह नहीं कर सकता कि कला दाल की तरह हो और बात बघार की तरह। यह मानकर चलना चाहिए कि वह कल अखबार की तरह बेकार हो सकता है।"[1]

उनके नाट्य साहित्य के विचार विश्लेषण के बाद इस निष्कर्ष पर पहूँच सकते हैं कि उसमें आजकी समस्त समस्याएँ हैं और उनसे निबटने की इच्छा भी है, आस्था भी है।

❖❖❖

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड दो पृ. 274

तीसरा अध्याय

सर्वेश्वर के कथा साहित्य की सामाजिकता का विश्लेषण

सर्वेश्वर के कथासाहित्य की सामाजिकता का विश्लेषण

दिल और दिमाग से संवाद करनेवाले सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का कथा साहित्य अनुभूत सत्य के प्रामाणिक दस्तावेज़ हैं। उनकी कहानियाँ और उनके उपन्यास सीधी ज़िन्दगी से जुडे हुए हैं जिनमें मानवीय संवेदनाओं की रागात्मकता मौजूद है।

सर्वेश्वर सामाजिक चेतना के कथाकार है। वे व्यक्ति को उनके यथार्थ परिवेश में देखने की आग्रहशीलता को लेकर निर्मित हुए हैं। वे मनुष्य को मनुष्य की दृष्टि से देखते हैं। उनकी कहानियाँ अधिकतर मध्यवर्ग से सम्बन्धित हैं। समाज का मध्यवर्ग ही वह संवेदनशील वर्ग है जो समाज में हो रहे सभी बदलाव को भोगता और झेलता है। सर्वेश्वर ने अपने पात्रों का चयन इसी समाज से किया है। उनके कथा साहित्य में तीन उपन्यास 'सूने चौखटे', 'सोया हुआ जल' और 'पागल कुत्तों का मसीहा', 61 कहानियाँ और पाँच बाल कथाएँ संकलित है।

सूने चौखटे

काँटों के बीच पनपनेवाला पौधा जितना भी चुस्त और तन्दुरुस्त रहे, अंत में वह कुंद हो जाता है। हमारे समाज में लड़कियों की

स्थिति भी ऐसी ही है। समाज की पाबन्दियों में पनपनेवाली लड़कियाँ सामर्थ्य रखने पर भी अपनी मंज़िल तक नहीं पहूँच पातीं। यह हमारे समाज की विडंबना है। पुरुषमेधा समाज में स्त्री की हैसियत केवल यही है कि पुरुष द्वारा बनाए गए घोर नियमों की भुगतिनी रहें। 'सूने चौखटे' एक ऐसी लड़की की कहानी है, जिसे समाज के प्रति विद्रोह करने की चाह है, पर समाज के डर से एकदम भिन्न, दबी हुई, ज़िन्दगी बितानी पड़ती है।

कमला नाम है उस लड़की का, जो दृढ़ व्यक्तित्ववाली है, लेकिन वह दृढता उसे विद्रोह करने नहीं देती, बल्कि सब कुछ सहने की ताकत देती है। कमला के माँ-बाप उच्च बिचारवाले थे और उनकी राय में लड़कियों को अपने अधिकार समझने हैं, अपने पैरों पर खडा होना सीखना है, अपने घर के, अपने समाज के निर्माण में सक्रिय सहयोग देना है और यदि इस लायक वे नहीं बन सकीं तो समय इतना कठिन है कि उसका कहीं पता भी नहीं लगेगा। कमला की बुरी किस्मत कि माँ उसके बचपन में ही मर गयी और कमला की परवरिश के लिए पिताजी ने दूसरी शादी करली-जो स्वयं उनके लिए तथा कमला के लिए एक बोझ बनी।

कमला का पढ़ाई में तेज़ होना, पढ़ाई के लिए खूब परिश्रम करना, नाचना, गाना ये सब सौतेली माँ को पसन्द नहीं थीं, क्योंकि गरीबी में ये सब फिजूलखर्च है और लड़की है, इसलिए बदनाम होना आसान है। अपनी पढ़ाई को लेकर पिताजी और माँ के बीच की लड़ाई कमला रोज़ सुनती थी और दुखी भी होती थी। उसका धीरज कम होने

लगा कि अपने बाल सखा रामू के प्रति प्रेम व्यक्त करने और उससे शादी करने तक कमला डरती रही, इसीलिए उसकी शादी किसी दूसरे से की गयी।

इस लघु उपन्यास के द्वारा समाज के कई मुद्दों पर सर्वेश्वर प्रश्नचिह्न लगाते हैं। लड़कियों पर लादे जानेवाले नियम इतने कठोर हैं कि उनकी दम घुटने की अवस्था होती है। कमला एकदम टूटी हुई, समाज में लड़कियों की नियति को कोसती है, "पूछ उस पौधे से जिसे ज़रा-सा बडा होते ही किसी पत्थर से दबा दिया गया है।"[1]

इस उपन्यास की हेमदीदी के चरित्र द्वारा सर्वेश्वर यह कहना चाहते हैं कि समाज की सामान्य धारणा से कुछ हटकर सोचनेवाले का साथ देनेवाला कोई नहीं है। हेमदीदी कमला और रामू की अध्यापिका है बाद में कमला की सखी, और पथ प्रदर्शिका बन जाती हैं। उसके पति और ससुरवालों के लिए हेमदीदी कलंकिनी थी क्योंकि उसने ऊँची शिक्षा पायी है और घर में बैठने की बजाय समाज-सेवा में जुड़ना अधिक अच्छा समझा था। हेमदीदी के चरित्र-चित्रण में सर्वेश्वर का व्यक्तित्व हावी है। पुरानी मान्यताओं की लीक से हटकर सोचनेवाले सर्वेश्वर को हम हेमदीदी में देखते हैं।

लेकिन हेमदीदी भी अंत में टूट जाती है, उसे लगने लगा कि अपने पति को छोड़कर एक विद्यालय शुरु कर क्या उसने ठीक किया?

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड एक पृ. 60

ऐसा सोचने के लिए समाज ही उसे मजबूर बनाता है। लेकिन वह कमला को आगे की ज़िन्दगी की प्रतीक्षा देती है। अपने पति को पूर्ण रूप से स्वीकारने का उपदेश कमला को देती है, "जीवन के इस नये मोड़ को स्वीकार कर, नये अर्थ नये संदर्भ में ग्रहण कर तुझे नई दृष्टि मिलेगी। शक्तिवान का स्वीकार भी सार्थक है, दुर्बल का विद्रोह तक निरर्थक। प्यार शक्ति है, हमें अर्थ देता है, सार्थक बनाता है, वह पाथेय है, उसे लेकर चल।"[1]

रामू के चरित्र द्वारा आर्थिक कठिनाइयों से जूझते निम्नमध्यवर्गीय ज़िन्दगी पर प्रकाश डालते है। शिक्षित होकर भी रामु बेकार है। यदि उसे नौकरी होती तो वह कमला से शादी कर पाता।

"सूने चौखटे' में सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने समाज के ढाँचे में पूर्ण परिवर्तन की इच्छा पात्रों द्वारा प्रकट की है, पर वे इसे बदलने में असफल रहते हैं। इसमें सक्सेना जी ने आधुनिक समाज में असफलता और निराशा के फलस्वरूप उत्पन्न कुंठा का चित्रण किया है। इस उपन्यास का हर पात्र समाज के वर्तमान ढाँचे से त्रस्त और पीडित है। सब इस समाज को नष्ट करके एक नया समाज बनाना चाहते हैं। ये पात्र हैं - हेमदीदी, कमला और रामू।"[2]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड एक पृ. 95
2. समकालीन हिन्दी उपन्यास डॉ. विवेकी राय सं. 1987 पृ. 104

सामाजिक संघर्ष से उबरने की चाह है कमला में। सूने चौखटे में जो जैसा चाहे, वैसा चित्र बना सकते हैं, यही कमला की प्रतीक्षा है, "अपने सामर्थ्य से जैसा चाहना वैसा चित्र बनाकर उसमें लगा देना। वही मेरा चित्र होगा। अपनी असमर्थता में भरकर भी मैं तुम सबके सामर्थ्य में जिऊँगी। मैं अधूरी हूँ, मुझे पूरा करना, तुम पूर्ण हो क्योंकि मैं तुम सबका ही एक अंश हूँ, मरकर तुम सब में ही लय हो जाऊँगी।"[1]

सोया हुआ जल

जीवन के विभिन्न पहलुओं को एक भिन्न शैली में प्रकट करनेवाला एक लघु उपन्यास। एक यात्रिशाला की एक रात की घटनाओं को सिनेरियो शिल्प में दर्शाया गया है। मानव जगत की अंतरंग और बहिरंग पहचान बूढे पहरेदार की झपकियों से होती है।

यात्रिशाला इस दुनिया का प्रतीक है जहाँ कई तरह के लोग इकट्ठे होते हैं। एक ही स्थान पर जमे हुए हैं, पर सबकी मंज़िलें अलग हैं और अन्दाज़ भी अलग हैं। यात्रिशाला में जो भी घटित हो रही है, उन्हें बूढ़ा पहरेदार देख रहा है। बीच-बीच में उसको झपकियाँ आती हैं और स्वत्प-दर्शनों द्वारा यात्रिशाला में ठहरे हुए हर आदमी का अंतरंग बाहर आता है वास्तविक जीवन से बिलकुल भिन्न दृश्य।

एक पटकथा की तरह इस उपन्यास को दृश्यों में बाँटा गया है, अध्यायों में नहीं, जैसे बूढ़ा पहरेदार, यात्रिशाला, सीढियों पर, हरी रोशनी, कमरा नंबर दो, पहली झपकी, स्वप्न दृश्य, आदि आदि।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड एक पृ. 99

यात्रिशाला में ठहरे हुए लोग ये हैं   एक बूढा पहरेदार यात्रिशाला के लोगों का कार्यकलाप वह देख रहा है और उनके बर्ताव से वह चकित भी है। बीच-बीच में वह थोडी देर के लिए सो जाता है, तब काले पंखोंवाला एक छोटा स्वप्नदूत उसके स्वप्न में आता है। पहरेदार का यह पूछना कि वह क्यों रोज आता है, उत्तर में वह बताता है, "प्यासी आत्माओं की शान्ति के लिए। जागता हुआ आदमी अपने को छल करता है, अपने को धोखा देता है। अपने को हज़ार बन्धनों से बाँधता है, हज़ारों नियमों से कसता है। लेकिन सो जाने पर नियमों और बन्धनों की दीवारें टूट जाती हैं छल और धोखे की परतें हट जाती हैं। फिर उसकी वास्तविक इच्छाओं की तृप्ति करता हूँ। मैं स्वप्न हूँ। जागने पर जिसे जो कुछ नहीं मिलता, नींद में मैं उसे वह सब देता हूँ।"[1]

राजेश और विभा पति-पत्नी हैं जो राजेश के भाई किशोर की तलाश में यात्रिशाला में ठहरे हुए हैं। राजेश और विभा का दाम्पत्य जीवन प्रेम और प्रणय से भरा-पूरा है और वे एक-दूसरे का ख्याल भी रखते हैं। पर बूढे पहरेदार का स्वप्न-दर्शन उनके अन्तर्मन को दर्शाता है। वही विभा जो राजेश की थकान से चिन्तित है, स्वप्न में अपने प्रेमी मोहन के गले में बाँहें झुलाती हुई विवाह तक को नकारती है - "मैं तो तुमसे झूठ बोल रही थी। मैंने विवाह कहाँ किया? देखो मेरे पैर में बिछिया, मेरी माँग में सिन्दूर, कहीं कुछ तो नहीं है।"[2]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना   संपूर्ण गद्य रचनाएँ   खण्ड एक   पृ. 106
2. वहीं

उधर पति राजेश भी अपने स्वप्न लोक में किसी गोरी लड़की को आलिंगन में कसकर तृप्ति पाता है।

यात्रिशाला के कमरे नंबर दो में राजेश का भाई किशोर और उसकी प्रेमिका रतना है जो घर से भाग आए हैं। रतना धनी बाप की इकलौती लड़की है और किशोर बेकार युवक। रतना जो भी पैसे लायी थी, वह खतम हुए। अभाव किशोर को दुबारा सोचने के विवश करता है और रतना की अमीरी अब किशोर को खलती है। वह कहता है कि लोग उसे ही गुनाह कहेंगे, क्योंकि वह गरीब है। बडे बाप की बेटी होने से रतना पर कोईभी उँगली नहीं उठाएगा। "लोग यही समझ-समझा लेंगे कि लड़की अपनी किसी सहेली से मिलने गयी थी। पैसा समाज के नियमों पर हुकूमत करता है।"[1]

कमरा नंबर सात में दिनेश है जो किशोर का दोस्त है। किशोर और रतना अपनी शिकायतें दिनेश के सामने पेश करते हैं। दिनेश किशोर से कहता है कि रतना से जल्दी ही शादी करना ही अच्छा है। "हर मुहब्बत का एक आधार होता है, चाहे वह रूप हो, चाहे यश, चाहे धन, चाहे कुछ और भी। और इस आधार के हटते ही मुहब्बत खतम हो जाती है। इसीलिए मुहब्बत को विवाह के खूँटे से बाँधना ज़रूरी है।[2] वह हमेशा शराब के नशे में डूबा हुआ है पर उसकी बातें चोट पहूँचानेवाली हैं।

---

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड एक पृ. 112
2. वहीं पृ. 111

कमरा नंबर ग्यारह में जननेता प्रकाश है जो जन-क्रान्ति की बातें करता है और भीतर से बदलने के तर्क को बुर्जआई मानता है। वह कुछ काम नहीं करता है। पार्टी ऑफीस को आग लग जाने पर उसे रुपयों की ज़रूरत पड़ती है और रुपये के लिए किसी की हत्या करने के लिए भी वह नहीं हिचकता है। उसके जनवादी विचार और क्रान्ति के नारे महज पाखण्ड होकर उभरते हैं।

बिना नाम के, पहचान के कुछ लोग यात्रिशाला में बैठ के ताश खेल रहे हैं जो खेल-खेल में स्त्रियों के बारे, इश्क के बारे, रायल के खाने के बारे, लेनिन के बारे में कह रहे हैं। बूढे पहरेदार के स्वप्न-दर्शन में उन ताशों के दूसरी तरफ नौकरी के नियुक्ति पत्र हैं। वह "उनके लिए जो कोने के कमरे में आधी रात तक ताश खेलते और झगड़ते रहे हैं, वे सब बेकार हैं।"[1] अपने सपनों में वे रायल का खाना खाते हैं, और स्त्रियाँ प्रेम-क्रीडाएँ करती हैं।

उपन्यास के अंत में (उपसंहार में) बूढे पहरेदार की मृत्यु हो जाती है, नये सबेरे की उद्घोषणा देते हुए। "बूढे पहरेदार ने देखा उसकी लाश बेंच के पास ज़मीन पर पडी है। पास बैठा एक कुत्ता मोटी, काली, रुखी रोटियाँ चबा रहा है। नया सबेरा उग रहा है। किशोर और रतना गाडी पर बैठ चले गए हैं। विभा और राजेश जाग उठे हैं। कमरे में हरी रोशनी अब भी जल रही है। ताल की सीढ़ियों पर घूमता हुआ दिनेश गुनगुना रहा है.... फूलों की क्यारियों में

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड एक पृ. 125

रात, शराब की खाली बोतल दफन कर गई है
ताकि नया सबेरा उसे न देख सके।"[1]

सर्वथा नवीन शिल्प और प्रतीकात्मकता के कारण सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का 'सोया हुआ जल' अन्य उपन्यासों में से पृथक बनता है।

इस उपन्यास का यात्रिशाला प्रतीक है, इस संसार का। मनुष्य कुछ देर के लिए यहाँ रुकता है, सब की मंज़िलें अलग-अलग हैं। सब अतृप्त आत्माएँ हैं। वे अपनी आत्मा की तृप्ति स्वप्नों के द्वारा करते हैं।

राजेश और विभा एक-दूसरे के प्रति इतना प्रणयबद्ध है, पर अपने स्वप्नों में वे अपने प्रेमी-प्रेमिका के साथ हैं। यथार्थ जीवन में अपने पति के लिए मरने को भी तैयार विभा अपने अंतरंग में प्रेमी मोहन के प्रति मरने जा रहा है। वह मोहन के साथ वहाँ जा रही है, जहाँ वह जाना चाहती थी, लेकिन जा नहीं सकी थी।

राजेश स्वप्न में एक गोरी लड़की के प्रणय पाश में है। लेकिन राजेश और विभा यथार्थ-जीवन में एक दूसरे से अत्यन्त दूर होते हुए भी एक दूसरे के पास-पास सो रहे हैं। बूढ़ा पहरेदार स्वप्नदूत से पूछता है 'इनका वास्तविक जीवन कितना स्नेह और शान्ति से पूर्ण है?' तब स्वप्नदूत ने कहा, "इसलिए कि ये ज़िन्दगी के साथ समझौता कर पाने में समर्थ है।"[2]

किशोर और रतना के अन्तर्मन भी स्वप्न-दर्शन द्वारा खुलते हैं।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड एक पृ. 128
2. वहीं पृ. 127

किशोर अपने भाई से डरता है। रतना के प्रति शादी का मतलब है, भैया के प्यार को छोड़ना। उसके शिशुत्व की पूर्ति है विभा। "कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनमें शिशुभाव प्रबल रहता है। विभा किशोर के शिशुत्व की तृप्ति है। उसे वह नहीं छोड़ सकता। और रतना से विवाह का अर्थ है भैया को छोड़ना, उसे छोड़ना।"[1]

रतना भी अपनी शादी का स्वप्न देख रही है, किशोर के साथ, और वह किशोर से कहती है कि हीरे की अंगूठी पहना दे। किशोर जेब से हीरे की अंगूठी निकालकर पहना देता है। वह उम्दा कीमती पोशाक पहने हुए है। रतना उसके गले से लिपट जाती है। किशोर उसे अपनी बाँहों में कस लेता है। पहरेदार पूछता है कि यह क्या रतना किशोर को प्यार करती है? स्वानदूत ने कहा, "हाँ, लेकिन अभी उसके संस्कार बदले नहीं हैं। यह जिस वर्ग की है, उसकी यह विशेषता है। उसके ये प्रभुत्व और ऐश्वर्यलिप्सा के संस्कार देर से बदलेंगे।"[2]

प्रकाश स्वप्न में रतना को मारकर पैसा कमा कर, नेता बनने का दृश्य देखता है, जो उसके अंतर्मन की कामना है।

प्रतीकों का नया और सफल प्रयोग सर्वेश्वर की अपनी विशेषता रही है, जो इस कृति में भी देखी जा सकती है।"[3]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड एक पृ. 117
2. वहीं पृ. 126
3. समकालीन हिन्दी साहित्य विविध परिदृश्य डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, द्वितीय सं. 2000 पृ. 105

स्वप्नदूत और स्वप्न-दर्शन अतृप्त आत्माओं की तृप्ति का प्रतीक है। बूढ़ा पहरेदार संवेदनशील जागृत आत्मा का प्रतीक है। वह सबको जगाने के प्रयास में संलग्न है, मगर सब सोने केलिए लालायित है। वास्तव में वह हमारे मन के चेतन मन का प्रतीक है। इसलिए उसे दु:ख है कि वह कुछ न कर सका। "आखिर मैं क्या कर सका? किसे जागा सका? दुनिया की गति में कौन परिवर्तन ला सका? जिन्दगी भर जागते रहो, जागते रहो चिल्लाने के बाद भी, क्या वह यात्रिशाला वैसी ही नहीं है।"[1]

स्वप्नदूत ने कहा, "है और शायद रहेगी भी। तुमने अपने धर्म का पालन किया। तुम उसे बदल नहीं सके लेकिन यह निश्चय जानो कि तुम उसे लुटने से बचा सके हो। तुम्हें 'जागते रहो' चिल्लाते देखकर लुटेरे खुले में घूमने की हिम्मत नहीं कर सके हैं। तुमने अपना कर्म पूरा किया है।"[2]

पहरेदार की मृत्यु भी प्रतीकात्मक है। कथांत में उसकी लाश रूढिग्रस्त समाज के सम्मुख सद्प्रयासों की मृत्यु का सूचक है। राजेश-विभा किशोर रत्ना, रत्ना-दिनेश स्वप्न प्रसंग उपन्यास की प्रतीकात्मक शिल्पविधि के प्रमाण है।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड एक पृ. 124
2. वहीं

इन पात्रों के ज़रिए सर्वेश्वर हमारे समाज में प्रचलित छद्माचारों का पर्दाफाश करता है। भारतीय नारी की पातिव्रत्य की अभिधारणा को चोट पहूँचानेवाली है विभा। वह बाह्य जगत में पति से प्यार करती हैं, पर अंदर ही अंदर मोहन से। रतना जो किशोर के लिए घर छोड़कर भाग गयी, वह किशोर से नाराज़ होकर दिनेश के साथ चलने को तैयार हो जाती है। "रतना भारतीय परिस्थितियों को देखते हुए जो किशोर से अधिक दुस्साहसी है, किशोर द्वारा किए गए इस छल की प्रतिक्रिया में दिनेश के साथ जीवन बिताने को तैयार हो जाती है। लेकिन दिनेश रतना को अपमानित करके लौटा देता है। वही दिनेश प्रकाश को सलाह देता है कि वह रतना को कब्जे में करे ताकि लड़की का संपन्न बाप पार्टी की मदद के लिए विवश हो सके।"[1]

उपन्यास में बीसवीं शती के भारतीय जीवन के टूटते हुए मूल्यों का चित्रण है। पारिवारिक सम्बन्धों में भी कपटता राज कर रही है। सर्वहारा वर्ग की पार्टी के नेता लोग सब को लुटा रहे हैं। इस संदर्भ में उपन्यासकार का यह निष्कर्ष समीचीन है कि "बाह्य परिस्थितियों को बदलने से काम नहीं चलेगा, आदमी को भीतर से भी बदलना पडेगा।"[2]

यात्रिशाला में बैठे ताश खोलनेवाले लोग बेकार युवकों का प्रतीक है। खाली दिमाग शैतान का घर उन्हीं के सम्बन्ध में ठीक होगा। आदमी ने अपनी इच्छाओं पर नियंत्रण लगा रखा है, इसलिए वे स्वप्न में ऐसे

1. हिन्दी उपन्यास प्रेम और जीवन डॉ. शान्ति भरद्वाज, प्र.सं. 1969 पृ. 262
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड एक पृ. 128

भोग-लिप्सा की तृप्ति पाते हैं। समकालीन दुःखों के मूल कारण का विश्लेषण करते हुए उपन्यास में कहा गया है कि स्वार्थ, नियम और बन्धन ही कष्टों का मार्ग प्रशस्त करते हैं।"[1]

सामाजिक अपेक्षाएँ व्यक्ति को बाँधती हैं। परिणामतः प्रदर्शनपरक आचरण पल्लवित होता है। 'सोया हुआ जल' सुसंस्कृत चेतन मन और कामनापूर्ण अचेतन मन के द्वन्द्व को उभारने में नाटकीय रूप ग्रहण कर लेता है। वह मानव जीवन की उन विडंबनापूर्ण स्थितियों को उभारता है जो उसे इच्छित से परे और अनिच्छित के समीप ले जाती है। समझौता करके ही व्यक्ति व्यावहारिक जीवन में प्रसन्नता का दम्भ कर सकता है।

'सोया हुआ जल' शीर्षक अपने आप में प्रतीकात्मक है। ऊपर से देखने पर जलशांत है। पर उसके भीतर बडवाग्नि है जिसमें सारी अशांति, संपूर्ण विश्रृंखलता, आंतरिक प्यास, अतृप्त आकांक्षाएँ और वासनाएं हैं। मानव का अतृप्त मन जल है। किसी के भी जीवन में शांति नहीं है   कोई नौकरी के नियुक्ति पत्र की प्रतीक्षा करता है तो कुछ लोग रायल का नाम लेते-लेते भूखे सो जाते हैं। किसी को इंद्रियों की भूख प्यास व्याकुल किए रखती है तो कुछ प्रसन्नता की खोज में जीवन व्यर्थ करता रहता है।

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना   संपूर्ण गद्य रचनाएँ   खण्ड एक   पृ. 125

पर सर्वेश्वर उपन्यास के अंत में नये सबेरे की प्रतीक्षा देते हैं। "नया सबेरा आ रहा है, नयी रोशनी, आवेगी, नयी ज़िन्दगी आवेगी, उसो कोई रोक नहीं सकता।"

"उसका आधार इंसानियत पर होगा, करुणा और संवेदना पर होगा।"[1]

पागल कुत्तों का मसीहा

पूँजीवादी व्यवस्था समाज को किस प्रकार ग्रस लेती है, धीरे-धीरे पूरी जनता को निगलती है, इसकी ओर ध्यान आकर्षित करनेवाला एक उपन्यास है 'पागल कुत्तों का मसीहा'। पागल कुत्तों का समाज में बढ़ने से जिसप्रकार का एक भयानक वातावरण उत्पन्न होता है, पूँजीवादी व्यवस्था का समाज में संक्रमित होने से उसीप्रकार का आतंक फैल जाता है।

इस उपन्यास का प्रधान पात्र है दीनू जो अपने शहर के पागल कुत्तों को मारना अपनी ज़िम्मेदारी समझता है और इसीलिए अपने आपको यह दिलासा देता है कि वह किसी से कम नहीं है। और वह बहुत ज़रूरी आदमी है - मोटा आदमी दीनू को समझाता है कि पागल कुत्तों को मारना बड़ा पाप है। पाँच रुपए के नोट फेंककर यह आज्ञा भी देता है कि अपने कठघरे में जो कुत्ता है, उसे बाहर छोडें।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड एक पृ. 128

वास्तव में वह समाज में निकृष्ट कहे जानेवाले काम करने के कारण उत्पन्न होनेवाली कुंठा को ही तृप्त करने की कोशिश करता है।

इसप्रकार पागल कुत्तों को मारकर समाज की भलाई करनेवाले दीनू के आगे एक दिन अचानक एक नीली चमकदार बड़ी सी कार आकर रुकी और उसमें बैठे हुए मोटे आदमी दीनू को समझाता है कि पागल कुत्तों को मारना बडा पाप है। पाँच रुपये का नोट फेंककर, यह आज्ञा भी देता है कि अपने कठघरे में जो कुत्ता है उसे बाहर छोडें।

एक क्षण में उस गरीब व्यक्ति में नयी स्फूर्ति, शक्ति आयी, उत्साह उमड़ आया। पहली बार उस कुत्ते के प्रति उसके मन में स्नेह का अनुभव हुआ और उसके सम्मुख कृतज्ञता के भार से झुक गया। अभी तक पागल कुत्तों को मारने से उसे एक आध इकन्नियाँ ही मिलती थीं, लेकिन अब उसके हाथ में पाँच रुपए हैं। अपनी बीमार बच्चे की याद आने से वह घर चला और वहाँ पहूँचने पर मालूम हुआ कि बच्चे की जान खतरे में है। उसने डाक्टर को बुलाया और डाक्टर ने दवा दी। तभी कुत्ते की गाडी के सम्मुख वह आया और उसकी आँखों में कृतज्ञता के आँसु उमड़ आए और श्रद्धा भाव से उसने हाथ जोड़ा और किसी देवता के समान वह उस कुत्ते को देखने लगा। उसे लगा कि देवता कुत्ते का रूप लेकर उसकी सहायता करने आया है। एक अतिथि की भाँति उसने उसके स्वागत में घर से एक रोटी का टुकडा लाकर दिया और निश्चिन्त होकर बच्चे की तीमारदारी करने लगा। उसे पहली बार ऐसा लगा जैसे वह असहाय नहीं है, एकाकी नहीं है, अपितु कुछ करने में समर्थ है। ईश्वर की

सत्ता का उसने पहली बार अनुभव किया और उसकी उपस्थिति पर उसे विश्वास हुआ। अपने इस विश्वास के परिणामस्वरूप वह उत्साह, उमंग और शक्ति से भर उठा और ज्यों-ज्यों उसके बच्चे की तबियत सुधरती गयी उसका यह विश्वास दृढ़ होता गया।

अपने बच्चे की तबीयत एकदम ठीक हो जाने पर उसने उस पागल कुत्ते को कठघरे से बांध लिया और उसके गले में फूलों की एक माला भी डाल दी। अपनी पत्नी के विरोध के बावजूद उसने अगले दिन ही अपने कुत्ता देवता के लिए एक अलग स्थान निर्धारित किया और जिसप्रकार एक दैवी मुर्ति की प्रतिष्ठा की जाती है, उसी प्रकार उस कुत्ते की प्रतिष्ठा की गयी। उस प्रकार वह पागल कुत्तों का मसीहा बना। पडोसी लोग तो एक विचित्र कौतूहल की दृष्टि से ये सब देखते रहे।

उस दिन से लेकर उसने पागल कुत्तों को मारना बन्द किया। उसकी घरवाली और छोटे इन्स्पेक्टर ने उसके व्यवहार को गलत कहा और सबके विरोध पर उसके मन में भी शंका हुई, "गुलाम बनाकर रखने की ममता से क्या मार डालने का निर्मोह बेहतर नहीं है।"[1]

जिस कुत्ते ने अपने बच्चों के प्राण की रक्षा की, उसके साथ अन्याय करना दीनू के सोच के बाहर है। उसके लिए वह पागल कुत्ता ईश्वर ही है। अपनी विवशता वह प्रकट करता है, "मैं तुम्हारी शक्ति पहचानता हूँ। मैं क्या करूँ? इन दुनिया की रीति ही ऐसी है। जिसका

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड एक पृ. 138

काम खतम हो जाता है, लोग उसे भूल जाते हैं। दुनिया उसकी है जो काम का है, जो काम का नहीं है, दुनिया उसकी नहीं है।"[1]

और दीनू ने उस कुत्ते को शहर के बाहर दूर पहाडियों में छोड दिया। उस दिन से दीनू ने किसी भी पागल कुत्ते को नहीं मारा बल्कि उसे दूर पहाडियों में छोड दिया। और बीच-बीच में उन्हें रोटी आदि भी दी गयी। उसके इस कार्य को उसकी प्रेमिका विपती ने पूरा साथ दिया जो अनाथ विधवा थी तीस साल की। सबके सो जाने पर आधी रात को विपती की लालटेन लेकर वह पहाडियों में जाया करता था और सबके जागने के पहले ही लौट आता।

लेकिन पागल कुत्तों को मारने पर उसे जो शान्ति मिलती थी, अब न मारने पर उससे वह शान्ति दूर है। "गलत काम करने से शान्ति मिलती थी, अब सही काम करने से अशान्ति मिलती है।"[2]

पागल कुत्तों की दशा देख-देखकर उनसे सहानुभूति रखकर अंत में विपती पागल हो जाती है। उसके बीभत्स रूप से दीनू भयचकित होता है। विपती को इस कष्ट से मुक्ति देंने की और उसका यह रूप न देख सकने की चिन्ता से दीनू उसको मारने जाता है। लेकिन विपती उसे न पहचानकर उसका आक्रमण करने आती है तो दीनू वहाँ से भागता है और कहीं न रुककर दूर पहाडियों में पहूँचकर पत्थर की चुनी दीवार हटाकर उस खुले स्थान में कूद पडा जहाँ उसने कुत्ते छोडे थे। "कुत्ते

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड एक पृ. 141
2. वहीं पृ. 153

उसपर झपटे उसने उन्हें दबोच लिया, दबोचता गया।"[1] कुछ देर बाद वह लौट पडा। उसका सारा शरीर खून से लथपथ था।

इस उपन्यास में पागल कुत्ता प्रतीक है पूँजीवाद का। जिसप्रकार पागल कुत्ता समाज के लिए हानिकारक है, उसी प्रकार पूँजीवाद भी समाज के लिए हानिकारक है, और उसे मिटाना चाहिए। दीनू भी समाज के अधःकृत वर्ग का प्रतीक है जो जानता है कि पागल कुत्ता यानी सामंती व्यवस्था को मारना उनका कर्तव्य है। लेकिन पागल कुत्तों को मारने से ज़्यादा पैसे, न मारने पर मिलने की प्रेरणा से वह निश्चय करता है कि पागल कुत्तों को न मारना ही उसका धर्म है। गरीबों को अपने वश में लाने के लिए एक आसान तरीका है - भगवान का नाम लेना। कुत्तों को मारेगा तो भगवान नाराज़ हो जाएगा, ऐसा सुनने पर दीनू चंचल चित्त बन जाता है।

और पागल कुत्ते को न मारना और उसकी पूजा करना, दीनू ने अपना धर्म समझा। समाज के निचले स्तर की जनता को अपने वश में करने से ही पूँजीवादियों का काम निपटता है।

पागल कुत्ते की पूजा करते वक्त भी याने पूँजीवाद का समर्थन करते वक्त भी दीनू के मन में हमेशा यही संशय था कि "गुलाम बनाकर रखने की ममता से क्या मार डालने का निर्मोह बेहतर नहीं है।"[2]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड एक पृ. 141
2. वहीं पृ. 138

उसकी आशंका को और बढ़ाया छोटे इन्सपेक्टर ने जिसने यह कहा कि पागल कुत्ते को मार डालना ही धर्म है। "लेकिन जिसे तू अपने आराम केलिए पालता है, उसे कष्ट का कारण होते देखकर हटा भी सकता है और यदि वह सारे समाज की तबाही का कारण हो तो उसे मार भी सकता है, मारना चाहिए।"[1]

पूँजीवाद की विशेषता यह है कि थोडी देर के लिए वह अच्छा लगेगा, लेकिन समाज के नित्य कल्याण, उससे संभव नहीं है, यही नहीं, पूरे समाज को पूरी तरह नाश भी कर देता है। दीनू उस पागल कुत्ते को इसलिए संभालता है कि उसने बच्चे की रक्षा की, उसकी आर्थिक हैसियत बढ़ायी। गरीबों की विवशता भी यही है कि आर्थिक कठिनाई उससे अनचाहे काम करवाती है।

शहर से दूर पहाडियों में कुत्ते को छोडने से वहाँ भी पागल कुत्तों की जमात बनी। शहर में जो पूँजीवादी व्यवस्था थी, वह गाँवों में भी संक्रमित होने लगी। वहाँ उसे पनपने की विशाल भूमि है यद्यपि वहां भी विरोधी स्वर हैं। अपने हाथों से समाज विरोधी पूँजीवाद का बागडोर छुडाने से आदमी प्रसन्न हो जाता है क्योंकि अब तो वह गुनाहदार नहीं है "तुम्हें मुक्त कर मैं मुक्त हूँ। मुक्त होनेवाले से मुक्त करनेवाले को अधिक सुख मिलता है। मैं बहुत प्रसन्न हूँ... बहुत, तुमसे अधिक सुखी हूँ।"[2]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड एक पृ. 141
2. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड एक पृ. 143

पल भर की खुशी के लिए पूँजीवाद का समर्थन करने पर भी आदमी के मन में शान्ति नहीं होती। दीनू विपती से कहता है कि उसे पागल कुत्तों को न मारने पर भी खुशी नहीं है "मैं हर समय चिन्तित रहता हूँ। एक अजीब सी उथल-पुथल रहती है। हर समय लगता है, कुछ ऐसा कर रहा हूँ जो मेरी जाति का धर्म नहीं है। जैसे यह मेरा धर्म नहीं है, किसी दूसरे का धर्म है, जो मैं ने ओढ़ लिया है; किसी दूसरे की उतरन है जो मैं ने पहन रखी है, यद्यपि यही ठीक है पर भीतर वह जाने क्या है जो नहीं स्वीकारता मुझे हर घड़ी अशान्त रखता है।"[1]

जब विपती पागल हो गयी उसकी अवस्था दीनू से नहीं देखा गया। अपने ही लोगों पर अपने किए का बुरा असर पड़ता है, तब आदमी पुनः सोचने को विवश होता है। दीनू एकान्त में जलती धूल में बैठ गया। तभी उसे तेज़ आवाज़ सुनायी दी कि पागल कुत्तों को मारना तुम्हारा धर्म है। तभी उसके अन्दर यह प्रश्न उठा कि लेकिन पागल आदमी को मारना धर्म है क्या? उसे मोटे आदमी की याद आयी। उसे लगा वह उस मोटे आदमी की गरदन पकड़कर ज़ोर से दबा रहा है।

अंत में दीनू अपनी गलती का एहसास करता है और कुत्तों को मारकर शांति पाता है। पूँजीवाद के कराल हस्तों से पीडित होने से ही आदमी आदमी को समझता है और उसका विरोध करने पर, उसका आमूलचूल नाश करने पर वह संतुष्ट हो जाता है।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड एक पृ. 153

समाज की धार्मिक अवधारणाएँ क्या है; कैसे वह जनमानस में उत्पन्न होती है, इसकी ओर भी सर्वेश्वर जी ने अपने इस लघु उपन्यास द्वारा हमारा ध्यान आकर्षित किया है।

दीनू ने जब पागल कुत्ते की प्रतिष्ठा की तब पडोसी लोग कुतूहल की दृष्टि से देखते रहे। अपने बच्चे की खुशहाली दीनू के लिए आस्था का विषय बना तो बाकी लोगों के मन में दीनू के विश्वास के कारण भक्ति-भाव उमड़ा। आस्था-आस्था को जन्म देती है। सबके भीतर कहीं गहन पीड़ा है, सब कोई वरद हस्त चाहते हैं। इसलिए जहाँ एक माथा टेकता है, वहाँ सभी माथा टेकने लगते हैं, जहाँ एक फूल चढ़ाता है, वहाँ सभी अपनी अंजलि रिक्त कर देते हैं। सब लोग अमुक ईश्वर पर विश्वास करते हैं, इसलिए हम भी। मनुष्य को डर है दूसरों से, ईश्वर से, अपने आप से - अपनी विवशता के कारण ही दीनू ने उस पागल कुत्ते के आगे सिर नवाया था। उसके मन में भविष्य के प्रति डर था कि शायद कोई विपत्ति आ जाए तो यह कहने की नौबत न आए कि उसने पागल कुत्ते की पूजा नहीं की थी। "यह मोह तो नहीं है, यह श्रद्धा भी नहीं। यह डर है, डर, वर्तमान से डर, भविष्य से डर, विपत्तियों से डर।"[1]

वर्तमान समाज में देवता कैसे बनाए जाते हैं इसकी ओर यहाँ इशारा किया गया है। मनुष्य को अपनी शक्ति पर विश्वास खो गया है। किसी न किसी पर आश्रित होना उसकी आदत बन गयी है। अपनी

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड एक पृ. 151

ही तरह के अन्य मनुष्यों का आश्रय लेने से बेहतर है किसी अलख शक्ति पर आश्रित होना। अपने भविष्य का डर मनुष्य को झेलता रहना है। और इसी डर के कारण वर्तमान में जीना मुश्किल हो जाता है, जीना भूल जाता है। वास्तव में मनुष्य किसी भी दैवी शक्ति की पूजा इसीलिए करता है कि वह अनर्थों से डरता है, बल्कि इसलिए नहीं कि अमुक ईश्वर पर उसे विश्वास है। अपने किए द्वारा जो भी अनर्थ होते हैं, उसकी जिम्मेदारी स्वयं न लेते हुए नियति को कोसता है। वास्तव में दायित्वों से भागने के लिए ही मनुष्य किसी अनन्य शक्ति पर विश्वास करता है।

समाज की नीयत ही ऐसी है कि वह समाज की भलाई के लिए कुछ सोचने और करनेवालों पर थूकता है। और उन्हें पागल भी कहता है। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि आखिर समाज ही क्या है? व्यक्ति को छोड़कर उसके इर्द-गिर्द जो है, वही उसका समाज है। एक व्यक्ति यदि कुछ लीक से हटकर सोचे तो बाकी लोग उसे पागल कहेंगे। नियमों का सिलसिला सवार होने पर आदमी पागल हो जाएगा। जितनी ही आदमी पर रोक-थाम लगाएगी, उतना ही वह पागल होगा। आदमी का दिमाग तो गेंद है, बहुत ज़्यादा दबाएगी तो फिसलकर उछल जाएगा। फिर काबू में नहीं रहेगा।

यह पाबन्दी आदमी खुद ही अपने पर लगाता है, वह स्वयं अपने को दबाता है। दीनू विपती को चाहता है। लेकिन वह अपनी पत्नी

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड एक पृ. 147

को दुखाना नहीं चाहता। "घरकी खपरैल से नीम की छाया में पडे रहना मुझे अच्छा लगता है।"[1] अपने बच्चों को भी वह बेहद प्यार करता है अपनी पत्नी का डर नहीं है, पर वह नहीं चाहता कि कुछ ऐसा कर बैठें कि मासूम बच्चों की जिन्दगी खराब हो। मनुष्य की विवशता तो यही है कि वह जो करना चाहता है, नहीं कर सकता, न सकने पर भी उसे जीना ही पड़ता है।

दीनू विपती को इसलिए चाहता है कि अपने आप से ही दीनू को घृणा है। अपने काम के कारण वह अपने को जलील समझता है, लेकिन विपती की नज़र में वह ऊपर उठता है "जानती है विपती, तू मुझे क्यों अच्छी लगती है? मैं जो छोटा काम करता हूँ, जैसा काम जिसके लिए मेरा मन ही मुझे दुत्कारता है, मुझ पर हँसता है, उस काम को तू बडा समझती है, उसका आदर करती है, उसमें साथ देती है। मेरी मज़बूरी को तेरे यहाँ पनाह मिलती है। तू मुझे अपने पर भरोसा दिलाती है, अन्यथा मैं अपनी ही निगाह में बहुत अधिक गिर जाऊँ। और अपनी निगाह में गिर जाने पर फिर कोई निस्तार नहीं।"[2]

दीनू और विपती की विवशता हमें छूती हैं। दीनू की यह हालत हमारे समाज के आम आदमी की यथार्थता है। उस यथार्थ का पूरा साक्ष्य देने में सर्वेश्वरजी सफल हुए हैं - पागल कुत्तों का मसीहा मनुष्य की विवशता का प्रतीक बन जाता है। विपती के चरित्र में वास्तव में सर्वेश्वर

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड एक पृ. 151
2. वहीं

का व्यक्तित्व प्रतिबिंबित है। समाज में सबसे नीच कृत्य कहलानेवाला काम दीनू करता है, इसलिए वह समाज में अकेला है। विपती उस दीन का साथ देती है। समाज के निम्नतम तबके के लोगों का साथ देनेवाले हैं सर्वेश्वर। बेजुबान लोगों की जुबान है सर्वेश्वर की तूलिका।

कहानीकार सर्वेश्वर

ज़िन्दगी के यथार्थ को अपनी नग्नता में प्रस्तुत करती हुई गाथा है सर्वेश्वर की कहानियाँ। सब कुछ लेखक की आँखों का देखा हुआ सच है, प्रामाणिक दस्तावेज़.... हलफनामा। उनकी कहानियों से गुज़रने पर मालूम होता है कि परिवेश के कोने-कोने का वे सूक्ष्मता से निरीक्षण और विलक्षण करते हैं।

उनकी कहानियाँ मानवीय स्थिति और सामाजिक व्यवस्था में बहुत तीखा तथा उलझाव भरा सम्बन्ध दिखाती है। अपने संपूर्ण अर्थ में सर्वेश्वर मध्यवर्ग के लेखक हैं   मध्यवर्गीय दासता तथा अवसादपूर्ण विडंबनाओं के कथाकार हैं।

सर्वेश्वर की कहानियाँ उनका अपना अनुभूत सत्य है। उनकी कहानियाँ तीन संग्रहों में संकलित हैं - 'कच्ची सडक', 'अँधेरे पर अँधेरा' और 'बदला हुआ कोण'।

भिन्न-भिन्न सन्दर्भों को छूती हुई उनकी कहानी का सफर होता है। प्रेम कहानियों से लेकर, व्यवस्था विरोधी, मनोविश्लेषणात्मक कहानियों से लेकर सामाजिक विद्रूपताओं तक उनकी कहानियों की दुनिया फैली है।

समाज के ज़्यादातर लोग सामनेवाले की रुचि और पसंद को देख अपनी राय प्रकट करते हैं, जैसे समाज में दूसरे व्यक्ति की पसंद-नापसंद का विचार किए बिना अपनी स्पष्ट राय देनेवाला व्यक्ति पागल समझा जाता है। 'बदला हुआ कोण, 'लडाई' आदि कहानियाँ इस सत्य को हमारे सामने प्रस्तुत करती हैं।

दुनिया को बदलने की कोशिश करने की अपेक्षा अपने को बदल लेना आसान है, यह समझकर दुनियादारी से बिल्कुल भिन्न व्यवहार करनेवाले आदमी की बुरी हालत 'बदला हुआ कोण' में दिखायी गयी है। अपने मन के विश्वास पर चलने के नतीजे पर पहूँचने के बाद उसे लगता है कि सब कुछ बदल गया है। दुनिया कुछ दूसरी लगने लगी। उसकी बीवी और बेटे उसके व्यवहार से भयभीत होकर उसके पूरे होश खोने के पहले कागज़ातों में दस्तखत करवाने की कोशिश में लग जाते हैं। पर वह कि एक ड्रम में बैठकर मुक्ति का अनुभव करके बैठता रहता है।

दुनिया इतनी बदल चुकी है कि आपसी सम्बन्धों में दरार आ गयी है। पति-पत्नी के बीच, बाप-बेटे के बीच उतनी आत्मीयता नहीं रही। अपने पिता और पति के पागलपन को देखकर बेटे और पत्नी में केवल यही चिन्ता उत्पन्न होती है कि संपत्ति का क्या करें। उसका बँटवारा कैसे हो जाएँ।

भ्रष्ट सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध आवाज़ उठाने पर आदमी की क्या हालत होती है, यह 'लड़ाई' कहानी में दर्शायी गयी है। हमारे

समाज की हर एक इकाई के साथ भ्रष्टाचार इस तरह जुडा है कि उससे बचना और बचाना मुश्किल ही नहीं, संभव नहीं है। लोगों ने तो स्वयं ठगने और दूसरों को ठगाने की स्थितियों से समझौता कर लिए हैं कि इससे भिन्न सोचनेवाला उनके लिए पागल बन जाता है।

'लड़ाई' का नायक सत्यव्रत ठान लेता है कि न वह खुद कोई गलत काम करेगा न दूसरों को करने देगा। इस निर्णय के बाद जहाँ भी उसकी नज़र पड़ती है, उसे असत्य और भ्रष्टाचार दिखाई देते हैं। पढ़ने के लिए अखबार उठाया तो लगा कि वह कायरों और ढ़ोंगियों की वकालत करता है, हाथ-मुंह धोने के लिए मंजन उठाया तो मसूडों की रक्षा करने का झूठे वादा देनेवाली कंपनी के झूठे विज्ञापन की, चाय पीने लगा तो चीनी की चोरबाज़ारी करनेवाले राशन अधिकारी की, रोटी कहकर सडी हुई रोटी बेचनेवाले रोटीवाले की, अंग्रेज़ी में शिकायत न करने के कारण अपने बच्चों को सज़ा देनेवाले प्रिंसिपल की, पैसे लेकर टिकट न देनेवाले बस कंडक्टर की, लोगों के कमर तोड़नेवाले डॉक्टरों की, सब की प्रवृत्तियों में उसे भ्रष्टाचार दिखाई देता है ओर उनसे लड़ता भी है। इनकी शिकायत करने के लिए एक पत्रिका के संपादक के पास गया तो समझ गया कि वह भी सत्य का साथ देनेवाला नहीं है। सत्य और ईमानदारी की रक्षा करनेवाली पुलिस भी उसका साथ नहीं देती, बल्कि उसे मारती भी है। अस्पताल में उसकी मृत्यु हो जाती है, उसके पास केवल उसकी पत्नी ही थी। लोग भी तो सत्यव्रत से ऊब चुके थे। अन्याय

उन्हें अन्याय नहीं लगने लगा है। सत्यव्रत की दारुण दशा हमारे समाज की भयानक स्थिति का सबूत है।

स्वतंत्रता के पहले राष्ट्रसेवियों के जो आदर्श रूप हमारे सामने थे, स्वतंत्रता के बाद वे रूप कहीं नष्ट हो गए हैं। राष्ट्र सेवी राजनीतिक आज स्वयं सेवी बन गए हैं। गाँव के उद्धार के नाम पर गाँव के पतन का कार्य करनेवाले राजनीतिकों के खोखलेपन का 'कच्ची सड़क' कहानी में पर्दाफाश किया गया है।

देश-सेवा के नाम पर साधारण जनता को ठगनेवाले नेता लोगों का असली चेहरा 'कच्ची सडक' में दर्शाया गया है। गाँव की सड़क का निर्माण गाँववालों से कराकर अंत में उनका ही पेट काटनेवाले नेता लोग। गाँधीजी का नाम लेकर, आम जनता को अपनी ओर आकर्षित करके, उनसे पूरा लाभ उठाके, अंत में उनका ही नुक्सान करनेवाले राजनेताओं के बारे में इस कहानी में कहा गया है।

अपनी बैलगाड़ी में गाँव की कालीनें बेचकर अपने गाँव की प्रगति में हाथ बँटाना चाहता है जगेसर, जो एक परिश्रमी युवा है। अपने गाँव की कच्ची सड़क को पक्की बनाने का काम वह अपना काम समझकर कठिन प्रयत्न करता है। अंत में वही जगेसर गाँव की मुखिया की यंत्रचालित गाडी का क्लीनर बन जाता है। कच्ची सड़क को पक्की बनाकर गाँववालों को क्या लाभ हुआ? सर्वेश्वर यही सवाल हमसे पूछते

हैं कि गाँव के विकास के नाम पर जो जो योजनाएँ आज बन रही हैं, उनसे क्या ग्रामीणों को फायदा है?

हमारी सामाजिक व्यवस्था को, हमारे अपने अहं को चोट पहूँचानेवाली कहानी है, 'पुलियावाला आदमी'। आठ साल से एक पार्क के पुलिया पर यों ही बैठकर लेखक और समाज के अहं पर अंकुश लगाके वह आदमी जी रहा है। इन आठ सालों में उसने कुछ किया ही नहीं, भीख भी नहीं माँगी। पर उसे रोटी, बीडी आदि तो किसी न किसी से मिलती रहती है। लेखक को रोज़ देखने पर भी एक बार भी देखने का भाव उसने नहीं दिखाया है। लेखक ने भी उससे कुछ पूछा नहीं, उसके जीवन क्रम में कोई व्याघात नहीं डाला; उसे देखा, केवल देखा, और देखने का इतना अभ्यस्त हो गया मानो उसे भी पार्क के सारे जड़ दृश्य का अंग बना दिया। यदि किसी दिन वह न दिखाई देता तभी शायद उसके बारे में कुछ सोचने की अकुलाहट लेखक में जागती।

कुछ नौकरी करने के बारे में पूछा गया तो उसने जो जवाब दिया,- वह हमारे समाज की व्यवस्था पर प्रश्नचिह्न लगाता है। उसके अनुसार किसी भी नौकरी करने का मतलब अपने अभिमान को बेचना है। "पेट के लिए इज्जत नहीं बेची जाती, धौंस नहीं सही जाती। कहाँ-कहाँ झगडूँ।"[1] सरकारी नौकरी में खुशामद करनी पडती है। अफसरों के हाथ - पैर जोड़ने पड़ते हैं खुश रखना पड़ता है। इसलिए वह कुछ काम करना नहीं चाहता।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड एक पृ. 223

उस व्यक्ति के अजीब व्यवहार से सव चकित हैं। उसे कोई कुछ देता है तो भी वह किसी की खुशामद नहीं करता। उसकी मान्यता है कि उसे जो देता है, अपने मन की इच्छा से देता है, तो कृतज्ञ होने की ज़रूरत नहीं।

दूसरों को कुछ देने पर बडे होने का रोब सब दिखाते हैं। पुलियावाले आदमी को कुछ कपडे देकर लेखक स्वयं को बडा समझता है। लेकिन वह आदमी ऐसा बैठता है जैसे लेखक को पहचानता ही नहीं, लेखक के ही दिए हुए कपडे पहनकर भी।

अपनी इज्ज़त बेचकर नौकरी न करने का निश्चय लेनेवाले पुलियावाले आदमी की ज़िन्दगी आराम से कटी जाती है। वह खुले पार्क में भी सुख-चैन से जी सकता है। पर उसके स्थान पर यदि एक स्त्री होती तो? क्या वह इस प्रकार काम छोड़के किसी अन्य जगह स्वाभिमान के साथ जी सकती है? नहीं, कदापि नहीं। अनेक अनिष्ट कार्यों के बीच भी उसे काम करना पड़ता है, जीना पड़ता है। ऐसी लड़की की कहानी है 'सोने के पूर्व'।

अपनी इच्छा के विरुद्ध एक रेस्तरा में काम करने में मजबूर मिस मोना फास्टर अपनी नौकरी के पहले दिन की रात में सोने की कोशिश कर रही है, लेकिन नींद उससे भाग जाती है, क्योंकि तभी उसकी आँखों के आगे रेस्तरां के मालिक का चेहरा आ पड़ता है। उस चेहरे की याद आते ही उसके मन में विरुद्ध भाव उत्पन्न होते हैं।

रेस्तरां में आनेवाले लोगों के पास जाकर मुस्कुराते हुए यह पूछना कि आप क्या चाहते हैं, यही मिस मोना का काम है जिसके लिए उसे महीने में नब्बे रुपये मिलेंगे।

रेस्तरां में जो आते हैं, उनकी भद्दी मुस्कान भी सहनी पड़ती है। ज़िन्दगी को किसी भी तरह आगे बढ़ाने के मजबूर एक लड़की की कहानी है 'सोने के पूर्व'। "सहस्रों बिच्छुओं के डंक बन-बनकर ये मुझे मार रही हैं। मैं जी रही हूँ, देख रही हूँ, ज़बरदस्ती, परवश, अकेले, असहाय, और यह आवाज़ प्रतिक्षण गूँजती जा रही है "तुम्हारा काम है मुस्कुराना... मुस्कुराना...।"[1]

लड़कियों की बुरी हालत का उत्तरदायी हमारा समाज ही है, जहाँ स्त्री को भोग का विषय बनाया जाता है। पुरुष के एक पल की खुशी के लिए स्त्री का उपयोग किया जाता है। अपनी विक्षुब्धावस्था में भी स्त्री की अंतर्चेतना की चोट ताज़ी रहती है। 'मौत की छाया' में पुरुषमेधा समाज की विकृति दिखायी गयी है।

शीतकाल की एक अंधेरी रात में सुनसान सड़क पर नंगी बैठी हुई सत्रह-सोलह साल की एक पागल लड़की से लेखक की मुलाकात होती है। उसे देखकर लेखक के मन में करुणा ओर दया उत्पन्न होती है। वह अपने बंगले जाकर लड़की के लिए पायजामा रोटी आदि देते हैं। लड़की ने पायजामा ठीक तरह से न पहना, उसे पहनाने की कोशिश की

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड एक पृ. 239

तो वह हटने लगी। कुछ दिन बाद लेखक ने उसे तट के किनारे फटेहाल देखा, लेखक को देखते ही उसका मुख-मंडल क्रोध से विकृत हो गया और वह चिल्लाई "गोरा है तू.... गोरा... कमीना!" और वह पानी में डूब गयी।

उसकी चिल्लाहट सुनकर मालूम हो जाता है कि उसकी इस अवस्था का कारण ज़रूर कोई पुरुष है। चिल्लाने के सिवा वह और कुछ नहीं कर सकती, क्योंकि वह बेबस है। उसकी इस दुनिया में कोई नहीं है जिससे उसको सुरक्षित जीवन मिले, इसलिए वह आत्महत्या करती है।

हमारे समाज में स्त्री होना भी एक मज़बूरी है। खुशी की लहरों में गोता लगानेवालों के साथ हमेशा कोई न कोई होता ही है। एक बार ज़िन्दगी में दुःख आवें उनका साथ देनेवाला कोई नहीं होगा। पंखवालों के साथ सभी उड़ान भर लेते हैं लेकिन जिसके पंख टूट जाते हैं उसको कोई साथ नहीं देता। यदि वह स्त्री हो तो उसकी हालत का बयान करना मुश्किल हो जाता है। ऐसी एक बेबस लड़की की कहानी है 'टूटे हुए पंख।'

जिन्दगी का अर्थ मौज मस्ती और आनंद समझनेवाली शीला एक धनी बाप की बेटी-ज़िन्दगी में कभी भी रोने की नौबत ही नहीं आयी। शादी के बाद भी वैसी ही रही। उसकी शादी के दस वर्ष बाद मसूरी के एक रेस्तरां में लेखक ने शीला को देखा। वह वहाँ आनेवाले लोगों को सामान देनेवाली के रूप में काम करती है। लेकिन वह पुरानी

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड एक पृ. 247

शीला नहीं रही एकदम कायापलट हुआ है। उसकी मायूसी इस बात की गवाह थी कि किसी मजबूरन वह वहाँ काम कर रही है। लेखक को आयी चिट्ठियों से पता चला कि रेस्तरां में काम करना उसे पसंद नहीं है। लेकिन किसी तरह जिन्दगी काटनी है, इसलिए वह काम नहीं छोडेगी।

माता-पिता, पति उसके साथ नहीं है, और आज उसका साथ देनेवाला कोई नहीं है। बिलकुल अकेली। इतना धन होने पर भी वह आज एक-एक पाई को मोहताज है। और ऐसी असहायावस्था में उसकी मस्ती और मुस्कान भी उसका साथ छोड़कर चली गयी। पंख के टूट जाने पर पक्षी की जैसी अवस्था शीला की भी हुई।

संसार में अपना पराया कोई नहीं, जो अपना समझे वही अपना है और जो पराया समझे वह अपना होने पर भी पराया है। हमारे समाज की यही नियति है। स्त्री की तो अलग विशेष ज़िन्दगी है। शादी एक स्त्री की ज़िन्दगी को एकदम पलटनेवाली घटना है। अपने जन्मगृह में बीस-बाईस साल पलकर एक दिन अचानक उसे वहाँ से दूर भेजता है, वहाँ अपने लिए एक जगह का निर्माण करने। जैसे एक पौधे को समूल उखाड़कर दूसरी जगह पनपने देता है, ठीक उसी तरह। उस पौधे को नयी जगह पर जमाने के लिए लोग क्या-क्या नहीं करते। उसके जन्मस्थान जैसा माहौल नयी जगह में भी बनाया जाता है ताकि उसकी खूब परवरिश हो जाए। लेकिन स्त्री की ऐसी बात नहीं है। उसे नयी जगह के अनुकूल अपने को बदलना है, प्रतिकूल वातावरण में भी। आँधी आए, बरसात

आए, उसे वहाँ टिकना है। यही विचार सर्वेश्वर हमारे सामने रखते हैं। 'बेबसी' 'डूबता हुआ चाँद' आदि कहानियों द्वारा।

शादी के पहले और बाद में एक नारी की ज़िन्दगी में क्या-क्या परिवर्तन आते हैं? शादी स्त्री में कौन-सा बदलाव लाती है? शादीशुदा होने से क्या नारी को अपने पहले के रिश्तेदारों को नकारना पड़ता है? सर्वेश्वर 'बेबसी' कहानी द्वारा शादीशुदा औरत की बेबसी हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं।

लेखक की साली मधु बहुत ही हल्की, प्रसन्न और लेखक से बहुत ही मिली जुली थी। पर शादी के बाद पहले की तरह बर्ताव करने में वह थोड़ा हिचकिचाती है। अपने पति की शुश्रूषा में लगे रहने पर किसी दूसरे की चिन्ता न करने के लिए वह विवश हो जाती है। शादी के बाद लेखक उसके घर जाता है, तो वह कुछ अनमनी सी बर्ताव करती है। वह जानती है कि उसने लेखक को दुख पहूँचाया है, इसलिए वह लेखक को लिखती है, "मैं अब भी वही हूँ, मुझमें कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ है, मैं कहीं भी बदली नहीं हूँ, लेकिन आज परवश हूँ, बेबस हूँ, निरुपाय हूँ......।"[1]

लेखक की समझ में नहीं आता कि क्या वह सचमुच परवश थी? अगर थी भी तो क्या यह उचित था? पति के आगे क्या नारी को अपना व्यक्तित्व मसल देना है, अपनी आवाज़ घोंट देनी चाहिए? यही

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड एक पृ. 201

हमारे भारतीय समाज की विडंबना है। हमारे भारतीय समाज में वही पतिव्रता है जो पति की हर इच्छा, हर आज्ञा को उसी तरह पूरी करती है, चाहे वह उसकी अपनी इच्छा के विरुद्ध हो, अपने व्यक्तित्व से बिल्कुल अलग हो।

'डूबता हुआ चाँद' में एक ऐसी नारी की बेबसी दिखायी गयीहै, जो अपने पति से पूरी तरह तिरस्कृत होते हुए भी पति के विरुद्ध एक शब्द भी न बोलती है, करती है, बल्कि पूरी तरह उसके आगे अपने को समर्पित करती है।

उसका दोष तो केवल यही थी कि वह गोरी न थी। पत्नी की जायदाद से रोब दिखाकर चलनेवाले पंडा थे उसके पति जो इतना क्रूर था कि पत्नी के पेट में जब दो महीने का बच्चा था तभी उसने पत्नी को मारा था कि वह चारपाई से एक महीने तक बिलकुल उठ नहीं सकी थी और तभी से वह बीमार रही। मारने का कारण यह था कि बाहर किसी ने मज़ाक उडा दिया था कि उनकी बीवी काली है। अपनी बीमार पत्नी को वह अस्पताल नहीं ले जाते। पत्नी के लिए नौकर नहीं रखते क्योंकि फिसूल खर्च के लिए पैसे नहीं है। लेकिन वह रोज़ बाहर से खाना खाता है, नयी गाडी खरीदता है, बुरी स्त्रियों को घर पे बुला लाता है। इतना सब अत्याचार होने पर भी पत्नी एक बार भी अपने पति को दोषी नहीं ठहरती। क्योंकि "पति देवता होता है। दुनिया की निगाह में बुरा होने पर भी औरत की निगाह में वह बुरा नहीं होता। औरत को उसे बुरा कहने या

समझने का कोई हक नहीं।"[1] पत्नी न मरी कि गोरी लड़की से शादी करने की तैयारी करने लगता है।

इस कहानी द्वारा लेखक यह कहना चाहते हैं कि एक चांद तो डूब ही गया। लेकिन दूर उन टिमटिमाते हुए घरों में , ऐसे कितने ही चाँद डूबते होंगे और उनका चाँदनी किसी अँधेरे कोने में, अंध-भक्ति और अत्याचारों की परतों में घुट-घुटकर दफन हो जाती होगी। लेखक यह कहना चाहते हैं कि नारी की अंधभक्ति ही उसे तबाह कर रही है। सब कुछ उसका होने पर भी उसे कुछ नहीं मिलता। हमारे समाज में लड़की के पैदा होते ही उसपर बँधनों और निर्देशों का बोझ लादे दिया जाता है। लड़की यह समझकर पली जाती है कि पुरुष के विरुद्ध बोलना पाप है। यदि वह पति है तो जितने भी अत्याचार वह करें, उसकी पूजा की जानी चाहिए। ये अवधारणाएँ नारी की जिन्दगी को तबाह करती है।

'कमला मर गई' कहानी एक मासूम लड़की कमला की दर्दभरी ज़िन्दगी का दास्तान प्रस्तुत करती है। वह इस देश की लाखों बेपनाह लड़कियों में से एक है जो पल-पल ज़िन्दगी की यंत्रणाएँ झेलते झेलते यह महसूस करती है कि ऐसी ज़िन्दगी से, लड़की का गला खोंटकर मार डालना बेहतर है।

एक फूल की तरह खूबसूरत कमला का बचपन पाबन्दियों में पनपा। दस साल की उम्र में अपने समवयस्का दोस्त के साथ खेलने के

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड एक पृ. 203

कारण पिता से घोर पिटाई मिली, बडी होकर भी समाज ने उसे नहीं छोडा। सब मानते हैं कि वह अच्छा गाती नाचती है। लेकिन उसे 'ज़्यादा' मत नाचना है, क्योंकि बदनाम होना आसान है। "एक पौधा था जिसे पनपने नहीं दिया गया, जिसे कुचला गया, तो अंतिम साँस तक इस कुचले जाने के खिलाफ विद्रोह करता रहा और दुनिया जिसपर हँसती रही, आज जिसे भूल गई।"[1]

वर्षों बाद कमला अपने बचपन के दोस्त से मिलने को लालायित है, लेकिन दोस्त (लेखक) लोक-लाज के कारण नहीं जाता है।

कई परिवारों में लड़कियाँ घरवालों के लिए एक बोझ बन जाती हैं। अपने सिर की बला हटाने के लिए लड़की की मंजूरी बिना लिए उसकी शादी किसी पुरुष से करायी जाती है। नाचती-गाती लड़की बदनाम है, इसलिए उससे शादी करने कोई तैयार नहीं होगा, और इसी कारण से वह माता-पिता के लिए बोझ बन जाती है। कमला ने अपने वर को बिना देखे ही शादी के लिए सर झुका। शादी के बाद कमला की ज़िन्दगी के बारे में कहानी में कोई वर्णन नहीं मिलता है। कमला के मरने का पता लेखक को अपनी माँ की चिट्ठी से मिलता है। माँ के खत में लिखे गए वह विचारशून्य, हृदयशून्य, संवेदना शून्य वाक्य-'कमला मर गई' पढ़ते ही लेखक के मन में अनजाने यह प्रश्न उठता है कि न जाने कितनी कमलाएँ मरती हैं। लेखक का मन यह आशा भी करता है कि

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड एक पृ. 258

'काश वह अब भी जीती रहती। पर जीती कैसे?"[1] लेखक ने इस निर्दयी समाज की ओर इशारा किया है जो लड़की को जीने न देता, पनपने नहीं देता।

समाज की दर्दनाक, वेदनाजन्य स्थितियों को उजागर करनेवाले सर्वेश्वर ने पवित्र प्रेम की कहानियाँ भी लिखी हैं। 'मृत्युपाश' स्पार्टा के धीर योद्धा डेमेट्रियस और वहाँ की प्रसिद्ध नर्तकी यूफोनियां के प्रेम की कहानी है। अपने देश की आज़ादी के लिए लड़कर डेमेट्रियस ने वीर मृत्यु प्राप्त की। उसकी पूजा करने सारा यूनान तैयार है। उसके शव को लाया गया। नाचने के लिए यूंफोनियां को बुलाया गया। वह नाचने लगी। लेकिन उसके मस्तिष्क में डेमेट्रियस के साथ बिताए क्षणों की याद आयी, उनके शादी के सपने याद आए। सहसा उसका सपना टूटा, उसका नृत्य भी बेताल हो रहा था। उसे लगा उसका प्रिय डेमेट्रियस युद्धभूमि से आकर खडा हो। वह प्रसन्नता में पागल हो दौडी और डेमेट्रियस के शव से लिपट गई। सहसा पूजारी चिल्ला पड़ा और साथ ही साथ सैकड़ों कंठों से यही ध्वनि निकली 'देवता का अपमान' डेमेड्रियस का अपमान' और इतना कहते-कहते पूजारी के खड्ग ने यूफोनियाँ का सिर धड़ से अलग कर लिया।

एक क्षण में काँपकर डेमेट्रियस का शव भी भूमि पर लुढ़क पड़ा और वह मृत्युपाश प्रणपाश में परिवर्तित हो गया।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड एक पृ. 258

'आंधी की रात' सानु की कहानी है जो इस धोखेबाजी दुनिया में जीना नहीं चाहता। उसने महसूस किया कि इस दुनिया में कोई किसी का साथ नहीं देता। आदमी बिना प्यार के नहीं रह सकता। वह किसी न किसी को अवश्‍य प्यार करेगा। चाहे वह जड हो चाहे चेतना पर किसी के प्यार पर विश्वास नहीं किया जा सकता, सब धोखा देते हैं। सबका प्यार टूट जाता है। और अंत में हाथ लगाता है पीडा, निराशा, दुःख। ऐसी दुनिया में नहीं रहने और खुदकुशी करने का निर्णय वह लेता है।

यथार्थ प्रेम त्याग और तपस्या है, लेने में नहीं देने में प्यार की खुशी है, इस सच्चाई को शब्दबद्ध करनेवाली कहानी है 'प्रेम और मोह'।

'प्रेम-विवाह' में सर्वेश्वर प्रेम-विवाह की जय-पराजय पर अपनी चिन्ता प्रकट करते है। उनके अनुसार ज़्यादातर प्रेम-विवाह भी पराजय का फल भोगा है। प्रेम करनेवाले लोग समान प्रकृतिवाले होते हैं। प्रकृति की समानता जहाँ प्रेम के लिए सफल सिद्ध हुई, वहीं विवाह के लिए असफल। प्रेम के लिए समान प्रकृति का होना आवश्यक है, पर विवाह के लिए एक   दूसरे का पूरक होना चाहिए, समान प्रकृति का नहीं।

स्वच्छन्द प्रकृति के लोग समाज के बन्धनों को तोड़कर, लोकाचार और रूढियों की भित्ति गिराकर और सम्बन्धियों की उपेक्षा करके प्रेम-विवाह करते है। लेकिन वही लोग विवाह के बन्धन में बंधे रहने पर अपने ही बँधनों में बंध नहीं पाते, और वे असफल बन जाते हैं।

'वह चित्र' फ्रांस का अमर चित्रकार कोरो और रोजा के पवित्र प्रेम की कहानी है। रोजा बीमार थी और अंतिम समय उसने कोरो से कहा था कि उसकी सहेली एलीजा का चित्र बनाना है। और कोरो ने वादा किया कि वे बनाएँगे।

कोरो ने अपनी तमाम कला का उपयोग उस चित्र के निर्माण में किया और एलीजा ने कहा कि इससे सुन्दर चित्र आज तक उसने नहीं देखा है। लेकिन कोरो के मन में यही व्यथा रही कि चित्र की सार्थकता ही क्या थी जब वह नहीं रही जिसके लिए उसने यह चित्र बनाया था।

चित्र की ख्याति समस्त फ्रांस में फैली। कोरो ने यह निश्चय किया कि वह उस चित्र को नहीं बेचेगा, क्योंकि संसार को इस चित्र से कोई मतलब नहीं। सख्त बीमारी में भी, कर्ज़ में भी उसने वह चित्र नहीं बेचा। पर एलीजा की अचानक मृत्यु होने पर उसके पिता ने कोरो से बिनती की, "एलीजा का चित्र मुझे दे दो। मैं उसके बिना मर जाऊंगा...। मैं गरीब हूँ कोरो, कुछ दे नहीं सकता फिर भी मैं स्वयं बिकने को तैयार हूँ। तुम मेरी बोटी-बोटी काटकर फेंक दो, लेकिन वह चित्र।"[1]

अगले दिन ही चित्र एलीजा के पिता के पास भिजवा दिया गया और अभागा कोरो रोजा के कोच पर पड़ा फूट-फूटकर रोता रहा। प्रेम का प्रतीक वह अमर चित्र वसीयतनामे के अनुसार एलिजा के साथ कब्रमें दफनाया जा रहा था।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड एक पृ. 214

'बरसात अब भी आती है' में बाढ़ से पीडित जनता की बुरी हालत का वर्णन है। अपनी जान को खतरे में डालकर अपने मालिक के छोटे बच्चे की जान बचानेवाली अठारह साल की एक लड़की कहानी का मुख्य पात्र है। बच्चे को बचाने के लिए वह एक सिपाही की मदद माँगती है। सिपाही उस लड़की की नेक मानसिकता से प्रभावित होता है।

एक ही रात की छोटी सी मुलाकात ने सिपाही के मन में प्रेम के बीज बोये, उसी रात में वह पला, पर उसी रात में वह नष्ट भी हुआ। प्यार ही मनुष्य को जीने की प्रेरणा देता है।

'खून और शराब' कहानी एक परिवार की बर्बादी के मूल कारण को प्रस्तुत करती है। पियक्कड़ पति, एक पत्नी के लिए सबसे बडा अभिशाप है। शराब के नशे में अपना सुध बुध खोनेवाला वह मर्द अपनी पत्नी के साथ अमानवीय व्यवहार करने से हिचकते नहीं। पत्नी, पति से यह अपेक्षा रखती है कि पति उसे प्यार करें, ठीक तरह से घर संभाले, घर में सुख चैन बने रहें। मेरिया भी अपने पति पाल से यही चाहती थी। लेकिन सबसे बडी चोट उस समय खाती है जब पति ने उससे कहा कि कुछ वर्ष पहले वह इस संसार में मेरिया को प्यार करता था। लेकिन आज वह शराब के बिना जी नहीं सकता और शराब को पत्नी से भी सौगुनी अधिक प्यार करता है। शराब की माँग करनेवाले पति के हाथ में मेरिया लाल तरल पदार्थ से भरे शीशे का गिलास देती है। दरअसल उसने अपनी कलाई का नसकाटकर इस खून से ही गिलास भर दिया।

उसने गिलास पाल के हाथों में थमा दिया। और उसके पहले कि पाल उसे कसकर पकड पाये, उसका शरीर निर्जीव होकर उसके चरणों पर ढुलक पड़ा था।

गिलास देखकर पाल को मुस्कान आने ही वाली थी कि मेरिया को रक्त से लथपथ देखकर वह अपनी शक्ति भर चिल्ला उठा "खून... और गिलास को दूर फेंककर मूर्च्छित हो मेरिया के शरीर पर दुलक गया।

अमानवीय सत्ता की यंत्रणाएँ झेलने के लिए अभिशप्त एक निरीह प्रेमी के संवेदनशील व्यक्तित्व को 'मौत की आँखें' उभारती है। मुगल इतिहास के पन्ने कई बेकसूर इनसानों के आँसुओं से गीले पडे हैं। औरगज़ेब की बेटी विदुषी जेबुन्नीसा का प्रेमी, इरान का प्रसिद्ध युवा कवि आकिलखां का गुनाह यह था कि उसने शाहज़ादी के जन्मदिन में मोती की माला पहना दी जिसका पता औरंगज़ेब को मिला। पिता के कमरे में आते ही जेबुन्निसा ने अपने प्रेमी को कमरे के चूल्हे में रखे हुए ढंग में छिपाया। औरंगज़ेब के आते ही बंदियों से आज्ञा दी कि देग का पानी गरम करने के लिए चूल्हा जलाएँ। यह उनकी साज़िश थी।

अकिलखां ने जेबुन्निसा को अपने से ज़्यादा प्यार किया था, इसलिए अपनी प्रेमिका की इज्जत बचाने के लिए वह तड़प-तड़प कर मरा। पर जेबुन्निसा का प्यार अपनी इज्जत से था। उसने अपनी शौक को पूरा करने के लिए ही प्यार किया था। वह अपने प्रेमी को तड़प-तड़पकर मरते हुए देखकर भी चुप्पी साधती रही।

'क्षितिज के पार' में किशोरावस्था का प्रेम दिखाया गया है, जिसका परिणाम हमेशा दुख ही होता है। ऊँचे कुल के बडे ज़मींदार की बेटी इन्दु अपनी किशोरावस्था में, छोटी नौका के मल्लाह मंगल को अपना जीवन साथी बनाना चाहती है और अपनी इच्छा मंगल से प्रकट करती है। लेकिन वह जानता था, यह कभी भी संभव नहीं है। उसने इंदू के प्रति अपने प्रेम को छिपाकर रखा। वर्षों बीत गये, इंदू मंगल को भूल गयी। उसकी शादी हो गई, बच्चा हुआ। एक दिन वह अपने पति और बेटे के साथ पुराने गाँव पहूँची। खबर सुनकर मंगल इंदू को देखने गया, पर किसी ने उसे नहीं पहचाना। नाव पार करने इंदू मंगल के पास आयी, लेकिन मंगल को उसने नहीं पहचाना।

इंदू ने मल्लाह को नौका चलाने की आज्ञा दी तो मंगल के 'जी, हुज़ूर' आवाज़ सुनने पर इन्दू ने उसे पहचाना। पल भर में ही बचपन के सारे चित्र उसकी आँखों में नाच गए। इंदू ज़ोर से चिल्लाई "मंगल, लौटा लो अपनी नाव मंगल।"[1] परंतु मंगल की नाव धार के साथ जल्दी-जल्दी बढ़ती चली जा रही थी। जीवन से तंग मंगल शक्ति भर डांड चला रहा था। "इंदू अर्द्धमूर्छित अवस्था में उस ओर देख रही थी। और मंगल की नाव भागती हुई चली जा रही थी दूर-क्षितिज के पार....।"[1]

कहानी यहीं खत्म होती है, पर कथा पूरी नहीं हुई। यह पाठकों के अन्दाज़ के लिए छोड़ दिया गया है। मंगल इन्दू के प्रति अपने

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड एक पृ. 269

मन में संजोए सपनों को लेकर तीव्र आवेग की स्थिति में थे। वह जा रहा था, दूर जहाँ कोई सीमा नहीं होती।

किशोरावस्था में बालक - बालिकाओं के मन पर प्रेम के जो बीज अंकुरित होते हैं वे सब के सब पनपते नहीं, कुछ तो फूटते ही सूख जाते हैं, किशोरावस्था में बालक-बालिकाएँ कई सपने भी देखते हैं, पर उनमें कई सपने टूट जाते हैं। इनके सपनों के अधूरे रहने के कई कारण हैं जिनमें से प्रमुख है परिवारों की आर्थिक असमानता जो हमारी मौजूदा सामजिक व्यवस्था का भी एक अभिशाप है। अनाथ बालक मानु और ऊँचे खानदान की बालिका मीनू के बीच का प्रेम भी इसी कारण से भंग हो जाता है। मानु अपनी बालसखी के लिए फल तोड ले आता है तो बालिका उसे अपने बाप के दिए गए सोने के कानों के फूल दिखाती है। इस छोटे से प्रसंग के द्वारा लेखक ने दोनों के बीच की आर्थिक असमानता दिखाई है। दरअसल बालक के मन में अपनी बालसखी को एक कीमती तोफा देने की बडी इच्छा है। खुद वह जानता है कि यह संभव नहीं है। वर्षों बीत जाने के बाद मीनू की शादी के दो घंटे पहले मीनू से मिलकर मानु सोने से ओढ़ा पत्थर का फूल देता है, जो उसके दिल का प्रतीक है, उसकी मोहब्बत का प्रतीक है।

'जिन्दगी और मौत' द्वारा सर्वेश्वर सच्चे प्रेम की परिभाषा देते हैं। दो बहिनें मन्दालसा और लता, एक ही व्यक्ति वनराज को प्यार करती है। मन्दालसा छल-कपट से वनराज को हासिल करने की कोशिश

करती है लेकिन वनराज आकर लता को बचा लेता है और अपने साथ ले जाता है।

मन्दालसा अपने प्रेमी राजा के पास जाती है और खुशी के पाँच बरस बीत जाते हैं। एक दिन लता ओर वनराज नैया पार कर रहे थे। मन्दालसा ने उनको देखा और उसके मन में जलन हुई। मन्दालसा की चाह पर राजा ने उन्हें मारने की आज्ञा दी। लता जब घबराई, तब वनराज ने उसे धैर्य दिया, "डरती है तू। पगली, हम तुम साथ-साथ मर रहे हैं। इससे बढ़कर और कौन-सा सुखा हो सकता है? यह मौत नहीं है लता इसे ज़िन्दगी कहते हैं।"[1] लता और वनराज का प्यार सच्चा है। मृत्यु को नज़दीक देखते हुए भी वनराज तनिक भी न डरता, वह उस मौत को ज़िन्दगी मानता है क्योंकि साथ-साथ जीना और साथ-साथ मरने का भाग्य विरले लोगों को मिलता है।

यह सुनकर राजा को भी एहसास हुआ कि वह मृत्यु नहीं थी, उन्हें मन्दालसा पर क्रोध आया और एक क्षण में उन्होंने उसे उठा लिया और एक भारी आवाज़ में 'मौत यह है' कहकर सैकड़ों फुट नीचे नाले में फेंक दिया।

मानव जीवन तभी धन्य हो जाता है जब उसे जीवन में प्यार देने के लिए कोई है और प्यार लेने के लिए भी कोई। प्यार के अभाव में जिन्दगी ऊसर बन जाती है। बेमतलब जिन्दगी से ऊबकर आदमी

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड एक पृ. 284

खुदकुशी करने निकलते हैं। लेकिन ताज्जुब की बात है कि मनुष्य के मन में मरते दम तक जिजीविषा बनी रहती है। 'अंधेरे पर अंधेरा' कहानी में लेखक ने पाठक का परिचय, आत्महत्या करने तुले एक विपन्न युवक और धनी घराने की एक अनाथ युवती से कराया है। वे दोनों ज़िन्दगी और दुनिया से बिलकुल ऊब चुके हैं। दोनों का सबसे बड़ा दुःख है कि अपने को सच्चे दिल से प्यार करने वाला कोई भी नहीं। अपनी अन्दरुनी व्यथा आपस में बाँटते ही उनका संघर्ष ढीला पड़ता है और जिन्दगी की ओर लौटने का फैसला लेते हैं। और दोनों एक हो जाते हैं। जिन्दगी के प्रति हमेशा सकारात्मक रुख अपनाने का लेखक का विचार कहानी में गूँजता है।

'मीराबी' एक दुखान्त कहानी है। लेखक की राय में जीवन की समस्त दुखान्त घटनाओं का मूल कारण व्यक्ति का अपनी ही दुर्बलता से पराजित होना है। व्यक्ति के चरित्र की कई दुर्बलताएँ उनके विवेक को छीन लेती है। विवेक के खो जाने पर आदमी पशु बन जाता है। 'मीराबी' कहानी में ऐसे पशु बने एक पति का परिचय लेखक पाठकों से कराता है जो अपनी पत्नी मीराबी को बहस और क्रोध के उन्माद में दो टुकडे कर देता है। मीराबी का गुनाह मात्र यही था कि उसने अपने पति डाकुओं के सरदार से शादी के बाद यह बात छिपी रखी कि उसका भाई शेरसिंह, सरदार के गिरोह में है। जब सरदार ने अक्सर मीराबी को छिपा छिपाकर शेरसिंह से बातें करते देख लिया। उसका संदेह दिन पर दिन प्रबल होता जाता था। एक दिन मीराबी से शेरसिंह के बारे में पूछा भी तो मीराबी ने

उत्तर दिया, "विश्वास करना सीखो। इतना मैं कह सकती हूँ कि तुम्हारा स्थान तुम्हारा ही रहेगा, उसे कोई दूसरा इस जीवन में नहीं पा सकता।"[1]

सरदार अपना दुर्बल मन न संभाल रखा, फिर और एक दिन सरदार ने मीराबी और शेरसिंह को पास-पास देखा और शेरसिंह के चले जाने पर मीराबी के दो टुकडे कर दिए। शेरसिंह अपनी बहन के शव को लेकर नदी में कूद पडे।

पति-पत्नी के बीच का रिश्ता मज़बूत रहने के लिए आपसी भरोसे की सख्त ज़रूरत है। मीराबी जानती थी कि उसका पति उसे अपनी जान से भी ज़्यादा प्यार करती थी। पति ने उसे चेतावनी दी थी कि "तुम मेरी दुर्बलता से परिचित रहो क्योंकि मैं जानता हूँ कि आदमी अपनी दुर्बलता पर शीघ्र ही विजय नहीं पा सकता। शेरसिंह मेरा बहुत प्यारा साथी है उसे मैं खोना नहीं चाहता और तुम मेरी ज़िन्दगी हो तुम्हें खोकर मैं स्वयं जीवित नहीं रह सकता और तुम दोनों के बीच है मेरा दुर्बल मन, मेरे दुर्बल संस्कार मुझे क्षमा करो। मीराबी मुझपर दया करो। तुम शेरसिंह से दूर रहो। मैं अपना मन नहीं संभाल पाता।"[2] मीराबी ने उस चेतावनी को अनुसना किया, जो उसके चरित्र की दुर्बलता थी।

'स्नेह और स्वाभिमान' द्वारा प्यार और गर्व में जो अन्तर है, उसको दिखाया गया है।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड एक पृ. 390
2. वहीं पृ. 390

ट्रेन यात्रा में लेखक की मुलाकात एक व्यक्ति से हुई जो पंजाबियों के अहंकार पर क्रुद्ध था और उसका मानना था कि पंजाबियों के नाश का कारण उनका अपना अहंकार ही है। पूरी यात्रा में वह पंजाबियों और लड़कियों की निन्दा कर रहा था। तभी एक पंजाबी लड़की संतरा बेचने आयी जिससे लेखक ने छह पैसे के दस संतरे खरीदे। तब भी वह आदमी बोल रहा था कि संतरे के उतने पैसे नहीं है। लेखक ने उसे एक रुपए दिए तो बाकी देने में उसके पास पैसे नहीं थे। लेखक ने उसे बाकी अपने पास रखने के लिए कहा तो उसकी सरल आँखों में स्वाभिमान झलक आया। लेखक को लगा मानो वह इस दया को अस्वीकार करना चाहती है। परंतु उसे कुछ कहने का अवसर न देकर कहा 'तू मेरी भैन होन्नी माँ न' (तू मेरी बहिन होती है न)।

वह आदमी कह रहा था कि उस लड़की ने लेखक को ठग किया है। उसी वक्त लड़की आयी और उसने लेखक को एक और संतरा दिया और इससे पहले कि लेखक कुछ कहे उसने कहा "तुसीं मेरे वीर होए न, तुसीं लौ जाओ।"

लेखक का सहयात्री पंजाबियों के अहंकार पर टीका टिप्पणी कर रहा है, लेकिन यह सच्चाई वह भूल जाता है कि वह भी अहंकार का शिकार है। संतरे बेचकर जीवनयापन करनेवाली छोटी छोकरी को भी वह इसी दृष्टि से देखता है और उसे ज़ालिम और फरेबी मानता है। लेकिन उस छोकरी ने अपने व्यवहार से साबित किया कि बाज़ार की छोकरियों में भी स्नेह और स्वाभिमान है।

फरेब और जालिम भरी दुनिया में जीनेवाले इनसान के मुखौटेधर्मी व्यक्तित्व का पर्दाफाश करनेवाली कहानी है 'भगत जी'। शहर में नए आए भगतजी को लेकर पति पत्नी में हुए बहस और इसके बारे में लेखक को मिली दो चिट्ठियों के माध्यम से कथ्यफलक का निर्माण हुआ। पत्नी शान्ति ने जो चिट्ठी लेखक को भेजी उसमें लिखा था कि उसके पति ने शहर में नए आए भगत जी को रहने की जगह दी है, लेकिन यह भगत यकीन योग्य नहीं लगा, भौजाई ने मरते वक्त जो सारी दौलत छोडी उसे भगत जी ने हड़प ली। उस चिट्ठी की हर एक पंक्ति में लालची और स्वार्थी भगत जी के प्रति निन्दा झलक रही थी। लेकिन शांति के पति ने लेखक को लिखी चिट्ठी में ठीक उल्टे विचार प्रकट किए थे कि भगत जी पीडित जनता के सामूहिक हितसाधनों में पूरी दिलचस्पी और लगन के साथ जुडे रहते हैं। लेखक की समझ में नहीं आता कि पति-पत्नी की परस्पर विरोधी रिपोर्टों में सामंजस्य का सूत्र कहाँ पर हो सकता है।

'चोरी' कहानी के माध्यम से सर्वेश्वर हमारे समाज की भ्रष्ट व्यवस्था की ओर इशारा करते हैं। हमारे समाज में जन्म से कोई अपराधी नहीं होता, बल्कि हम अपनी व्यवस्था के जरिए, अपराधियों को, चोरों को पैदा करते हैं।

एक गरीब ग्रामीण युवक अपनी पत्नी की इलाज करने शहर के सरकारी अस्पताल पहूँचने पर, उसकी गरीबी की खिल्ली उडाता है, वहीं का डाक्टर। उस डाक्टर ने उससे चोरी कर के पैसे लाने को कडा।

और वह आधी रात को डाक्टर के घर घुस गया। इस घर में जो भी चीज़ें थी, वे सब उसके लिए नयी थीं। वह इस असमंजस में था कि किस चीज को उठाए क्योंकि छोटी-से छोटी चीज भी उसे बहुत कीमती लग रही थी। बहुत देर वह घूमता रहा। किसी ओर से आवाज़ आने पर उसने वहाँ लटकाए गए एक रंग-बिरंगी चित्रकारी से बनी एक बैग उठा लिया यह सोचकर कि उसमें बहुत सारे पैसे होंगे। पर उस बैग में केवल रुज, शीशा, कंधी, लिप्स्टक और एक रूमाल ही थे।

सब तरह से धोखा खानेवाला ग्रामीण युवक चोरी में भी वह असफल रहा। समाज के ऊँचे तबके के लोग ही नीचे तबकेवालों को गलती करने की प्रेरणा देते हैं, पर उसमें भी वे असफल रहते हैं। दूसरों से पैसा हडपकर इलाज करनेवाला डाक्टर उस युवक से ज़्यादा चालाक है।

'छिलके के भीतर' में मनुष्य के ढ़ोंगी व्यक्तित्व का पर्दाफाश किया गया है। मनुष्य अपने स्वार्थ लाभ के लिए दोस्त तक को मारने के लिए तैयार हो जाते हैं। मनुष्य के मन में अब मनुष्यता नहीं रही। छिलके के उतरने पर उसका दानवरूप दीखता है। मानव में छिपी राक्षसीयता की भयानकता पाठक को आक्रांत कर देती है।

'मास्टर श्यामलाल गुप्ता' कहानी द्वारा सर्वेश्वर पाठकों को इन मुद्दों पर सोच-विचार करने के लिए छोड देते हैं कि गाँधीजी के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेनेवाले अनेक महान पुरुषों की स्थिति आज कैसी है? स्वतंत्रता मिलने के बाद पूरा देश

उन लोगों का कैसा ख्याल रखता है और उन स्वतंत्रता संग्रामी लोगों के प्रति परवर्ती पीढी के मन में कैसी भावना है और स्वतंत्रता के बाद हमारे देश की स्थिति कैसी है?

लेखक के दफ्तर में देशसेवक मास्टर श्यामलाल गुप्ता अपनी फैशन की कागज़ात के लिए आते हैं। दफ्तर में किसी को भी उनके प्रति आदर नहीं है। दफ्तर के दूसरे अधिकारी उनके गंदे कपडे देखकर उनकी निन्दा करते हैं, "सरकार कमबख्त भी तो पागलों को पेंशन देती है।"[1]

मास्टर श्यामलाल गुप्ता ने अपने आपको 'पोलिटिकल सफरर' कहा। केवल पन्द्रह रुपए के लिए इतनी यात्रा करके वे आए हैं, ये पंद्रह रुपए उनके लिए काफी था क्योंकि उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में छह-छह पैसे रोज़ पर निर्वाह किया है।

आज के नेता लोग करोड़ों की बात करनेवाले हैं। देश-सेवक कहकर जनता को ठगनेवाले आज के नेता लोग मास्टरजी जैसे व्यक्तियों के प्रति कैसा व्यवहार करते हैं, यह भी इस कहानी में दर्शाया गया है। स्वतंत्रता संग्राम में उनके साथ काम किए एम.पी. मास्टरजी की सहायता करते हैं जबकि जो मिनिस्टर बने हैं, वे नज़रअंदाज करते हैं। उन्होंने निश्चय किया कि आगे वे उनके आगे हाथ न पसारेंग, "असत्य के आगे झुकने की शिक्षा महात्माजी ने हम लोगों को नहीं दी थी, न गया, और न जाऊंगा।"[1]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड एक पृ. 289
2. वहीं पृ. 291

सर्वेश्वर की कई कहानियाँ प्रतीकात्मक हैं। प्रतीकों के माध्यम से वे समाज के अनदेखे मुद्दों पर प्रकाश डालते हैं।

'सीमाएँ' नामक कहानी में एक बिल्ली के घर में घुस आने की घटना के माध्यम से लेखक यह कहना चाहता है कि मनुष्य अपने ही सुख के लिए किसी को प्यार करता है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि उसके निजी मामलों में दखलअंदाज़ करें। बिल्ली घर के सभी कोने में बिना अनुमति लिए, प्रवेश करता रहता है, लेखक और पत्नी को पहले उतना बुरा नहीं लगता था, लेकिन बाद में वे तंग आते हैं। उन्हें लगता है कि हर बात की सीमा होनी चाहिए। स्नेह की भी और कृतज्ञता की भी विश्वास की भी।

'धूप कहानी में 'धूप' समानता का प्रतीक है। "धूप सर्वत्र समान रूप से फैली हुई है। नालों में, टीलों पर, घर, द्वारा, पेड-पौधे, वनस्पति, जल-थल चारों ओर एक सी। सब जिस रूप में भी है, उसे ग्राह्य है। सब उसके हैं वह सबकी है उसका अनंत विस्तार है।"[1]

जीवनका मर्म जानने के लिए धूप के चश्मे से देखे तो पता चला जाएगा। धूप के समान सबको समान रूप से देखे तो जीवन कितना सुखद होगा।

पुरुषमेधा समाज में पुरुष हमेशा स्त्री को अपनी ऊँगली पर नचाता है। स्त्री का प्यार सच्चा होता है और वह पुरुष को अपनाना

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड एक पृ. 228

चाहती है। लेकिन ज़्यादातर पुरुष प्यार का नाटक करके ऐन मौके पर छोड़ चल जाता है। स्त्री की पकड़ के घेरे में वह कभी भी नहीं टिकता। स्त्री के लिए पुरुष का प्यार एक मरीचिका जैसा बन जाता है। 'तीन लड़कियाँ एक मेंढक' कहानी में लेखक ने यह सच्चाई बखूखी ढंग से प्रकट की है।

तीन लड़कियाँ अल्हड़ लड़कियों का प्रतीक है और तीनों एक कमरे में बैठ अपने-अपने प्रेमी की बातें करती हैं। तीनों की बातचीत से मालूम होता है कि तीनों के प्रेमी कभी उनके प्यार की पकड़ में नहीं आये हैं। एक मेढ़क उस कमरे में घुस आता है, वह पुरुष का प्रतीक है। तीनों लड़कियाँ मेड़क को अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार पकड़ने लगती हैं कि मेंढ़क उन्हें हटाकर छलागँ मारता है, "उसकी छलाँग में और अधिक विश्वास और अधिक निर्भयता है, एक उपेक्षा का भाव, जैसे उसे पकड़नेवाले असमर्थ हैं, नागण्य हैं। इस कमरे में वही समर्थ है, हर छलाँग के बाद पूर्व स्थान से निर्लिप्त, न बाँधता है न बँधता है।"[1]

आज सारी दुनिया में उपयोगितवाद की दौर है। जिसका उपयोग न हो, उसकी उपेक्षा की जाती है। वैसे ही अपनी वृद्धावस्था में मनुष्य उपयोगहीन बन जाता है। वृद्धों को अकेला छोडने की प्रवृत्ति आज समाज में बढ़ रही है। बुजुर्गों के मन को अब सहारा नहीं रह गया है, उनकी देखभाल का कार्य बोझ-सा बन गया है। उनकी ज़िन्दगी 'मरी

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड एक पृ. 330

मछली' के समान ठंडी पड़ गयी है। 'मरी मछली का स्पर्श' कहानी के द्वारा मूल्य-विघटित समाज की ओर लेखक हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं।

अपने मृत बच्चे का शवसंस्कार करने की तैयारी करनेवाले एक पिता की मानसिकता, शवसंस्कार में भाग लेने के लिए उपस्थित लोगों की टीका टिप्पणी के कारण और भी रुग्ण एवं दर्दनाक बनती है, इसको रेखांकित करनेवाली कहानी है 'सफलता'। कुछ बुजुर्गों की हिदायतों के अनुसार पिता ने बच्चे के निकर, कमीज़ आदि उतारने की कोशिश की। पर वह कमीज़ उतार न सका। किसी ने उसे फाड़ देने की आवाज़ दी। लोगों की हिदायतों और टीका टिप्पणी सुनकर उसे गुस्सा आ रहा था, लेकिन समाज के कायदा-कानून एवं रीतिरिवाज़ को मानने के लिए आदमी अभिशप्त है। उस बेचारे पिता की हालत दयनीय थी। उसने निर्ममापूर्वक अकडी बाँहों को खींचकर कमीज़ की बाँह निकाल ली। "निर्जीव शरीर के प्रति क्रूर व्यवहार का तनिक भी क्षोभ उसमें नहीं था, बल्कि अपनी सफलता पर संतोष था।"[1]

शासन व्यवस्था हमेशा जनता को भीरू रखना चाहती है ताकि उनकी हरकतों पर वे प्रश्नचिह्न न लगा कर चुप्पी साधे। लेकिन जो लोग निर्भीक होकर उनके कामों में दखल देते हैं, उनसे शासक डरते हैं और उन्हें या तो बाँधकर रखना चाहते हैं या खुला छोड़ देते हैं। यह सोचकर खुला छोड़ते हैं कि बाँधकर रखने से और हादसा न हो जाए।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड एक पृ. 344

तोता' कहानी में लेखक के घर अचानक एक दिन आए तोते की निर्भीकता पर सर्वेश्वर चिन्तित होते हैं। लेखक की पत्नी ने उसे बाँधकर रखना चाहा, पर वह आकाश की ओर उड़ गयी और घर से जाने पर पत्नी आश्वस्त हो गयी।

नयी परिस्थिति में अपने लिए एक जगह ढूँढने में असमर्थ मानव का संघर्ष 'सूटकेस' कहानी में प्रकट किया गया है। अपने अभिमान को क्षत पहूँचने पर वह स्वयं अपनी पिछली परिस्थिति की ओर वापस जाता है। बचपन से लेकर जिस सूटकेस से लेखक का घनिष्ठ सम्बन्ध था, जिसमें अपना सब कुछ आसानी से समा सकता था, बडे होने पर उसी सूटकेस को छोड़ने के लिए विवश हो जाता है। क्योंकि अब उसके पास बहुत सारे कपडे हैं। माँ का दिया हुआ नया ट्रंक बहुत बड़ा था, जिसके आगे लेखक को छोटापन महसूस हुआ। नये ट्रंक को छोड़कर अपने पुराने सूटकेस में ही फिर कपडे रख दिया और अतिरिक्त कपड़ों की अलग पोटली बन ली।

नयी परिस्थिति के अनुसार अपने को बदलने में मनुष्य हमेशा हिचकता है। नयी और पुरानी की झंझट हमेशा बनी रहती है। एक को अयोग्य कहकर हम छोडते हैं तो दूसरे हमें अयोग्य कहकर छोड़ते हैं, "एक मेरे योग्य नहीं है, एक के योग्य मैं नहीं हूँ। संक्रान्ति की उस खिसकती हुई भूमि पर खडे होकर मेरे जी में आया, मैं चीखूँ... मैं क्या करूँ?"[1] लेकिन जब अपनी बिटिया को वही सूटकेस दिया गया तो उसन

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड एक पृ. 349

जल्दी ही 'ना' कर दिया क्योंकि नयी पीढ़ी नयी परिस्थिति को बहुत जल्दी अपनाती है।

लेखक होने का रोब जमाके रखने के लिए कुछ लोग अनुभवहीन होकर भी कुछ न कुछ लिखने बैठते हैं, आधी रात तक। कुछ नया रचने का उनके पास विषय नहीं है क्योंकि वे दुनिया से कोसों दूर हैं। 'सो जाओ दोस्त' में ऐसे लेखकों की सर्वेश्वर खिल्ली उडाते हैं। उनसे लेखक का उपदेश है कि आधी रात तक बैठकर सोचने की बजाय सो जाना ही उचित है। "प्रतिभा का उपयोग करके यदि इस समय लेखक होने का सुख नहीं पा सके, तो दिन भर संघर्ष करके आदमी होने का संतोष तो पा ही चुके हो।"

'नयी कहानी के नायक और नायिका' शीर्षक कहानी में सर्वेश्वर रसीले ढंग से यह चित्रित करते हैं कि नये कहानीकारों ने पुरानी प्रेम कहानियों में दीखनेवाली अतिशय वर्णन छोड़ दी है। आजके कहानीकार साधारण सी बातें साधारण ढंग से कहकर वही प्रभावात्मकता हमारे सामने लाते हैं जो पहले की कहानियों में थी।

प्रेम करनेवाले लोगों पर समाज नैतिकता की पाबन्दी लगाते हैं। यह सूचित करनेवाली कहानी है 'छाता'। बरसात में एक छाता के नीचे दो प्रेमी चलते हैं, पर वे भीगते भी हैं। छाता प्रतीक है, नैतिकता का। "दोनों के बीच में एक छाता है, जो न उन्हें मिलाता है, न पृथक करता है, न ही पूर्ण रूप से उनके अस्तित्व की रक्षा करता है।"[1] नैतिकता का ढ़िंढोरा पीटने वाला समाज उनके अस्तित्व की रक्षा नहीं करता है।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड एक पृ. 353

पति और पत्नी, दोनों के नौकरी किए बिना आजकी महँगाई की इस दुनिया में जीना मुश्किल हो गया है। नौकरी पेशा पति-पत्नी को अलग-अलग रहना पड़ता है। यह फासला उनके बीच के प्यार में भी दरार पैदा करता है। दोनों समझौते की ज़िन्दगी जीते है। होली, दीपावली जैसे विशेष अवसरों में भी एक होने से उनकी नौकरी उन्हें रोकती है। पेशेवर दम्पतियों के ऐसे मानसिक तनाव 'पराजय का क्षण' कहानी द्वारा दिखाया गया है। दीपावली के अवसर पर पत्नी के आने की प्रतीक्षा करनेवाले पति को पत्नी का तार आया है कि वह नहीं आ सकेगी। एक पल के लिए पति का भावुक मन अपना अधिकार जमाता है। इसे अपने बच्चे को देखने की इच्छा होती है। वह अपने अन्दर के साधारण आदमी से हारने लगता है कि वह अपने को समझाता है। "समझौता, सारे समाज, सारे जीवन के साथ, जब मैं दीपावली की इस शाम को समाज के किसी भी प्राणी के आने की प्रतीक्षा नहीं करता, तो उसके आने की प्रतीक्षा क्यों करनी चाहिए? मैं अपने को समझाता हूँ।"[1] दीपावली अँधेरे को प्रकाशमान करने का अवसर है। पर यहाँ दीपावली मनुष्य को और अधिक अंधेरे में डाल देती है।

भारतीय नारी मर-खपकर अपने परिवार को टूटने से बचाकर रखती है। बहुत कम में ही घर बसाने की कला स्त्री को ही मालूम है। अपने घर के प्रति स्त्री की जो निष्ठा है, वही उसे आगे बढ़ाती है। अपने

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड एक पृ. 362

परिवार को टूटने से बचाने के लिए मरने तक के लिए वह तैयार हो जाती है। पुरुष स्त्री को अपनी सामर्थ्य से परखता है, पर स्त्री के मर जाने के बाद ही स्त्री की निष्ठा का पुरुष को पता होता है। 'एक बेवकूफ चिडिया' द्वारा स्त्री और पुरुष के मनोव्यापार में जो अन्तर है, वह प्रकट किया गया है।

अपने घर घोंसला बनानेवाली चिडिया को पति बेवकूफ कहता है क्योंकि वह कम जगह में घोंसला बना रही है। लेकिन कम परिस्थितियों में गुज़ारे करने की चिडिया की क्षमता की पत्नी प्रशंसा करती है। कई वर्ष बाद पत्नी की मृत्यु के बाद एक चिडिया घोंसला बनाने आयी, पति को लगा "उसकी खोज जारी है, मेरी खोज खत्म हो गयी है। निष्ठा का सहारा न लेने से सामर्थ्य चूक गया है।"[1] क्योंकि पत्नी की निष्ठा ही उसका सामर्थ्य था।

किसी की याद में कुछ संजोकर रखना मनुष्य की प्रवृत्ति रही है। उनकी दी हुई चीज़ें संभालकर रखते हैं यद्यपि उनका उपयोग हमें न हो। सर्वेश्वर की राय में यह झूठी निष्ठा है। किसी की दी गयी चीज़ यदि हमारे उपयोगी नहीं है तो किसी दूसरे को देना ही अच्छा है। 'पुलोवर' कहानी में यही चिन्ता व्यक्त की गयी है। माँ का दिया हुआ पुलोवर माँ की मृत्यु के बाद लेखक के लिए उनकी स्मृति का आधार बन जाता है। पुलोवर पहनने से माँ के साथ होने का एहसास होता है। फटने पर भी अपने नौकर तक को देने में वह हिचकिचाता रहा। अपने नौकर को सर्दी

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड एक पृ. 367

में ठिठूरते हुए देखने पर लेखक को अपने आप पर लज्जा आयी "प्रेम को निभा पाने के एक झूठे गर्व के कारण मैं इंसानियत से गिर रहा हूँ। माँ के प्रति मेरी सच्ची श्रद्धा का, मेरे सच्चे प्यार का निर्वाह यह नहीं।"[1] यह विचार आते ही लेखक ने अपने नौकर को पुलोवर दिया। उसके बाद कभी किसी को एक बड़ा पुलोवर पहने हुए लेखक देखता है, तब उसे माँ की याद आती है।

हमारे समाज में जनम लेते ही लड़कियों पर पाबन्दियों का एक सिलसिला ही लादा जाता है। इससे इसके अन्तर्मन में हमेशा यही चिन्ता बनी रहती है कि दुनिया के सब लोग उसकी इज्जत लूटने वाले हैं। उसे सिखाया जाता है कि किसी के घूरने से भी उसकी नैतिकता नष्ट हो जाती है। इन झूठी नैतिक धारणाओं को नकारनेवाली कहानी है 'लपेटें'। लेखक के दोस्त की बहन के अपने घर में आने पर लेखक उससे कुछ दूर ही रहता है। क्योंकि उसने सुना था कि दोस्त की बहन से कस्बे का नवयुवक वर्ग थर्राता था क्योंकि जरा-सी बदतमीज़ी पर वह उन्हें पीट चुकी है। उसकी ओर आँख उठाकर भी देखने से भी लोग डरते थे। लकिन दोस्त की बहन लेखक से बातें करने आयी तो भी लेखक ने उसे अनदेखा किया और कहा कि वह उससे डरता है। लेखक ने बातों ही बातों में समझा दिया कि हमारी नैतिकता किसी के घूरने से नष्ट नहीं हो जाएगी।

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड एक पृ. 367

भूखे लोगों के लिए अन्न उसकी बाइबिल है। बेरोज़गारों के लिए नौकरी ही बाइबिल है। 'एक नयी बाइबिल' शीर्षक कहानी में लेखक ऐसे आदमी का परिचय कराते हैं जो नयी बाइबिल लिख रहा है। वास्तव में वह प्रधानमंत्री, डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट, डिस्ट्रिक्ट जज, सूपरिन्टेण्डम्ट पुलिस, विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर आदि प्रतिष्ठित नागरिकों और अधिकारियों को पत्र लिख रहा था कि उसकी जूते की दुकान की चोरी की गयी है। सारा माल चला गया। चोरी का पता लगवाना है क्योंकि वह उसकी रोज़ी थी। उन बदमाशों को सजा दी जानी चाहिए। वह बेरोज़गार है, इसलिए उसकी बात सुननेवाला कोई नहीं है। प्रधानमंत्री से उसका निवेदन है कि अफसरों को निर्देश दिया जाए कि घूसन ले। और मामले की ठीक से तहकीकात करें।

"माँगे हुए शीर्षक' कहानी में सर्वेश्वर इस बात पर अपना विरोध प्रकट करते हैं कि मनुष्य हमेशा किसी न किसी लेबिल से जाना जाता है। उसका अपना अस्तित्व नहीं है, प्रचलित रीति-रिस्मों के अधीन वे अपने को बाँधता रहता है। सर्वेश्वर के अनुसार जिन शीर्षकों में लोग जाने जाते है असल में वे ऐसे नहीं है क्योंकि अन्दर और बाहर मनुष्य भिन्न-भिन्न स्वभाव वाले होते हैं। जीवन के विषय के अनुरूप जीवन के शीर्षक नहीं होते क्योंकि जीवन का विषय जीवन की परिस्थितियाँ होती हैं और शीर्षक परंपरा से मिलते हैं उन्हें हम माँगकर लाते हैं क्योंकि उनसे सामाजिक मान्यता प्राप्त होती है।

'रोशनी' में इस संसार के अन्धेरे को अपनी कला के माध्यम से प्रकाशित करने की चाह करनेवाले कलाकार की झंझट दिखायी गयी है। झंझट इसलिए कि वह एक गरीब कलाकार हैं। दीन-दुखियों की दशा देख उसे दुःख उमड़ आता है, इसलिए अपने परवरिश की चिन्ता किए बिना, अपने हाथ में जो भी है, उसका दान करता है। दुनिया की नज़र में वह बेवकूफ है। लेकिन वह अपने इस विश्वास पर अडिग रहता है कि जिस समय कलाकार में सुख-भोग-माया जग जाती है, उसकी कला का पतन हो जाता है। यद्यपि एक गरीब कलाकार के लिए माया से जूझना बहुत बड़ा संघर्ष है, तो भी उसे इसकी चकाचौंध से आँखें फेर लेना अच्छा है, क्योंकि वही उसका पुनीत कर्तव्य है। नहीं तो आनेवाली पीढ़ी उस पर थूकेगी।

यही चिन्ता 'रेगिस्तान की यात्रा' में भी व्यक्त की गयी है। एक सच्चा कलाकार अपनी कला से पूर्ण संतोष पाता है तो वह व्यावहारिक जीवन में पराजित हो जाएगा। इसका ज़िम्मेदार वह स्वयं ही ह। सर्वेश्वर की राय में कला के नाम पर यदि कोई अपने को उत्सर्ग करता है तो यह उसकी पसंद है, समाज ज़िम्मेदार नहीं है। क्योंकि रेगस्तान की यात्रा सब करते हैं।

'गलती' में दो दोस्तों के बीच घड़ी लेने और देने में जो मानसिक तनाव, उथल-पुथल और मान और अपमान है, उसको दिखाया गया है।

'उठे हुए सिर का बोझ' में ज़मींदारी प्रथा की आलोचना की गई है। इस कहानी द्वारा सर्वेश्वर यह घोषित करते हैं कि गरीब और अमीर में अभिमान की भावना समान ही है। गरीब होने का मतलब यह नहीं कि वह इज्जत का अधिकारी नहीं है।

'मैं एक बेरोज़गार आदमी' में एक बेरोज़गार आदमी अपनी कहानी कह रहा है। उसकी कहानी के द्वारा बेकार लोगों की मानसिक व्यथा दर्शायी गयी है। लगी-लगाई नौकरी के अचानक छूट जाने पर उत्पन्न वेदना, बिना नौकरी किए महँगाई के इस ज़माने में कैसे जिएगा ऐसी समस्या, नौकरी बनाए रखने के लिए मालिक की चापलूसी से लेकर क्या-क्या करना पड़ता है, आदि बातों पर विचार किया गया है।

फलेच्छा के बिना काम करने का एक बहुत बडा आदर्श 'भुईंलोटन' कहानी द्वारा सर्वेश्वर हमारे सामने रखते हैं। भुईंलोटन नामक मज़दूर इस कहानी का केन्द्र पात्र है जिसकी एकमात्र संपत्ति पीतल का एक लोटा है। हर स्थिति में वह तृप्त था। हर आदमी को चाहे वह अमीर हो या गरीब, छोटा हो या बड़ा, नेक हो या धूर्त, ऊँचा हो या नीच, भुईलोटन ने यह अधिकार दे रखा था कि वह उससे किसी भी काम के लिए कह सके। वह 'ना' नहीं करेगा न ही बदले में कुछ मांगेगा। देंगे ले लेगा, नहीं देंगे नहीं लेगा। दिया तो किसी से गुण नहीं गाएगा और न ही दिया तो किसी से बुराई नहीं करेगा। उसके लोटे ने ही उसे यह दर्शन सिखाया। क्योंकि भरे पेट या खाली पेट, हर स्थिति में उसी लोटे से ही उसे तृप्ति मिलती थी।

उसी लोटे के कारण लोग उसे काम पे नहीं बुलाने लगो। क्योंकि काफी समय वह लोटे की मरम्मत में लगा रहता है जिसके हलके पेंदे में छोटे-छोटे तमाम छेद हो गए थे। तब भी उसे कोई परेशानी नहीं थी। उसके दर्शन यह है कि किसी का होकर मेहनत करना गुलामी है। भला-बुरा कोई नहीं होता। अगर होता भी है तो अपने लिए। सबका कर्म सबके साथ जाता है। उसकी राय में पेड़ के समान होना चाहिए। पेड़ फल देता है तो सबको समान रूप से। उस फल को भला-बुरा कौन ले जाता है, इससे उसे कोई मतलब नहीं। उसे तो धरती माता को ही जवाब देना है जिसकी शक्ति पर वह पलता है।

उसकी निस्संग सेवा के लिए प्रतीक रूप में लेखक ने बडा लोटा दिया तो सने न कर दिया क्योंकि एक मज़दूर आदमी इतना बड़ा लोटा पास रखने पर लोग समझेंगे कि लालची है। आज की इस लालची दुनिया में लालची ने होने में ही उसकी विजय है।

नये कलाकारों को स्वीकारने में लोग ज़रा हिचकते हैं। नये साहित्यकारों की रचना पढ़कर न समझने की शिकायत लोग करते हैं, पर ना समझ शायद पाठक ही होगा। 'एक रद्दी कहानी' में सर्वेश्वर ने एक नये लेखक की आकुलता दिखाया है। उसकी रचना को सबने रद्दी कही है, पर वह वास्तव में रद्दी नहीं थी। सर्वेश्वर ने जब कहानी सुनी तब उन्हें लगा कि दर्द का हर तार छेड़ने में वह कहानी समर्थ थी। उनकी राय में वह कहानी पढ़ने और समझने योग्य क्षमता पाठक को नहीं है। अपनी समर्थता को दूसरे की असमर्थता कहनेवाले लोगों की सर्वेश्वर हंसी उडाते हैं।

जीवन की गहराइयों में गोता लगानेवाले साहित्यकार होने का दावा करते हुए लिखनेवालों पर व्यंग्य करनेवाली कहानी है 'एक रद्दी उपन्यास'। अपनी रचना का प्रकाशन करते वक्त वे कहते हैं कि वे आज की ज़िन्दगी का सच्चा अध्येता है और उसने जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। चमकदार जिल्दों में, काफी महँगा दाम डालते हुए पुस्तक को बेचते हैं। लोग जिल्द देखकर खरीदते हैं। पढ़ने पर मालूम हो जाता है कि लेखक का दावा बिल्कुल गलत था। बाज़ार में पुस्तक के खूबसूरत कवर देखकर मदन अपनी पत्नी आशा को खरीद देता है। पुस्तक पढ़कर पत्नी अपना समय बरबाद करने के लिए पति को डाँटती है। आशा के कथन द्वारा सर्वेश्वर अपनी राय प्रकट करते हैं कि साहित्यकार हमेशा जीवन के दुखी पक्ष को ही देखते हैं। लेखक लोग ऐसे मान बैठे हैं कि दुनिया की हर तरह की कठिनाई, हर किस्म की मुसीबत, हर दर्द, हर चोट इन लेखकों के लिए बनी है। लेकिन ऐसा नहीं है। जीवन में दुख की अपेक्षा सुख अधिक है।

आज के सामाजिक यथार्थ की सच्ची पहचान करानेवाली कहानी है 'नये कवि से चातक की शिकायत'। हमारे समाज की बदलती परिस्थितियों और मान्यताओं पर प्रकाश डाला गया है। चातक आकर नए कवि से शिकायत करता है कि नये कवि उनका अनदेखा करते हैं। वे नये प्रतीकों के पीछे पडे हैं। कवि उसको समझाता है कि चातक प्रतीक है, साधना, लगन, प्रेम और निष्ठा का। पर अब वे मूल्य कहाँ है? साधना तो

अब केवल लड़कियों का नाम हो गयी है, लगन ज्योतिषियों के पन्नों में होता है या इसका नाम केवल वे पिता जानते हैं जो विवाह के समय लगन भेजते हैं। साधना और लगन वहाँ होती है जहाँ पूर्णता की खोज होती है। आज की ज़िन्दगी पूर्णता की खोज नहीं है, क्षणिक आवेगों की ज़िन्दगी है। चातक प्रेम के अडिग चिरन्तन, अमर स्वरूप का प्रतीक है। मन, कर्म, वचन की एकता का प्रतीक है। इसीलिए पुराने कवियों ने चातक को प्रतीक रूप में स्वीकारा था। लेकिन आजके कवि ऐसा नहीं कर सकते क्योंकि आधुनिक सभ्यता की सबसे बडी देन ही मन, कर्म, वचन की विषमता है। आज का आदमी सोचता कुछ है, करता कुछ है और कहता और कुछ।

मूल्य-विघटित समाज पर सर्वेश्वर अपना दुःख व्यक्त करते हैं कि इन्सान होकर मनुष्य ने अपना धर्म छोड़ दिया है। चातक अपनी निष्ठा पर अडिग रहने का निर्णय करके चला गया तो झूठे युग का झूठा कवि अपना सिर झुका लिया।

कोरे नारों से तथा थोथे प्रलापों से समाज में कोई भी परिवर्तन नहीं आएगा। समाज की बुराइयों को मिटाने के लिए कर्म की ज़रूरत है। असली क्रान्ति तो बुराइयों को आमूलचूल मिटाने में है। सामाजिक बुराइयों के कारण को मिटाना है। यथार्थ के आगे आँखें बन्द करने से कोई फायदा नहीं। यथार्थ का सामना करना चाहिए। बिना शीर्षक की कहानी में ये चिन्ताएं व्यक्त की गई हैं।

बाल कथाएँ

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के व्यक्तित्व की विशेषता यह थी कि वे समाज की कुरीतियों के विरुद्ध लडते वक्त भी बालसहज मन अपनाते थे। बच्चों के लिए उन्होंने गीत लिखे हैं, नाटक लिखे हैं और कहानियाँ भी लिखी हैं। वे अपनी बाल-कथाओं द्वारा बच्चों को सच्चरित्र बनने की प्रेरणा देते हैं।

गरीब और अमीर में जो भेद-भाव है, वह बडो तक सीमित नहीं है, बल्कि बच्चों में भी वैसा ही भाव उत्पन्न होता है। इसका कारण हमारी व्यवस्था है जिसने कुछ लोगों को गरीब और कुछ लोगों को अमीर बना दिया। सबके समान होने की चिन्ता बच्चों में रूढमूल नहीं है क्योंकि वह भी वर्गीयता का शिकार है। अमीर बच्चों के समान सप्ने देखने से भी गरीब बच्चे वंचित है। 'अपना दाना' एक गरीब लड़के की कहानी है जो अपनी माँ के कथनानुसार माँ के दिए चने ही खाते हैं जबकि बाकी बच्चे खोमचेवालों से।

एक दिन एक लड़का उसे बुला ले गया और उससे सूई घुमाई तो ढेढ़ सारी बिस्कुटें उस लड़के को मिली। लड़के ने बिस्कुट दी तो गरीब लड़के ने न कही, क्योंकि उसकी माँ ने उससे कहा है कि अपना ही दाना खाना चाहिए।

वह नेक है, इसलिए सूई घुमाने में वः सफल है, यह ख्याति फैली और सब लड़के उससे सुई घुमाने लगे और बहुत सारे बिस्कुटें भी

पाए। इकन्नी न होने का दुःख उसके मन में धीरे-धीरे प्रबल होने लगा और माँ की संदूकची से उसने इकन्नी छिपा दी। स्कूल जाकर खाने की छुट्टी के समय खोमचेवाले के पास पहूँचा तो इकन्नी नहीं थी। अपने किए की सजा मिली है, यह सोचता वह वापस आ गया। घर पहूँचने पर माँ ने एक इकन्नी देकर कहा कि स्कूल जाकर जो जी में आए खा लेना। लेकिन उसने वह न ली क्योंकि वह पश्चाताप से रो रहा था।

'सफेद' कहानी में यह कहा गया है कि ज़िन्दगी में अगर हम कुछ चाहते हैं तो कोरी प्रार्थना से नहीं मिलेगा, बल्कि मेहनत करना पडेगा।

एक अध्यापिका के ग्यारह साल के लड़के के मन में सफेद गुड खाने की इच्छा हुई। आर्थिक कठिनाई ने माँ को रोक दिया उसे भी। माँ ने उससे कहा कि ईश्वर ने पूछने पर मिलेगा। इसलिए वह ईश्वर से माँगने लगा। नमक खरीदने दूकान गया तो वह रास्ते भर ईश्वर से माँगता रहा तो अचानक रास्ते में जो मस्जिद है, ठीक उसी स्थान से उसे एक अठन्नी मिली। उसका मन चिल्लाने लगा कि ज़रूर ईश्वर है। दूकान पहूँचकर गर्व क साथ कहा कि सफेद गुड़ चाहिए। अठन्नी देने लगा कि वह गिरकर धनिया के डिब्बे में गयी। पसारी ने उस डिब्बे को टटोला सब कहीं देखा पर अठन्नी नहीं मली। उसे लगा, देखते-देखते सबसे ताकतवर ईश्वर की उसके सामने मौत हो गयी थी।"[1]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड एक पृ. 475

बच्चों के लिए लिखी गयी, गीतों से भरी मज़ेदार कहानी है 'जूँ चट्ट्, पानी लाल'। 'अब इसका क्या जवाब है' कहानी द्वारा सर्वेश्वर बच्चों से यह बताते है कि भूत-प्रेत का कोई अस्तित्व ही नहीं है।

'टूटा हुआ विश्वास' शीर्षक कहानी ईश्वर के अस्तित्व पर प्रश्न-चिह्न लगाती है। अपना कर्तव्य न निभाकर, आलसी बनकर, कार्य सिद्धि के लिए ईश्वर का नाम पुकारनेवालों से सर्वेश्वर यही कहना चाहते है कि अलसता से कोई फायदा नहीं है।

सर्वेश्वर के कथासाहित्य में बहती सामाजिक धारा

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय जीवन मूल्यों में तेज़ी से आयी गिरावट और उससे उत्पन्न सामाजिक विसंगति तथा ईमानदारी से जीवन निर्वाह करनेवाले व्यक्ति के कठिन द्वन्द्व का मार्मिक चित्रण है सर्वेश्वर का कथा साहित्य। भौतिक समृद्धि और आत्मकेन्द्रित जीवन दृष्टि आधुनिक सभ्यता का प्रधान वैशिष्ट्य है। अर्थ जीवन के केन्द्र में है और क्षुद्र ऐन्द्रिय भोग चरम लक्ष्य। इसमें सबसे अधिक संकट उस व्यक्ति के लिए उत्पन्न हुआ है जो स्वयं मूल्यों के प्रति समर्पित है और अपने आसपास के लोगों से उसके आचरण की अपेक्षा रखता है। सर्वेश्वर का कथासाहित्य इसका दृष्टांत है।

समस्याएँ पुरानी और सीमित हो सकती है, पर मानवीय चरित्र के अनेकानेक पहलू होते हैं। मन की अतल गहराइयों में उतरकर गहन गंभीर चर्चा करना हरेक के बस की बात नहीं है, जीवन दर्शन गहरी

अनुभूति की भित्ति पर पनपता है। वे जन विरल होते हैं जिनकी तीक्ष्ण दृष्टि दार्शनिक गुत्थियों को सुलझाकर सही अर्थ की तलाश में व्यग्र दिखाई देता है। सर्वश्वरदयाल सक्सेना उन विरले व्यक्तियों में एक है, यह हम उनके कथा-साहित्य पढ़कर कह सकते हैं।

सर्वेश्वर की बहिर्मुखी प्रवृत्ति और स्वतंत्र चेतना का एक परिणाम इस रूप में सामने आया कि वे जहाँ रहे, वहीं से अपनी कहानियों की कथावस्तु उठायी। वे जिस कार्यक्षेत्र में सक्रिय रहे वही उन्हें कहानियाँ मिलीं। उनकी कथायात्रा में न केवल उनकी कहानियों की वस्तु बदलती रही, अपितु उनके शिल्प का भी विकास होता गया।

समाज से सम्बन्धित कोई भी विषय उनकी कथा का विषय बना है, चाहे वह पारिवारिक हो, राजनीतिक हो, आर्थिक हो, धार्मिक हो, नैतिक हो, नारी विषयक हो।

उनके केवल तीन उपन्यास ही हैं पर तीनों का कथ्य एक-दूसरे से बिलकुल भिन्न है। 'सूने चौखटे' में व्यक्ति की स्वतंत्रता में दखल देने की समाज की प्रवृत्ति दिखाई गयी है। नारी होने की विवशता दिखायी गयी है। चाहते हुए भी बडी न बन पाने की नारी की विवशता, उस पर थोप जानेवाले समाज के नियम ये सब दर्शाए गए है तो 'सोय हुआ जल' में छद्म मानवीय व्यक्तित्व को उभारा गया है। मनुष्य का बहुमुख इसमें दिखाया गया है। आदमी बाहर से जो है, अन्दर से और कोई। समाज में निहित हर व्यक्ति की कपटता दिखाई हुई है। समझौते की जिन्दगी जीकर एक-दूसरे को ठगनेवाले व्यक्तित्वों को इस उपन्यास में दिखाया गया है।

'पागल कुत्तों का मसीहा' उक्त दोनों उपन्यासों से बिल्कुल भिन्न है। भारतीय समाज के ऊपर पूँजीवादी व्यवस्था की आक्रामकता दिखाई देती है। किसप्रकार पूँजीवादी व्यवस्था हमारी व्यवस्था को धीरे धीरे निगलती है, उसका भयानक चित्रण 'पागल कुत्तों का मसीहा' में किया गया है।

धर्म अपनी जकड़ कैसे आम आदमी पर मज़बूत करता है, यह 'पागल कुत्तों का मसीहा' में मिलता है। समाज के शोषित, गरीब, पीडित जनता के ज़रिए ही साम्राज्यवादी शक्ति अपने पैर जमाती है। समाज के निम्नतम तबके के लोगों को अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए इस्तेमाल करके अन्त में उनको एकदम निरापद छोड़नेवाले आज की पूँजीवादी व्यवस्था की ओर जागरूक होने का संदेश इसमें मिलता है।

ये तीनों उपन्यास आकार में छोटे हैं, पर उनका कथ्य जो है उसमें समाज का पूरा चित्रण मिलता है। 'सूने चौखटे' में निम्न मध्यवर्गीय परिवार की घुटन रामू के परिवार के चित्रण द्वारा मिलती है। हेम दीदी और कमला के द्वारा स्त्री होने की विवशता दिखायी गयी है। अँधी नानी और लाला बालेदीन के द्वारा अकेलेपन की समस्या उभरती है। प्रयोगधर्मी शिल्प की दृष्टि से 'सोया हुआ जल' का विशिष्ट महत्व है। "संबद्ध कलाओं से गृहीत शिल्पों में सिनेरियो शिल्प आंशिक या पूर्ण रूप से नये कथाकारों में कुछ अधिक प्रिय हुआ है। सोया हुआ जल प्रारंभ से अंत तक इसी शैली में लिखा गया है। पर उसके चित्र-खंडों को साकार करके

देखने में हिन्दी पाठक अभी कहाँ तक समर्थ है यह कहना कठिन है। यह लघु उपन्यास कथा साहित्य में पाठक के बढ़ते हुए सहयोग का द्योतक है। उसका यह दायित्व सिनेरियो शिल्प में और अधिक बढ़ जाता है, जहाँ कि वह मुद्रित पृष्ठ को चलचित्र के रूप में देखने का यत्न करता है।"[1]

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना मानवीय संबंधों पर खूब जाँच-परखकर लिखनेवाले और पाठक को पात्र के मन की भीतरी तह तक पहूँचनेवाले लेखक हैं। वक्त के साथ व्यक्ति के चरित्र में कितने परिवर्तन आते जाते हैं, यह द्योतित करनेवाली हैं उनकी कहानियाँ।

समाज सें स्त्री की बदहालत के प्रति सर्वेश्वर को सहानुभूति है, उनकी कई कहानियाँ इसके दृष्टांत हैं जैसे बेबसी टूटे हुए पंख, डूबता हुआ चाँद, सोने के पूर्व, कमला मर गई, मौत की छाया आदि।

उनके भावुक मन की कहानियाँ हैं मृत्युपाश, आंधी की रात, प्रेम और मोह, प्रेम-विवाह, 'बरसात अब भी आती है' 'मौत की आँखें' 'क्षितिज के पार' 'रूप और ईश्वर' 'मीराबी' आदि ।

उनकी अन्य कहानियाँ सामाजिक यथार्थ से संपृक्त कहानियाँ हैं। "सर्वेश्वर, अज्ञेय काव्य परंपरा का निर्वाह करनेवाले प्रमुख रचनाकार है। कहानी लेखन के प्रथम विकास से ही सर्वेश्वर मनुष्य को केन्द्र में रखते हैं और उसके अस्तित्वहीन स्वरूप को नया-नया मुहावरा देने का

---

1. समकालीन हिन्दी साहित्य विविध परिदृश्य डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी द्वि. 2000 पृ. 110

प्रयत्न भी करते हैं। प्रारंभिक दौर में वे जिस मनुष्य को कहानी का विषय बनाते हैं उसे सामाजिक अन्तर्विरोधों के बीच रखकर अधूरा ही छोड़ देते हैं। लेकिन सन् 1970 के बाद की कहानियों में वे ऐसे मनुष्य की कल्पना करते हैं जो जीवन में भी है, शोषण का शिकार भी है और हारकर टूटकर संघर्षरत हैं।"[1]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि सामाजिक जीवन के गहरे सरोकार के कारण वर्तमान जीवन की विसंगतियों और उसकी पीड़ा को अपनी रचनाओं में उभारने का महत्वपूर्ण योगदान सर्वेश्वर की अपनी करामात है। विजयेदव नारायण साही ने जो कहा है, वह बिल्कुल ठीक है, "शिल्प की नवीनता के बावजूद सर्वेश्वर की कहानी में जो महत्वपूर्ण चीज़ है, वह अनुभूति की सघनता है। महज ऊपरी कलेवर का फेर बदल, चाहे वह मुहावरे का हो या संगठन का, कुछ दिनों चमत्कृत करके सबसे पहले नीरस और बासी हो जाता है। नया मुहावरा वहीं साहित्य और हमारी मनुष्यता में कुछ जोड़ता है जहाँ वह अपनी ओर कम आकर्षित करता हो, जिस अनुभूत संसार से वह उपजा है उसकी ओर अधिक। सर्वेश्वर की कहानियों की यह सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि है। ...साधारण पाठक के लिए सर्वेश्वर की कहानियों को किसी आलोचक की वकालत की अपेक्षा नहीं है। सर्वेश्वर की इन कहानियों की सघनता उसे खुद ही आकर्षित करेंगे।"[2]

---

1. सर्वेश्वर, मुक्तिबोध और अज्ञेय डॉ. कृपाशंकर पाण्डेय, प्र.सं. 1991 पृ.31
2. वहीं पृ. 14

कृष्णदत्त पालीवाल के इस कथन से सहमत नहीं हुआ जा सकता कि सर्वेश्वर में गहराई में पैठने की क्षमता नहीं है, "सर्वेश्वर, रघुवीर सहाय, श्रीकांत वर्मा, रवीन्द्र कालिया, धर्मवीर भारती, नरेश मेहता, लक्ष्मीनारायण लाल, आदि की कहानियाँ सामाजिक सरोकारों को लेकर कोई गहरी पहचान नहीं बनपाती।"[1]

डॉ. अशोक भाटिया सर्वेश्वर को सन् 1947-1970 ई. के प्रमुख कहानीकारों में एक मानते हैं। उनके कथन से सहमत हुआ जा सकता है कि सर्वेश्वर की कहानियों में संवेदनशीलता तथा काव्यमयता लक्षित होती है।"[2]

❖❖❖

---

1. नवें दशक की कथायात्रा सं. धर्मेन्द्र गुप्त पृ. 179
1. समकालीन हिन्दी कहानी का इतिहास डॉ. अशोक भाटिया, प्र.सं. 2003 - पृ. 36

चौथा अध्याय

निबन्धकार सर्वेश्वर और उनकी सामाजिकता

निबन्धकार सर्वेश्वर और उनकी सामाजिकता

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का निबन्ध संग्रह एक ऐसा गद्य संकलन है, जो निबंध, संस्मरण, यात्रा वृत्तांत, आत्मकथात्मक लेख आदि अनेक विधाओं का प्रतिनिधित्व करता है। उसके सात खंड हैं - पहले आत्मकथात्मक लेख हैं जिनमें उन्होंने जन्म, व्यक्तित्व क्रान्तिकारी जीवन आदि के बारे में बताया है, दूसरे खंड में साहित्य और संस्कृति से संबन्धित अपना दृष्टिकोण व्यक्त किया है, तीसरे में अनेक कविताओं, उपन्यासों, अनुवादों, नाटकों, जीवनियों, साहित्यिक पत्रिकाओं आदि की समीक्षा की है चौथे में अपने सहयोगी साहित्यकारों पर संस्मरण लिखे हैं, पाँचवें में अपना ललितकला सम्बन्धी ज्ञान और मन्तव्य प्रकट किए हैं, छठे में समाज जीवन के विविध संदर्भों के मार्मिक चित्रांकन द्वारा जीवन यथार्थ की अभिव्यक्ति की है और सातवे में रूस यात्रा-विवरण है। वस्तुतः यह पुस्तक जीवन के विभिन्न अनुभव-खंडों का संकलित रूप है। अपने इन निबन्धों में सर्वेश्वर ने साहित्यिक सांस्कृतिक प्रश्नों से जूझने की कोशिश की है जिसमें कवि कर्म की बारीकी और रचनाप्रक्रिया जैसे जटिल विषयों सहित विविध द्वन्द्वात्मक स्थितियों पर विचार विमर्श हुआ है।

सांस्कृतिक निबन्ध

अपने समाज और अपने देश की संस्कृति की खूब चिन्ता उन्हें थी। संस्कृति से सम्बधित स्पष्ट धारणाएँ उनको थीं। उनकी राय में सत्ता और संस्कृति के बीच हमेशा एक लड़ाई रही है।

उनके अनुसार सत्ता समाज की रक्षा के लिए है और संस्कृति समाज के पोषण के लिए। "यानी संस्कृति एक पौधा हो जिसे बचाने के लिए सत्ता बाड़ है। लेकिन जब बाड़ ही पौधे को खाने लगा जाए बजाय उसे घेरकर उसकी रक्षा करने के तो क्या हश्र होगा?"[1] सत्ता हमेशा जनता की सांस्कृतिक चेतना से भयभीत है। सत्ता हमेशा यही चाहती रही कि जनता की सांस्कृतिक एकता न हो। संस्कृति से सत्ता की लड़ाई कई स्तरों पर आज है। क्योंकि आज सत्ता पूरी तरह भ्रष्ट हो चुकी है और अपना विश्वास खो चुकी है। महंगायी, अशिक्षा, अंधविश्वास, जातिभेद, सांप्रदायिकता यह सब इस देश में अपने आप ही नहीं टिके हैं, इन्हें सत्ता ने टिका रखा है। क्योंकि ये सब व्यक्ति को असुरक्षित रखते हैं। सत्ता चाहती है कि इस देश का आम आदमी अपने को असुरक्षित समझता रहे और वह सुरक्षा के नाम पर अपना हित साधती रहे। इसी तरह बाड़ पौधे को खाती हैं।

संस्कृति का नाश करनेवाले हर एक कार्य का सर्वेश्वर विरोध करते हैं। उनकी राय में सत्ता विभिन्न माध्यमों द्वारा संस्कृति का नाश करने में तुले है। संस्कृति को भ्रष्ट करने की सबसे बडी मिसाल है बंबैया फिल्में। सर्वेश्वर के अनुसार इन फिल्मों का ज़हर पूरे देश के दिल और दिमाग में छोटे से लेकर बडे तक रोज़ फैलाया जा रहा है। 'फिल्मी संस्कृति पूरे देश को निकम्मा, जाहिल और नपुंसक बना रही है। क्या बताती है यह फिल्में कि आर्थिक असमानता, जातिभेद, सब दूर हो सकता

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 65

है अगर गरीब लडका धनी लड़की से या छोटी जाति की लड़की बडी जात के लड़के से प्रेम करने लगे।.... फिल्मे इस देश के लोगों को यह भी सिखा रही है कि हर समस्या के निदान के लिए ईश्वर के सामने हाथ जोड़ो, पूजा करो।"[1] सर्वेश्वर के अनुसार यदि सत्ता सामाजिक परिवर्तन चाहती है और वह चाहती हैं कि देश के आम आदमी की नियति बदले, असमानता, अन्याय, शोषण समाप्त हो तो उसे ऐसी फिल्मों के निर्माण को प्रश्रय नहीं देना चाहिए।

सत्ता ने सार्वजनिक माध्यमों के द्वारा गलत समाचार और अपने समर्थन में प्रचार का माध्यम बना रखा है। रेडियो और टेलिविज़न से देश की वर्तमान दुर्दशा का उतना समाचार नहीं मिल सकता जितना आखबारों से मिलता है और अखबार भी इस दुर्दशा का वास्तविक चित्र नहीं बताते हैं कि उनको भी सत्ता के विज्ञापनों से चलना होता है।

इसप्रकार जनसंपर्क माध्यमों को भी अपने वश में कर संस्कृति को भ्रष्ट करनेवाली सत्ता के विरुद्ध केवल संस्कृतकर्मीही आवाज़ उठाते हैं। तो उनके दमन का कार्य भी सत्ता ने ले लिया है। पुलिस के द्वारा सत्ता के विरुद्ध नाटक करनेवालों को दमित करती है। 'दमन के लिए प्रतिबंधों का सिलासिला भी सत्ता ने शुरु कर रखा है, ऐसे कानून बना रखे हैं जिससे नाटक बिना पुलिस की अनुमति के उससे लाइसेंस प्राप्त किए कोई नाटक मंडली नहीं दिखा पाती-यदि दिखाती है तो जिस नाटक हाल

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 68

में दिखाएगी उसका लाइसेंस जब्त किया जा सकता है और मंडली को हिरासत में लिया जा सकता है।"[1]

और एक तरीका सत्ता ने अपनाया है कि उन नाटककारों, कवियों, साहित्यकारों तथा कलाकारों को पुरस्कृत करें जो या तो उसके समर्थक हों या तटस्थ हो या देखने में विरोधी स्वर के हो या प्रभावहीन हो। इन्हें अकादेमिक, शास्त्रीय मूल्यों के तहत वह पुरस्कृत करती है ताकि वे अपनी आवाज़ न उठाएँ। इस तरफ सत्ता की बाड़ नयी संस्कृति के पनपते पौधे को खा रही है उसकी पत्तियों को फिल्मी कीडों से कुतरवाकर सार्वजनिक प्रसार माध्यमों की जडे कमज़ोर करनेवाला रासायनिक खाद डलवाकर पुलिस और पार्टीबंद गिरोहों द्वारा उसकी हर पनपती टहनी को कुतरवाकर और उसके आसपास बडी जंगली घास और घने बडे अंधेरे वृक्षों की कतार बढ़ा कर।

सर्वेश्वर कहते हैं कि संस्कृति बडी जीवट की चीज़ है । सत्ता ज्यों-ज्यों बर्बर और मदांध होती जाती है संस्कृति त्यों-त्यों अपने में प्रतिरोध क्षमता विकसित करती जाती है, त्यों-त्यों छोटे घेरे छोड़ लोकचेतना के व्यापक घेरे में फैल जाती है और अपनी ताकत की जडें लोक में और मज़बूत करती जाती है। सर्वेश्वर उस सत्ता को अपनी कटु आलोचना का विषय बनाते हैं जिसने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तक को पाबंद कर रखा है। और वह जनता से हमेशा वादा करती रहती है कि वह देश की संस्कृति का रक्षक है।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 69

हमारी संस्कृति का एक अभिन्न अंग बन गए हैं तरह-तरह के मेले। इन मेलों पर सर्वेश्वर अपने विचार प्रकट करते हैं कि वे देश के मेले होकर भी देश के नहीं रह गए हैं। 'मेले में अकेले, 'अंधों के गाँव में सुरमे का इश्तिहार' आदि निबंधों में वे मेलों के सामाजिक महत्व पर विचार करते हैं।

राजधानी में एशिया-72 का जो मेला था, उसे देखकर सर्वेश्वर को लगा कि यह उनका देश नहीं है। "जिस विशाल द्वार से मैं घुसा वह बंधुत्व का द्वार' था लेकिन जब उससे लौटा तब वह साफ-साफ पीडा के बंधुत्व में बदल चुका था। यह तो मेरा देश नहीं है । नहीं, यह भी मेरा देश है जैसे किसी काले आदमी की एक ऊँगली सफेद हो।"[1]

उस मेले को देखकर सर्वेश्वर को लगता है कि वहाँ सब सुन्दर हैं, पर उनका सौदर्य आत्मीय नहीं। यह मेला ही नहीं, कोई भी मेला आम आदमी के लिए नहीं है। मेलाओं की चकाचौंध केवल देश के अमीर लोगों के लिए ही है। मेल शब्द भी असमीचीन है, क्योंकि यहाँ कोई भी सम्मिलित नहीं हैं, सब अकेले -अकेले । "कुछ ऐसे ऐसे चेहरे दिखाई देते हैं जिन्हें मैं पहचानता हूँ लेकिन ऐसे मेलों में एक दूसरे को देखने का रिवाज़ नहीं है। पता नहीं कौन किसके साथ है।"[2]

हमारे देश में जो भी मेले हो रहे हैं, वह हमारे देश की जनता को बार-बार अमीर गरीब में बाँट रहे हैं। मेले का इन्द्रलोक गरीबों

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 49
2. वही पृ. 51

के लिए अन्य है। सर्वेश्वर मेले की शिकायत करते हैं कि वहाँ सब-कुछ अंग्रेज़ी में हो रहा था, रूसी मंडप से ही हिन्दी सुनाई देती थी। "मंडपों में चीज़ों की सजावट और रख रखाव ऐसा कि पहचानी हुई चीज़ बेपहचानी लगने लगी। साफ लगता है कि ये जिन आँखों के लिए हैं उनमें देश में पचास करोड लोगों की आँखें शामिल नहीं है। बनावट और शान-शौकत से मन घबराने लगता है।"[1]

भारत में जहाँ 70 प्रतिशते जनता अनपढ हैं, किताबों ते दूर, अक्षर तक नहीं पहचानती है, वहाँ लाखों रुपए खर्च करके विश्वपुस्तक मेला चलाने के पीछे की नौकरशाही की अंधता की कटु आलोचना करते हैं सर्वेश्वर 'अंधों के गाँव में सुरमे का इश्तिहार शीर्षक निबंध में। मेलाओं की निरर्थकता पर तीखा प्रहार इस लेख द्वारा सर्वेश्वर करते हैं।

सर्वेश्वर नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा आयोजित विश्वपुस्तक मेला पर अपना क्रोध बरसा रहे हैं। उनकी राय में यदि नेशनल बुक ट्रस्ट देश के मन को पुस्तकीय बनाना चाहता है तो उसे विश्व पुस्तक मेला नहीं, ग्राम पुस्तक ठेला बनाना है। केवल राजधानी की तमाशबीन जनता के लिए पिकनिक का सरोसामान इकट्टा करना नेशनल बुक ट्रस्ट केलिए सही दिशा नहीं है। पर नेशनल बुक ट्रस्ट इससे ज़्यादा नहीं सोचता, इन्हें सोचने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि पूछनेवाला कोई नहीं है। मेले पर 60 लाख रुपए खर्च किये गए, दिल्ली की शानदार इंपीरियल होटल में

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 52

चारों वक्त इसके आयोजन हुए। भारत जैसे देश में जहाँ आधे से ज़्यादा जनता भुखमरी है, वहाँ पैसे की इतनी बरबादी की अनुमति कैसे दी जाती है यह विचारणीय बात है। सर्वेश्वर की समझ में नहीं आता कि यदि वे आम जनता को इसमें शामिल कराना चाहते थे तो किसी सार्वजनिक स्थान में इसका आयोजन हो सकता था। लेकिन इंपीरियल होटल का बालरूम-समृद्ध यूरोप की गरीब भारत द्वारा नकल-यही वहाँ हुआ था।

भारत में हुए इस मेले में लेकिन, केवल अंग्रेज़ी ही सुनायी देती थी। भारत जो भाषाओं का केन्द्र है, उसकी क्षेत्रीय भाषाएँ सुनाई नहीं दीं। तो इन मेलों की सहूलियत क्या है? पारस्परिक सराहना का प्रतिष्ठान मात्र रह गया। क्षेत्रीय भाषाओं के सशक्त लेखकों को बुलाए नहीं गए। सर्वेश्वर को इस बात में दुःख है कि नेशनल बुक ट्रस्ट ने क्षेत्रीय भाषाओं के लेखकों और प्रकाशकों को महत्व ही नहीं दिया। उसका सारा जोर भारतीय अंग्रेज़ी लेखकों पर और भारतीय अंग्रेज़ी प्रकाशकों पर रहा। भारतीयता की पहचान से जो जूझ रहे है, जिनमें वह वास्तविक रूप में देखी जा सकती है, उन्हें ही दूर रखा गया।

सर्वेश्वर सरकार को यह सलाह देते हैं कि यदि वह सचमुच जनता को पुस्तक-प्रेमी बनाना चाहती है तो कुछ ठोस काम करने होंगे। "किताबों के लिए कागज़ सस्ता करना होगा। डाक दर पुस्तकों पर कम करनी होगी। गाँवों में स्कूलों और चिकित्सालयों के समान ही पुस्तालयों की स्थापना पर ज़ोर देना होगा और इतना ही नहीं, अच्छी, नयी प्रयोगशील साहित्यिक कृतियां छापने केलिए फिल्म वित्त निगाम' की तरह

'पुस्तक वित्त निगम' की स्थापना करनी होगी। अन्यथा सब अँधों के गाँव में सुरमें के विज्ञापन जैसा ही रह जाएगा।"[1]

सम्मेलनों की ऐसी अवस्था के कारण एक हद तक उसके नेता लोग ही हैं। अफ्रेशियाई लेखक सम्मेलन की भारत की अवस्था पर सर्वेश्वर कहते हैं कि भारत में इसके आयोजन करनेवाले लेखक साहित्य के मुख्य प्रवाह से कटे हुए लेखक हैं। उन्हें समकालीन साहित्य और साहित्यकार के बारे में कुछ पता नहीं। अपना अस्तित्व बनाए रखने केलिए ही वे इसका आयोजन करते हैं। उनकी दृष्टि राजनीतिक की हैं।

1970 के अफ्रेशियाई लेखक सम्मेलन के आयोजक थे मुल्कराज आनंद और सज्जाद ज़हीर। इस सम्मेलन में प्रमुख लेखक नहीं थे। केवल इसके आयोजकों ने अपनी तानाशाही दिखाई। 'उसमें भाग लिए 'लोगों का कहना था कि यह अफ्रेशियाई लेखक सम्मेलन नहीं 'सज्जादानंद' लेखक सम्मेलन है। अर्थात् उन लेखकों का सम्मेलन जिन्हें सज्जाद ज़हीर और मुल्कराज आनंद लेखक मानते हैं।"[2]

अफ्रेशियाई लेखक सम्मेलन की खूब हँसी उडाते हैं सर्वेश्वर कि उस सम्मेलन में लेखकों की समस्याओं पर लेखकों ने विचार नहीं किया। बल्कि वह शुभकामनाओं का सम्मेलन था। पर शुभकामनाएँ सभी देशों के शासनाध्यक्षों की थीं। एक भी लेखक ने सम्मेलन के लिए संदेश

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 57
2. वहीं पृ. 71

नहीं भेजा। आयोजकों को लेखकों के संदेश की ज़रूरत नहीं थी। संसार के प्रतिबद्ध लेखकों से भी उसने शुभकामनाएँ नहीं चाही। इस तरह लेखकों का सम्मेलन लेखकों को काटकर राजनीतिज्ञों से जुड़कर ही किया गया।"[1]

हिन्दी भाषा की अगुवाई का नाम लेकर अधिकार का बागडोर संभालनेवाले लोगों पर सर्वेश्वर अपने लेख द्वारा तीखा प्रहार करते हैं। अधिकार प्राप्ति के लिए हिन्दी को सड़क पर लाना होगा, इस विषय पर अलग-अलग लोग अलग-अलग प्रतिक्रिया करते हैं।

सर्वेश्वर के अनुसार कुछ ऐसे हिन्दी सेवी हैं जो उस नाम पर संस्थाएँ बना रहे हैं, पुरानी संस्थाओं की कुर्सियाँ ह थियाते रहे हैं और पद और पैसा दोनों कमाते रहे हैं। ऐसे लोगों को न हिन्दी साहित्य से कुछ लेना-देना रहा है न हिन्दी भाषा से। उनकी चिंता है पद और प्रतिष्ठा, संसद में जगह, सत्ता के छोटे-बडे मंत्रियों की चापलूसी, इसीलिए उनके द्वारा आयोजित गोष्ठियों और सम्मेलनों की शोभा राजपुरुष बढाते रहे हैं।

दूसरे राजपुरुष लोग हैं जो हिन्दी की शतरंज खेलते रहे हैं । सरकारी कामकाज हिन्दी में हो जाए, यही उनकी मांग है । पर सारा काम-काज अंग्रेज़ी में होता है। 'वहाँ हिन्दी कागज़ पर है, कागज़ की नाव है हिन्दी.... कहने को हिन्दी विभाग है, करोडों का बजट है पर काम

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 73

दिखावटी होता है। सत्ता के लिए हिन्दी हाथी का दांत खाने का और दिखाने का और !"[1]

सर्वेश्वर के अनुसार हिन्दी को सडक में लाने के लिए तथाकथित राजपुरुष और नौकरशही तैयार नहीं होंगे, तैयार होंगे केवल लेखक। लेखक का सडक में आने का मतलब है ऐसी भाषा लिखना जिसे सडक का आदमी समझ सके। साहित्य में आम आदमी की ज़ुबान लिखना और आम आदमी के सवालों को उठाना और आम आदमी के साथ उसके संघर्ष में साहित्य द्वारा शामिल होना।

इसप्रकार समाज की बडी-बडी समस्याओं पर विचार करनेवाले सर्वेश्वर के मन में एक बालक का भाव है जो उन्हें हमेशा बाल-साहित्य पर चिंता करने की प्रेरणा देता रहा। बच्चों के लिए खुद उन्होंने नाटक लिखे, गीत लिखे, कहानियाँ लिखीं। वे हमेशा श्रेष्ठ बाल साहित्य की माँग में रहे । उनके अनुसार हमारे देश में अच्छा यानी देशकाल से बंधा हुआ होकर भी, देशकाल से परे, जीवन के उत्स से जुडा हुआ बाल साहित्य तीन कारणों से नहीं लिखा जा सकता। 'पहला' हमारा कोई राष्ट्रीय चरित्र नहीं है, न उसकी कोई परिकल्पना ही है। दूसरा, हमारी कोई सामाजिक दृष्टि नहीं है। हम कैसा आदमी और कैसा समाज बनाना चाहते हैं, इसकी चिंता नहीं है। इन दोनों कारणों का मूल आधार इस देश की भ्रष्ट राजनीति है और मूल्यविहीन सत्ता संघर्ष। तीसरा और प्रमुख कारण आज

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 60

का बाल लेखक स्वयं है। अपनी संवेदना के क्षेत्र में वह वस्तुतः बच्चों से जुडा हुआ नहीं है, न अपनी युग चेतना से।"

साहित्य को समग्र दृष्टि से परखनेवाले सर्वेश्वर बालसाहित्य को भी समाज से जोड़ने में हिचकिचाते नहीं हैं। बालकों की दुनिया यथार्थ की दुनिया से कटकर सोचने और बनानेवाले लेखकों से सर्वेश्वर अलग हैं। सर्वेश्वर के अनुसार बच्चों में अपने समाज का पूरा चित्र पहूँचाना है। बच्चे में मुक्ति का अहसास जगाना यानी यह भाव कि वह अपने समाज को ही नहीं संपूर्ण मानव नियति को बदल सकता है, बाल साहित्य का पहला काम है। साधारणतया बच्चों के लिए लिखे जानेवाले साहित्य काल्पनिक कथाओं से भरा रहता है। किसी जालविद्या या तिलस्म से सभी मुसीबतों से बचना ही उन कथाओं का विषय है। वास्तव में नये समाज की परिकल्पना बच्चों को देने में लेखक गण असफल रहते हैं। उन लेखकों के बीच खडे होकर सर्वेश्वर कहते हैं कि बच्चों के लिए लिखे जानेवाले साहित्य में यथार्थ का चित्रण होना चाहिए।

गाँव के बच्चों के पास मौखिक बाल साहित्य की अपार संपदा है। परंपरा से चली आती नानी की कहानियाँ हैं। सर्वेश्वर के अनुसार इन कहानियों के द्वारा उनकी ऐसी मानसिकता बनाने का षड्यंत्र सदियों से चल रहा है जिससे कि वह हर तकलीफ, अन्याय, शोषण को अपने कर्मों का फल मानकर जी सके और पीड़ा के हर क्षण में अपनी नियति पर सिर

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 96

पटककर खामोश हो जाएँ। इस तरह के बालसाहित्य की जगह कुछ नया, अपनी ताकत पर खडे लड़ने की प्रेरणा देने योग्य नया कुछ बच्चों को देना है जिससे ग्रामीण बच्चों को लाभ हो। ये गाँव के बच्चे की बात है तो शहर में बच्चे बडों की ही फिल्मे देखते हैं, बड़ों की ही दुनिया में रहते है। सच तो यह है कि हमारा बच्चा बडों का बोझ अपने कंधों पर लादे डोलने के लिए अभिशप्त है।

इसलिए सर्वेश्वर लेखकों से निवेदन करते हैं कि वे बच्चों से प्रतिबद्ध बन, बच्चों से सीधा रिश्ता कायम करें, उनके साथ खेले। उन्हें कविताएँ सुनाएँ, कहानियाँ सुनाएँ और अपनी उन रचनाओं का परीक्षण कराएँ जिन्हें वे अपने घर पर बैठ श्रेष्ठ मानते हैं। सर्वेश्वर इन सब में नाटक खेलने पर अधिक जोर लगाते हैं। ऐसा नाटक जिसमें गान-नाचना, उछलकूद भी हो और जो इतना लचीला भी हो कि वह खुद उसमें जो चाहें जोड-घटा सकें। भाषा में इतनी ताकत होनी चाहिए कि बच्चा अपनी उम्र के साथ-साथ उन्हीं शब्दों और बडे अर्थ ग्रहण करता जाए जिनसे वह खेलता रहा है। यह बडी रचना की पहचान है।

साहित्यिक निबन्ध

"साहित्य की समृद्धी हमेशा उसकी समग्रता में होती है।"[1] यही सर्वेश्वर की मान्यता है। इस साहित्य की समृद्धि और समग्रता के लिए लेखक को संघर्ष करना पडेगा, लडाई करनी पडेगी। अपने अनुभूत

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 186

सत्य को उभारने केलिए उसे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की आवश्यकता है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता मिलती नहीं ली जाती है। वह माँगी नहीं जाती उसके लिए लडा जाता है। रचनाकार के जीवन में यही एक लड़ाई है जो सर्वाधिक मूल्यवान है, यह उसके अस्तित्व की लडाई है। यह नहीं है तो वह नहीं है और न ही उसकी रचना है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की लड़ाई करनी है तो साहस का होना अनिवार्य है। साहस साहस को जन्म देता है। इस तरह रचनाकार की निजी लडाई सामाजिक लडाई में बदल जाती है और सार्वदेशिक और सार्वकालिक हो जाती है। इसलिए उसकी रचना भी सार्वदेशिक और सार्वकालिक बन जाती है। इस तरह उसकी रचना में समग्रता आ जाती है। रचना की समग्रता के लिए जीवन को समग्र दृष्टि से देखना चाहिए। वास्तव में जीवन के प्रति समग्र दृष्टि ही जनदृष्टि है।

इसलिए सर्वेश्वर साहित्य को जनवादी कहने से 'जन' साहित्य कहना पसन्द करते हैं। उनकी राय है कि वादी होना एक आग्रह में बंधना है और दुराग्रही होना है। जनवाद कहने पर किसी न किसी राजनीतिक पार्टी की सहायता लेनी पडेगी। साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में यह राजनीतिक झगडा न छेडा जाए तो ज़्यादा अच्छा है। पर जनसाहित्य की बात ऐसी नहीं है, जन साहित्य कोई भी लिख सकता है जिसका जुडाव जन से हो। जो जनता की आशा, आकांक्षा, उसके संघर्ष और शोषण को पहचानता हो, उसे महसूस करता हो और उसके वैज्ञानिक आधार को समझता हो इसलिए सर्वेश्वर के मत में प्रगतिशील दृष्टि समग्र दृष्टि होती

है क्योंकि बिना समग्र दृष्टि के प्रगतिशीलता का कोई अर्थ नहीं होता। आज का हर सच्चा, ईमानदार, निर्भीक समर्थ लेखक यह समझता है और वह सार्थक रचना रचता है । सच्चे लेखक के लिए कोई वर्जित क्षेत्र नहीं होता। उसका वर्जित क्षेत्र वही है जो उसकी अनुभूति का अंक नहीं है। सर्वेश्वर की राय में जो जान बूझकर वर्जित क्षेत्र बताते हैं चाहे वे जनवादी हो या कलावादी, रचनात्मक स्तर पर अपनी कलम के साथ विश्वसघात करते हैं। किसी भी रचना को परखने के पीछे सर्वेश्वर का दृष्टिकोण सामाजिक है।

काव्य समीक्षक सर्वेश्वर

सर्वेश्वर के अनुसार "कविता संबंधों की खोज है उनके टकराव और सुख-दु:ख की अभिव्यक्ति है।"[1] पर यह सुख-दु:ख या संबंध स्त्री-पुरुष तक ही सीमित रहें यह ज़रूरी नहीं है। वे इस सीमा से आगे भी बढ़ते हैं और प्रकृति और ईश्वर के सौंदर्यमय और रहस्यमय लोक में भी पहूंचते हैं तथा आज के परिदृश्य में शोषक और शोषित से जुड़कर सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक टकराव को समझने के लिए जूझते भी हैं। सभी साहित्यिक विधाओं में यह होता है, पर कविता में यह सघन रूप में होता है। कविता अपना थोड़ा बहुत सौन्दर्य खोकर भी बदल रही है, और उसका यह बदलना आज ज़रूरी है। कविता लेखिकाओं की रचनाएँ पढ़कर सर्वेश्वर को शिकायत है कि वे इस बदलाव से अनजान है।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 79

उनका विषय अब भी स्त्री-पुरुष संबंध के दायरे में सीमित है। इसका एक हद तक कारण समाज ही है क्योंकि आज की स्त्री जीने के लिए अभिशप्त है। हमारे समाज में पुरुष स्त्री से अधिक स्वाधीन और खुले में है, इसलिए स्त्री से अधिक व्यापक जीवन पुरुष का होता है और वह उसकी रचना में प्रतिफलित होता है।

दुर्गावती सिंह के 'पातियों के बीच से', डॉ. सुधा श्रीवास्तवके 'देशों के घेरे में' और डॉ. कुसुम कुमार के 'तृष्णांकित' काव्यसंग्रहों की कविताएँ पढ़कर सर्वेश्वर को लगता है कि स्त्री को अपनी संवेदना को व्यापक करना होगा क्योंकि इन तीनों सेग्रहों की कविताएँ स्त्री-पुरुष के संबंधों पर ही रची-बूनी हुई हैं। इन तीन कविता संग्रहों की समीक्षा के दौरान कविता के लिए आवश्यक गुण सर्वेश्वर बताते हैं "कविता की पहला शर्त अपनी अनुभूतियों के साथ अपनी भाषा की सीमाओं को समझकर जुड़ना है। बाद में अपने अनुभव लोक, अपनी भाषा सामर्थ्य को बढ़ाने के लिए संवेदना के स्तर पर और बुनावट के स्तर पर अपने रचनात्मक यात्रापथ को विस्तार देते जाना है।"[1]

शिवकुटी लाल वर्मा का पहला कविता संग्रह हार नहीं मानूँगा' पढ़ने के बाद सर्वेश्वर को लगता है कि ये कविताएँ न ही जीवन और जगत से ऊपर उठती हैं और न ही उससे आपका संघर्ष का रिश्ता बनाती हैं। वह केवल बात करती हैं और बात भी ऐसी जिसमें आप कवि को

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 80

अपने से ही सवाल जवाब करते देखते हैं या कभी-कभी पाठक से। सर्वेश्वर उन्हें 'बेसुरी' कहते हैं। सर्वेश्वर के अनुसार 'अपने समय के बेसुरेपन को सुरों में साधना ही कला है। अच्छा कलाकार टूटी टीन को बजाकर भी वह सुर निकाल लेता है जो टिकटी ही, अच्छी लगती है। मग्न करती है, जिसे संभालकर रखने को जी चाहता है, जिससे ताकत मिलती है, भावक के यह जानते हुए भी कि यह आवाज़ टूटी टीन से निकल रही है। यही कलाकार औरों से अलग हो जाता है।"[1] इसलिए सर्वेश्वर की राय में कवि को अपनी अनुभूति की सघनता का संप्रेषण करना चाहिए -ऐसी तटस्थता का नहीं जिससे पाठक उसकी कविता से ही तटस्थ हो जाए।

सर्वेश्वर कभी भी पलायनवादी नहीं थे। संघर्षों का सामना कर उससे जूझने और उनपर विजयी होने की अदम्य इच्छा उनमें थी। इसीलिए उन्हें आस्था देनेवाली कविताएँ अच्छी लगती हैं। अर्चना वर्मा का प्रथम काव्यसंग्रह 'कुछ दूर तक' की वे इसलिए सराहना करते हैं कि "ये कविताएँ भय से मुक्त हैं, मुक्त करती हैं, और समझ के पैरों पर खडा करती हैं। सघनतम अनुभूति अंततः विचार पर ही जाकर टिकती हैं और यह विचार जीवन से पलायन का नहीं है उससे साहस के साथ टकराने का और जिंदा रहने का है, अपनी सामाजिक ज़िम्मेदारियों के साथ।"[2] कविता का काम छोटी सी छोटी दुनिया को बडा कर देना है। यह काम तो

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 82
2. वहीं पृ. 83

अर्चना वर्मा ने किया क्योंकि प्रेम, परिवार, मातृत्व-एक निजी दुनिया इन कविताओं में बडी हो गयी है, फैल गयी है, और उनमें उत्पन्न संघर्ष उन हदों को फैलकर छू लेता है जो आज की संपूर्ण जीवन पद्धति का हिस्सा है।

सर्वेश्वर हमेशा हाशिए पर खडे लोगों की तरफदारी रहे हैं और इसीलिए जो भी लेखक उन लोगों की वेदना को अपनाते हैं, उनकी तरफदारी भी सर्वेश्वर करते हैं। 'सुनो कारीगर' उदयप्रकाश का पहला कविता संग्रह है जिसे पढ़ना एक ऐसे सुख से गुज़रना है जो कविता के पाठक के लिए दिन पर दिन दुर्लभ होता जा रहा है। सर्वेश्वर कहते है कि "यह सुख केवल लहजे का ही सुख नहीं है जिसे कवि ने अपनाया है बल्कि उन चिंताओं का भी सुख है जिनसे कवि घिरा हुआ है जिससे वह पाठक का हमशक्ल बन जाता है।"[1] सादगी उदयप्रकाश की कविताओं की जान है जो हर उस आदमी से तुरंत आत्मीय रिश्ता कायम कर लेती है जो सामाजिक अन्याय और शोषण की मार उन लोगों के बीच बैठा सह रहा है जिनके पास आंदोलन और नारे नहीं हैं, खाली अकेले होने का अहसास है। सर्वेश्वर क़ी राय में जो रचना पाठक को कुछ करने की प्रेरणा देती है, वही सच्चे सामाजिक कर्म की रचना है। इस दृष्टि से उदयप्रकाश की कविताएँ उल्लेखनीय हैं।

सर्वेश्वर के अनुसार कवि को अपनी प्रकृति के अनुरूप कविता की बुनावट करनी चाहिए । अपने सहज अनुभव को अमूर्त करने

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 83

के आग्रह के कारण कविता की सहजता नष्ट होती है। इसलिए रवीन्द्र भारती का तीसरा काव्य संग्रह 'जड़ों की आखिरी ज़कड़ तक' को सर्वेश्वर नकारते हैं कि अपनी सही ग्रामीण संवेदना और व्यवस्था विरोध के सच्चे तेवर के बावजूद उनकी कविता में वह पैनापन उभर कर नहीं आता जो ऐसे कवि का अभीष्ट होना चाहिए।

कवि के रूप में अपनी व्यापक समग्र दृष्टि का परिचय देनेवाले चन्द्रकांत देवताले का तीसरा काव्य संग्रह 'लकडबग्घा हंस रहा है' पढकर सर्वेश्वर उनकी प्रशंसा करते हैं कि वे ईमानदार चिंताओं के कवि है। 'उनकी कविता की दुनिया न तो छोटी है न एकांगी। कवि की दृष्टि समग्रता की दृष्टि है। उसकी संवेदना का संसार भीतरी और बाहरी दो दुनियाओं में बंटा हुआ नहीं है बल्कि दोनों दुनियाओं को एक करता है। वस्तुतः दोनो दुनियाएँ एक हैं भी।"[1]

पश्चिमी कविता के अनुकरण में एक छद्म मुहावरेबाजी या राजनीतिक आग्रहों से नारेबाजी के रूप में लिखी जानेवाली कविताओं की सर्वेश्वर कटु आलोचना करते हैं। इन्हीं दुराग्रहों से मुक्त कविताएँ आज विरले हैं, जितेंद्र कुमार का पहला कविता संग्रह 'आइने में चेहरा' इसका उदाहरण है क्योंकि उनकी कविताएँ इन दोनों दुराग्रहों से मुक्त खुली हवा में खड़ा है। उनकी कविताओं की खामोश सादगी अच्छी लगती है। कविताओं में कोई बडबोलापन नहीं है। गहरी अनुभूति की खामोशी है जो

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 87

इतनी तरल नहीं है कि वह जाए, न ही इतनी ठोस कि भारी होकर जम जाए।

'उज्ज्वल नील रस' केशव कालीधर की कविताओं का संग्रह है जिसकी समीक्षा के दौरान सर्वेश्वर पूछते हैं कि समसामयिक कविता में जाने क्यों मान लिया गया है कि लोकोत्तर अनुभूति या ईश्वरीय भक्ति अब कविता का विषय नहीं हो सकती? केशव कालीधर का यह संग्रह साहस के साथ इस मान्यता को चुनौती देता है। सर्वेश्वर को इसलिए अच्छा लगता है कि वह ईश्वरीय शक्ति के प्रति एक भक्त का एकांत आत्म-निवेदन नहीं है बल्कि ईश्वरीय शक्ति को अपना अंश महसूस करते हुए उसे और अधिक जगाने तथा उसे लेकर आज की ज़िन्दगी के युद्ध में शरीक होने की कविता है। यह कविता ज़िन्दगी से भागना नहीं सिखाती, बल्कि उसके पाट चौडी करती है। इस तरह समसामयिक कविता में तनाव की सृष्टि की आवश्यकता को इन कविताओं का लोक अस्वीकार करता है।

संसार के अन्याय को चित्रित कर, उसे पराजित करनेवाली, आस्था दिलानेवाली रचनाएँ सर्वेश्वर को भाती हैं। नयी कविता के प्रथम समीक्षक लक्ष्मीकांत वर्मा के काव्यसंग्रह 'तीसरा पक्ष' की सर्वेश्वर इसलिए प्रशंसा करते हैं कि उसमें संसार में अनेक स्तरों पर हो रहे अन्याय की चिंता फैली हुई है। पूरे भावावेग के साथ कवि ने उस चिंता को व्यक्त किया भी है । उन कविताओं में सर्वेश्वर यह गुण भी पाते हैं कि उनमें इन

अन्यायों के विरुद्ध लड़ने और परास्त करने की आस्था भी दिखाई देती है । कथ्य के स्तर पर ये कविताएँ स्वस्थ, दृष्टि संपन्न, सही समर्थ मानव की है, वैचारिक शक्ति प्रतिभा उकेरनेवाली कविताएँ हैं।

'पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ" अज्ञेय का काव्य संग्रह है जिनकी कविताएँ 1970-73 के बीच लिखी गयी है। अज्ञेय की कविताओं की सारी विशेषताएँ इसमें हैं, फिर भी सर्वेश्वर की कसौटी के अनुसार वे ठीक नहीं है। क्योंकि 1970-73 के बीच देश में बहुत शोर उमड़ा है, सूखा, अकाल, भुखमरी बढी है, सामाजिक अन्याय और फैला है, असंतोष और संघर्ष तीव्र हुआ है लेकिन इन सबकी चपेट से कवि अपनी संवेदना को बचा ले गया है। सर्वेश्वर कहते हैं कि "शुरु से ही अज्ञेय इन सबको अपनी कविता का विषय नहीं मानते रहे हैं, सो वह आज भी नहीं मानते हैं। उनकी खोज सभ्यता और मानव मन की बहुत सूक्ष्म और गहरी परतों की खोज है। लेकिन साहित्य में पाठक की खोज बदली है। यह संग्रह साहित्य में वदलाव की खोज में भटकते पाठक केलिए नहीं है। 'अज्ञेय' अब अपनी काव्य साधना के ऐसे शिखर पर पहूंच गए हैं जहाँ उनसे बदलाव की आशा करना व्यर्थ है बल्कि उनके प्रति अन्याय भी है।"[1] सर्वेश्वर के अनुसार अज्ञेय की रचनात्मक चिंता उन्हें बाहर की यात्रा से काटकर अंतर की यात्रा से जोड़ती है जो उनका गुण भी है दुर्गुण भी।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 155

उपन्यास समीक्षक सर्वेश्वर

उपन्यासों को परखने में भी सर्वेश्वर का सामाजिक दृष्टिकोण काम करता है। उनकी समीक्षा का आधार मानवीय संवेदना है। मुद्राराक्षस का 'हम सब मंसाराम' एक छोटा उपन्यास है जिसकी सर्वेश्वर की राय में उतनी चर्चा नहीं हुई जितनी होनी चाहिए थी। इस उपन्यास को सराहते हुए सर्वेश्वर कहते हैं कि लेखक ने बहुत छोटी परिधि में आज के चुनावकी राजनीति का व्यापक कुरुप चेहरा बिना किसी लगा लपेट और भावुकता के साथ खींच कर रख दिया है। आज जबकि सारे राजनीतिक उपन्यास केवल मानवीय संवेदना को आधार बनाकर लिखा गया है - एक अतिसाधारण गाँव में एक अति साधारण हरिजन के भीतर होनेवाले परि वर्तन को यह उपन्यास टटोलता है।

उनके अपने इसी दृष्टिकोण के कारण ब्रजेन्द्र शाह कृत आँचलिक उपन्यास शैलसुता की प्रशंसा करते हैं। इसने भारत के कूर्मांचल अंचल को आधार बनाया है। "यह उपन्यास इस अंचल के चंपावत प्रदेश में बने एकहाथिए के नौले की लोककथा को आधार बनाकर इस अंचल की संस्कृति का काफी विशद चित्रण करता है। कूर्मांचल की विराट संस्कृति   उसके मेले, उसके नृत्य-घाटियों में गूँजते उसके प्रेम विरह के गीत जिस ईसान से उपजे हैं उपन्यास लेखक ब्रजेन्द्र शाह इसे भूले नहीं हैं। बल्कि उन्होंने इस इंसान के नींव की एक-एक ईंट परखी है और उसकी आशा, आकांक्षा, उसके दैन्य, शोषण और संघर्ष

का बडी मार्मिकता के साथ चित्रण किया है। यह चित्रण दृष्टिहीन चित्रण नहीं है, इसके पीछे एक विचार भी है अन्याय शोषण के विरुद्ध एकजुट होकर संघर्ष का विचार तथा समाज को बदलने का संकल्प।"[1]

सर्वेश्वर के अनुसार साहित्य में गहराई का अर्थ है बुनियाद में जाना। गहराई में न जाने पर अच्छा उपन्यास भी उतना संवदित होने का एहसास नहीं देता। माणी मधुकर का 'पत्तों की बिरादरी' पर चर्चा करते हुए कहते हैं कि इस उपन्यास में विभाजन, शोषण और संघर्ष को भी छूने की कोशिश की गयी है और सरलीकृत ढंग से ही सही इसमें राजनीतिक चेतना पिरोने की कोशिश है। पर यह रोचक उपन्यास गहराई में नहीं गया है। इस उपन्यास की कमी यह है कि इसमें सेक्स का बहुत ही भोंडा चित्रण हुआ है। इससे क्रांति की जो बात लेखक ने उकेरना चाहा वह दब गयी।

सर्वेश्वर ऐसे उपन्यासों की मांग में है जो सरस पठनीय हो। श्रीलाल शुक्ल का 'मकान' उनके अनुसार आप एक सांस में पूरा उपन्यास पढ़ ले पाएँगे और बिना खत्म किए छोड़ नही सकेंगे चाहे आप अतिसाधारण पाठक हो, साधारण पाठक हो या अतिविशिष्ट पाठक हो।

देश के पिछडे इलाकों के विभिन्न वर्गों का समसामयिक जीवन के कटु यथार्थ का, स्वार्थ पर आधारित शहर और गाँव के टूटते रिश्तों का, विभिन्न स्तरों पर टूटती-बिखरती युवा पीढ़ी का विशद चित्रण प्रस्तुत

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 86

करने में रामदरश मिश्र का उपन्यास 'अपने लोग' सफल हुआ है । सर्वेश्वर के अनुसार इस तरह का विशद चित्रण हिन्दी के अन्य किसी समसामयिक उपन्यास में नहीं है। "यथार्थ चित्रण करना जोखिम का काम है । वहां लेखक कैमरे की तरह होता है। अच्छी बूरी जो चीज़ सामने है उसे उसी रूप में पेश करनी होती है। जितनी ही वह अपनी तटस्थता (वैचारिक और भावात्मक) प्रमाणित कर ले जाता है। उतना ही सफल होता है। डॉ. रामधरश मिश्र इस उपन्यास में अपनी यह तटस्थता प्रमाणित कर सके हैं।"[1]

सर्वेश्वर नैतिक मूल्यों के प्रशंसक थे, उनकी राय में नैतिक मूल्यों को प्रस्फुटित करना ही साहित्य का लक्ष्य है। इसीलिए मॉरिशस की धरती से उपजे दो उपन्यासों को वे उल्लेखनीय मानते हैं। वे कहते हैं कि दोनों उपन्यासों में प्रेम उफनता है स्त्री और पुरुष के संबंधों में भी तथा खेत और किसान के रिश्ते में भी। प्रेम और करुणा की मानवीय भावना को प्रतिष्ठित करने में लेखक ने परंपरागत भावुकता का सहारा लिया है। त्याग और उत्सर्ग जैसे मूल्यों के प्रति वह संवेदना जगाता है। स्त्री-पुरुष के संबंधों में नैतिकता का आग्रह उन्हें महत्वपूर्ण बनाता है।

समाज की प्रमुख समस्याओं का चित्रण करने वाले उपन्यासों को सराहने में वे कभी चूकते नहीं अनमेल विवाह की समस्या को केन्द्र में रखकर लिखा गया नागार्जुन का 'पारो' अतः उन्हें पसन्द है उनके

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 116

अनुसार उपन्यास का कथानक असाधारण नहीं है, बल्कि अत्यंत साधारण है। (इसलिए असाधारण है।) और मैथिल समाज में, अनमेल विवाह सामाजिक प्रतिष्ठा की झूठी दमक पर आघात करता है। सर्वेश्वर कहते हैं कि हिन्दी के नागर लेखकों के लिए इसे पढ़ना ज़रूरी है जो यह मानकर चलते हैं कि समाज आगे बढ़ गया है, अब ये समस्याएँ नहीं रहीं, जिस समाज को वह देखते हैं वह कई प्रतिशत है। सारा देश यही है, इसी सडाँध में जिसकी ओर से आंख फेरना अपनी ओर से आंख फेरना है।

औद्योगिक समाज के बुनियादी रिश्तों की सही पहचान के रूप में योगेश कुमार का उपन्यास 'टूटते-बिखरते लोग' की प्रशंसा करते हैं। इस उपन्यास में बिना किसी कृत्रिम लपेट के बहुत सहज ढंग से अमेरिका के औद्योगिक समाज का और उससे अलग-अलग तरह से जूझनेवाले चरित्रों का चित्रण है तथा विज्ञापन की बडी-बडी फर्मों द्वारा हर चीज़ के लिए एक उपभोक्ता समाज बनाने और मिटाने के षड्यंत्र का खुल्लमखुल्ला वर्णन भी है। इस जटिल स्थिति को बहुत सहज, रोचक और प्रामणिक ढंग से प्रस्तुत करने की लेखक योगेश कुमार की कला का स्तुतिगान सर्वेश्वर करते हैं।

इतिहास और पुराणों को नयी व्याख्या देना याने समाज के नये संदर्भों से जोड़ना सर्वेश्वर को अच्छा लगता है। इसलिए आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी का 'पुनर्नवा' उन्हें पसन्द है, 'पुनर्नवा' चौथी शताब्दी की घटनाओं पर आधारित ऐतिहासिक उपन्यास है, लेकिन इसका उद्देश्य मानव चरित्रों की गहराई में जाना है, इतिहास माध्यम भर है। अश्वघोष रचित 'महाभिषण'

बुद्धचरित पर आधारित उपन्यास है। लेखक ने यह उपन्यास लिखते समय समसामयिकता को नहीं विसराया है बल्कि उस पुरातन वाणी को नये संदर्भों से बडी विश्वसनीयता के साथ जोडा है। 'वह बुद्ध के मुख से कहलाता है 'मुझे ग्रंथों से घोर निराशा हुई आनंद। ज्ञान दुर्दम वृत्ति से सूत्रों का गायन नहीं है, सूक्तों का गायन नहीं है, वह अनुभव से आता है। पर हमारा प्राचीन ज्ञान। वह अनुभव का निषेध करता है....' उपन्यासकार पुरातन कलेवर अपनाकर भी आधुनिक सामाजिक दृष्टि के कारण उबर गया है।"[1]

आज़ादी के बाद के एक मध्यवर्गीय परिवार की अत्यंत मार्मिक तस्वीर पेश करनेवाला 'कंदील और कुहासे' सर्वेश्वर के अनुसार महत्वपूर्ण उपन्यास है। यह उपन्यास गिरिधर गोपाल ने लिखा है। इसलिए सर्वेश्वर को अच्छा लगा कि इसमें उस परिवार के बहाने राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था पर भी बहुत तीखी और गहरी चोट की गयी है।

इसी सामाजिक दृष्टिकोण के आधार पर डॉ. शिवप्रसाद सिंह का उपन्यास 'अलग-अलग वैतरणी' सर्वेश्वर को भाता है क्योंकि यह एक भारतीय गाँव की कहानी है। पूरा उपन्यास गाँव की सही तस्वीर प्रस्तुत करता है और पूरी तस्वीर भी।

शहर में रहनेवाले निम्नवर्ग की ज़िन्दगी पर लिखे गये 'कुछ ज़िन्दगियाँ' (ओमप्रकाश दीपक) की चर्चा करते हुए सर्वेश्वर कहते है कि

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 161

इस विषय पर संभवतः कोई दूसरा उपन्यास नहीं है। किसी अच्छे लेखक ने तो इस ज़िन्दगी पर कलम ही नहीं उठायी है। ग्रामीण जीवन और निम्न मध्यवर्ग का चित्रण सतही ही सही, हिन्दी उपन्यासों में मिल जाएगा पर शहर के निम्न वर्ग का, जो हर ओर से टूटा हुआ है, उसका चित्रण नहीं। ओमप्रकाश दीपक को इस वर्ग की ज़िन्दगी का घनिष्ठ परिचय है, इसिलिए यथार्थ चित्रण संभव हुआ। प्रस्तुत उपन्यास निम्न वर्ग के आर्थिक संकट का ही सवाल नहीं उठाता, बल्कि इस वर्ग के सामने जो भयावह सामाजिक असुरक्षा है उसका भी नग्न चित्रण करता है। 'देश की न्याय-व्यवस्था, पुलिस की अकर्मण्यता और तानाशाही, जेल-जीवन की यंत्रणा-सब जैसे इस वर्ग के लिए दूसरा ही रूप रखकर खडी है और उसकी ज़िन्दगी को अर्थहीन बना रही हैं उसे चोर, उचक्का, जुआरी, गुंजा, भिखमंगा बना बेमतलब जीने और मरने के लिए छोड़ देती हैं।"[1] सर्वेश्वर की कहानियों को परखने की कसौटी भी सामाजिकता है। इसीलिए मध्ययुगीन सामंती मुल्यों पर चोट करनेवाले, सत्ता-व्यवस्था और उसके चाटूकारों को नंगा करनेवाले, स्त्री और पुरुष के संबंधों की असमानता पर नश्तर लगानेवाले, विचदान देथा के कहानी संग्रह 'बातां री पुलवाडी' की सराहना सर्वेश्वर करते हैं।

सर्वेश्वर के अनुसार कुछ कहानी संग्रह ऐसे होते हैं जो किसी नाजुक दौर में नये मोड़ के सूचक होते हैं और यकीन दिलाते हैं कि

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 224

सूखती उथली नदी का बाट आगे चौड़ा होगा तथा धारा निर्मल और गहरी होगी। पंकज बिष्ठ और असगर वजाहत के सम्मिलित कहानी संग्रह 'अंधेरे से' बिना किसी लेबिल का है। 'पंकज बिष्ट के संग्रह में छः कहानियाँ हैं क्यों, 'अर्थ' 'कीचड' 'हिमदंश' 'पंद्रह जमा पच्चीस', और खोखल'। ये कहानियाँ गाँव और शहर में रहने के कारण पारिवारिक संबंधों के ऊब और टूटन, खोखले रिश्तों और संवेदना, आर्थिक दबाव की विवशता, निम्न मध्यम वर्ग की परत दर परत यातना को दर्शाती है ।

असगर वजाहत की आठ कहानियाँ इस संकलन में है 'केक' 'मुर्दाबाद' 'सारी तालिमात', 'उनका डर', कुत्ते, 'शेर' डंडा, जा-।। "केक' इस संग्रह की ही नहीं हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियों में गिनी जाएगी। इस कहानी की सधी हुई बुनावट गेराल्ड कर्श की याद दिलाती है। सामाजिक यथार्थ और मानव स्वभाव का परस्पर गुंफन, बिना कहे उस छद्म को उसमें निहित यातना को उभारना जो समसामयिक संरचना की देन है, इस कहानी की विशेषता है।"[1]

आज के उच्च शिक्षा प्राप्त युवावर्ग की, पारंपरिक रिश्तों से कटी मनः स्थिति का चित्रण करनेवाली कहानियों के रूप में सर्वेश्वर अचला शर्मा के 'बर्दाश्त बाहर' की दस कहानियों को देखते हैं । सर्वेश्वर की राय में ये कहानियाँ हिन्दी की तथाकथित साहसी कहानियों की तरह विद्रोह की मन स्थिति नहीं बनाती बल्कि विद्रोह के बाद की मनःस्थिति

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 120

की पड़ताल करती है और उस पड़ताल में पारिवारिक रिश्तों की रूढ़ियों टूटने पर आत्मगलानि का अंधेरा, गीला क्षेत्र नहीं दिखातीं बल्कि व्यक्ति के निजत्व पर आस्था जगाती हैं। पराधीन बनाकर रखनेवाले समाज तंत्र और पुरुष स्वभाव तंत्र में नारी मुक्ति की सफल छटपटाहट तक ये कहानियाँ ले जाती हैं इसलिए सारी सीमाओं के बावजूद इनका स्वाद सबसे अलग और तीखा है।

आज की ज़िन्दगी, अनेक स्तरों पर उसके संघर्ष, उन संघर्षों से जूझते हुए मध्यवर्ग के आदमी की विवशताएँ, सीधे-सादे बेबाक ढंग से पेश करने के कारण रामनारायण शुक्ल का कहानी संग्रह 'सहारा और अन्य कहानियाँ' की प्रशंसा सर्वेश्वर करते हैं।

'मिला तेज़ से तेज़' सुधा चौहान द्वारा लिखित अपनी माता सुभद्राकुमारी चौहान और अपने पिता लक्ष्मण सिंह की सम्मिलित जीवनी है जिसके बारे में सर्वेश्वर की राय है कि माता-पिता की यह जीवनी हिन्दी में तो निश्चय ही अपने ढंग की अनूठी जीवनी है और जिस सादगी और सहजता से लिखी गई है वह विरल है। यह जीवनी देश के पिछले साठ-सत्तर वर्षों की सामाजिक, पारिवारिक, राजनीतिक परिवर्तनों की परते ही नहीं उघारती बल्कि बदलती हुई मानसिकता या कहिए कि हर क्षेत्र में ढलान पर लुढ़कती हुई मानसिकता का साक्षात कराती है और एक कचोट से भर देती है तथा समसामयिक सन्दर्भों में बहुत कुछ सोचने को बाध्य करती है। जीवनी को परखने का आधार भी सर्वेश्वर के लिए समाज ही है।

सर्वेश्वर ने साहित्यिक पत्रिकाओं को भी अपनी समीक्षा का विषय बनाया है। किसी न किसी राजनीतिक पार्टी का दुम हिलानेवाली पत्रिकाएँ उन्हें पसन्द नहीं है। अपनी अलग पहचान रखनेवाली पत्रिकाओं की सराहना वे करते हैं। इसलिए मुद्वाराक्षस द्वारा संपादित पत्रिका 'बेहतर' उन्हें अच्छी लगती है, 'बेहतर' की बेहतरी इस बात में है कि न तो वह तथाकथित शुद्ध कलावाद का ढिंढोरा पीटनेवाली पत्रिका है, न ही राजनीतिक मतवाद का चालू मुहावरा पकडकर चलनेवाली पत्रिका। पत्रिका पढ़कर समसामयिक समाज का कटु यथार्थ उनमें प्रकाशित रचनाओं के माध्यम से सामने आता है। और ऐसे खोखले ढोंगी व्यक्तित्व भी जिनके कारण समाज, साहित्य और पत्रकारिता की यह दुर्गति है । इसी दृष्टि से वे नेमीचन्द्र जैन द्वारा संपादित नटरंग' अज्ञेय द्वारा संपादित प्रतीक, रूसी पत्रिका 'नोवी मीर' आदि को अन्य पत्रिकाओं से भिन्न और उल्लेखनीय मानते हैं।

स्मृतिचित्र

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना अपने स्मृति चित्रों द्वारा हिन्दी साहित्य के प्रतिभावान लेखकों के निधन पर दो बून्द आँसु गिराते हैं। उनके ये लेख पढ़ने पर मालूम हो जाता है कि वे भाषा विशेषज्ञ थे। क्योंकि हर एक लेखक के प्रति अपने आदर और स्नेह प्रकट करने के लिए अलग-अलग शब्द-विशेष का प्रयोग वे करते हैं। अन्य साहित्यकारों के प्रति सर्वेश्वर कितना भावुक थे, इसका सबूत है उनके स्मरणात्मक लेख।

'मानवीय करुणा की दिव्य चमक' के रूप में सर्वेश्वर फादर बुल्के की याद करते हैं। "फादर को याद करना एक उदास शांत संगीत को सुनने जैसा है। उसको देखना करुणा के निर्मल जल में स्नान करने जैसा था और उनसे बात करना कर्म के संकल्प से भरना था।"[1] सर्वेश्वर का उनके साथ पैंतीस साल की मित्रता रही। फादर बुल्के रिश्तों को बनानेवाले थे तोड़नेवाले नहीं थे। बुल्के के बारे में सर्वेश्वर बताते हैं कि उनकी चिंता हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में देखने की चिंता थी। हर मंच से इसकी तकलीफ वयान करते-इसके लिए अकाट्य तर्क देते। बस इसी एक सवाल पर उन्हें झुँझलाते देखा है और हिन्दीवालों द्वारा ही हिन्दी की उपेक्षा पर दुख करते उन्हें पाया है। घर-परिवार के बारे में निजी दुख-तकलीफ के बारे में पूछना उनका स्वभाव था और बडे से बडे दुख में उनके मुख से सांत्वना के जादू भरे दो शब्द सुनना एक ऐसी रोशनी से भर देता था जो किसी गहरी तपस्या से जनमती है। 'हर मौत दिखाती है जीवन को नयी राह' अपनी पत्नी और पुत्र की मृत्यु के बाद फा. बुल्के ने जिस प्रकार सांत्वना दी थी, आज भी सर्वेश्वर की याद में ताजी है । फादर के शब्दों की शीतलता उन्हें हमेशा शांति देती थी। 18 अगस्त 1982 को उनका निधन हो गया। उस पवित्र ज्योति की याद में श्रद्धानत होते हुए सर्वेश्वर अपना लेख समाप्त करते हैं।

कवि का दर्द कोई नहीं जानता। कोई नहीं जान सकता। कवि तमाम उम्र अपने दर्द से उलझने, अपने दर्द को पहचानने और शब्द देने

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 320

की कोशिश में ही लगा दैते है और 'फिराक' जो हमारे समय का दर्द का सबसे बडा शायर था, जिसे हमने देखा है, जो अकेला जिया है और खुली धूप और हरी घास पर अकेला गुज़र गया उसका जवाब भी न आज है, न आगे आनेवाले ज़माने के पास होगा जिसके सामने उसकी हसीन शायरी डबडबाई आँख लिए लेकिन मुस्कराती हुई उसकी ताकत बनी खडी रहेगी।

"गरज कि काट दिए ज़िन्दगी के दिन ऐ दोस्त
वो तेरी याद में हों या तुझे भुलाने में ।"[1]

रघुवीर सहाय 'फिराक' के निधन पर सर्वेश्वर की व्यथाभरी बातें हैं ये। सर्वेश्वर कहते है कि उन जैसे कवियों के लिए 'फिराक' एक खजाना थे जो कभी खाली नहीं होता था। गालियाँ देते वक्त भी नये बिंबों और प्रतीकों में ढलकर देते थे। सर्वेश्वर कहते है कि फिराक नहीं रहे, लेकिन उनकी शायरी की रोशनी बनी हुई है और बनी रहेगी।

"मेरा बचपन और जोश' में सर्वेश्वरदयाल सक्सेना उसके स्कूल के साथी जोश की याद करते हैं । सर्वेश्वर के कवि व्यक्तित्व पर पहले उसका ही प्रभाव था ।

'मलयज' के निधन पर उनकी याद करते हुए सर्वेश्वर लिखते है कि मलयज ने कम लिखा है, लेकिन जितना लिखा है वह समसामयिक समीक्षा की दुनिया में अग्रिम पंक्ति में है और अपने समय की कृतियों की

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 324

पहचान बनाता अग्रिम पंक्ति में रहेगा। सर्वेश्वर की राय में वे समसामयिक हिन्दी कविता के सबसे बडे पारखी थे और एकमात्र ऐसे समीक्षक-आलोचक थे जिन पर भरोसा किया जा सकता था। उनका निधन इस अर्थ में एक अपूरणीय क्षति है।

अपने गहरे मित्र विजयदेव नारायण साही की मृत्यु पर कुछ कहने के लिए सर्वेश्वर के पास शब्द नहीं हैं। उनकी मृत्यु जैसे सर्वेश्वर को अपंग कर दिया है। विजयदेवनारायण साही की मृत्यु से सर्वेश्वर को लगा कि उनकी भी मौत हो गयी है। उनके शरीर और आत्मा का एक हिस्सा निर्जीव हो गया है। मृत्यु के चंगुल में फँसनेवाले नहीं जानते कि जो रह जाते हैं, उनकी क्या हालत है। उन्हें ऐसे एक घने जंगल के अंधेरे में छोड़ दिया गया हो। प्रदीप्यमान रास्तों से चलते-चलते अचानक अंधेरे में धकेल दिया गया हो। "चलते-चलते अचानक ओझल हो जाना दूसरों के सामने बिछी रेत को भी पत्थरों में बदल देता है। अब इस रास्ते को बिसूरने से क्या होगा? और यह कहने से भी क्या होगा कि अपनी निजी से निजी चीज़ भी वह नहीं रह गयी जो थी।"[1]

सर्वेश्वर साही जी की मृत्यु पर कुछ नहीं कहते, बल्कि यह कहते हैं कि साही जी को दिल के दौरे को चुनौती नहीं देनी चाहिए थी। उनके लिए साही का पर्याय चुनौती था। 'चुनौती ही उसकी शादी थी चुनौती ही उसकी कविता, चुनौती ही उसकी आलोचना, चुनौती ही

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 331

उसका पांडित्य और चुनौती ही उसका मज़दूर संगठन बनाना और उसे छोड़कर उसके नये नेता खडे कर देना इन चुनौतियों के बारे में मैं खूब जानता हूँ और यह भी जानता हूँ कि हर चुनौती में वह जीतकर आता था। इसलिए हम उसे विजयी कहते थे।"[2] सर्वेश्वर का उनसे अठतीस सालों का परिचय है। इसलिए सर्वेश्वर बार-बार कहते हैं कि दिल के दौरे को उसे चुनौती नहीं देनी चाहिए थी, ज़्यादती है। क्योंकि उस चुनौती में वह हार गए। यह हर कितनी महंगी पडी, प्रियजनों के लिए ही नहीं, हिन्दी साहित्य के लिए।

सर्वेश्वर के अनुसार साही जी प्रखर प्रतिभावान ही नहीं थे। गहरे अध्येता और मौलिक चिंतक भी थे। वे उन लेखकों में नहीं थे जिनका ज्ञान सिर्फ साहित्य तक ही सीमित रहता है और जिनके सरोकारों की दुनिया साहित्य से आगे नहीं जाती। उनकी दृष्टि इतिहास पर आधारित गहरी दृष्टि थी। उनका जन्म अक्तूबर 1924 को वाराणसी में हुआ था और निधान 5 नवंबर 1982 को हुआ।

सर्वेश्वर "मैं चला जाऊँगा' में भगवतीचरण वर्मा की मृत्यु पर उनकी याद कर रहे हैं। 5 अक्तूबर 1981 को उनका निधन हो गया। उनके व्यक्तित्व के बारे में सर्वेश्वर का कथन है कि वर्माजी अब नहीं है लेकिन उनके संपर्क में आए हर लेखक को थोड़ा, या ज़्यादा हमेशा याद रहेगा कि उनके समय में एक ऐसा व्यक्ति था जो अपनी शान से चलता था। इतना सीधा था कि आज के कुत्ते मुँह चाट जाएँ न इतना ढ़ेढ़ा कि मौका पाते ही आपको औचक चारों खाने चित कर जाए न इतना

दानी कि आप पर सब कुछ लुटा दे, न इतना ढोंगी और स्वार्थी कि हर एक को लूट ले और कहे कि इस लूटे जाने के लिए मेरे कृतज्ञ होओ । यह ढ़ोग उसे नहीं आता था। एक खरी ज़िन्दगी उसने जी और सब कुछ हासिल किया। जो नहीं मिला उसके लिए गिला नहीं किया, न रोया न पछताया, न गोठे बैठायीं। अपने समकालीनों को अपनी ममता में इतना विगलित भी नहीं कर गया कि वह उसकी मृत्यु पर आँसु बहाते रहें और इतना बेगाना, भी नहीं बन गया कि वे दुखी न हो और आदर से सिर न झुकाएँ. एक निराला, रंगीन व्यक्तित्व खो गया।

12 अगस्त 1981 को स्वर्ग सिधारे आचार्य किशोरीदास वाजपेयी की याद उनके कृतित्व पर चर्चा करते हुए सर्वेश्वर करते हैं।

अनिल कुमार, जिसकी मृत्यु 13 सितंबर, 1979 को हुई, उनके निधन पर सर्वेश्वर अपना दु:ख व्यक्त करते हैं। सर्वेश्वर कहते हैं; "अनिलकुमार एक दबंग आदमी का नाम था हर महफिल में बिना नफा नुकसान की परवाह किए गए दो टूक बोलनेवाले आदमी का नाम। संघर्ष करनेवाला आदमी उन्हें प्रिय था और वह संघर्ष करनेवाले आदमी के प्रिय थे। इसीलिए अपना रास्ता बनाती हुई नयी पीढ़ी उन्हें अपने साथ रखती थी, खासकर लेखकों की। वह राजनीतिक व्यक्ति नहीं थे पर राजनीति की कतरब्योंत को अच्छी तरह समझते थे और उनकी मार भी सहते थे। लोहिया साहित्य के वह गंभीर अध्येता थे और बिना समझौते के साहित्य और जीवन के मोर्चे पर सत्य की लडाई लडने में यकीन रखते थे और उसके लिए हर कष्ट हंसते हुए झेलते थे।"[1]

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 341

'सूर्य अस्त हो गया' में आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी की मौत पर श्रद्धानत होकर सर्वेश्वर कहते हैं कि आधुनिक हिन्दी साहित्य के आकाश का सूर्य अस्त हो गया। उनके व्यक्तित्व पर सर्वेश्वर प्रकाश डालते हैं कि द्विवेदी जैसा व्यक्तित्व हिन्दी जगत में न कोई था, न है, न होगा। विद्वत्ता और पांडित्य में उनसे आँख मिलाने का साहस किसी में नहीं था। पर उनकी विद्वत्ता आतंककारी नहीं थी। बातचीत में या भाषण में रसमय हो दूसरे में विलय हो जाती थी। अपने सहज आत्मीय, मौला फक्कड़ स्वभाव के कारण वह सिद्ध पुरुषों की याद दिलाते थे । सर्वेश्वर के अनुसार उन्हें बार-बार पढ़ा जा सकता है और हर बार कुछ और नया पाया जा सकता है। उनकी दृष्टि समग्रता की दृष्टि थी। द्विवेदी जी मद्यकालीन भारतीय साहित्य साधना के ही नहीं वह समस्त भारतीय चिंतन के बेजोड़ विद्वान थे और संस्कृत, पालि, अपभ्रंश, वंगला, गुजराती ही नहीं आज के शोषित इंसान के मन की भाषा के सिद्धहस्त मर्मज्ञ थे।

26 जनवरी 1976 को स्वर्ग सिधारे रामनाथ सुमन की मृत्यु से सर्वेश्वर को लगता है कि पुरानी पीढी का ऐसा एक साहित्यकार और समाजकर्मी उठ गया जिसकी दृष्टि राजनीति और साहित्य दोनों में जीवन की संपूर्णता की थी । हर सादगी भरे जीवन में, सहज समाज सेवा में तथा भाव भरे साफ-सुधरे लेखन में उनका प्रतिबिंब देखा जा सकेगा।

सर्वेश्वर की याददाश में सब लेखक जीवित हैं। उनकी कलम से किसी को छूट नहीं है। दिनकर, मैथिलीशरण गुप्त निराला से लेकर अधुनातन कवियों तक के स्मृति चित्र सर्वेश्वर ने संजोए हैं। एक उच्च

पुलीस अधिकारी और भावप्रवण संवेदनशील व्यक्ति के रूप में अरुण मुरारका की याद वे करते हैं, नयी पीढ़ी के सर्वाधिक सशक्त एवं निर्भीक आलोचक के रूप में डॉ. देवीशंकर अवस्थी की।

फणीश्वरनाथ 'रेणु' के निधन पर सर्वेश्वर अपने मन की बात प्रकट करते हैं कि रेणु के साथ-साथ जो दुनिया हमेशा के लिए चली गई उसे हिन्दी कथा जगत में कोई दूसरा नहीं रच सकता। सर्वेश्वर की राय में रेणु प्रेमचन्द के बाद हिन्दी के ग्रामीण मानस से जुडे सबसे महत्वपूर्ण कथाकार थे। मैला आँचल, परती परिकथा' आदि हिन्दी उपन्यास साहित्य की अमूल्य निधियाँ है। 'ठुमरी' तथा 'आदिम रात की महक' हिन्दी कहानियों का नया क्षितिज उद्घाटित करती है। हिन्दी गद्य को उन्होंने विचारों और भावों की मार्मिकता से नहीं, भाषा और जबान की ध्वनियों से भी झंकृत किया है। सर्वेश्वर की राय में 'रेणु' अपनी अद्वितीय शैली के बल पर हिन्दी कथाकारों में सदा याद किए जाएँगे।

सर्वेश्वर का भावुक मन और स्मरण भारतीय लेखकों पर ही सीमित नहीं है। नोबेल पुरस्कार जेता युगोस्लावी लेखक इवो आंद्रिव की उनकी मृत्यु पर याद करते हैं, 'आंद्रिव ने युद्ध और अत्याचार से पीडित अपने देश के इतिहास का नयी दृष्टि से मनन किया और अपने देशवासियों की मनोरचना और नियति को नये रूप में पहचाना।"[1]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 347

अंग्रेज़ी भाषा के सुप्रसिद्ध कवि डब्ल्यू एच ऑडेन की 66 वर्ष की आयु में 28 सितंबर 73 को वीएना में देहांत हो गया। उनकी मृत्यु पर सर्वेश्वर अपना दुःख प्रकट करते हैं।

मानव-गरिमा के महान प्रवक्ता के रूप में ब्रट्रेंड रसेल की याद कर सर्वेश्वर कहते हैं, वह आदमी की सारी कंमज़ोरियों और महानतम गुणों के साथ एक दीर्घ जीवन जिए और इस युग के महानतम व्यक्तियों में माने गए। हमारे समय के वह सबसे बडे प्रश्नकर्ता थे। उन्होंने गणित, धर्म और दर्शन पर सवाल उठाने शुरु किए और युद्ध, राजनीति, काम और शिक्षा पर सवाल उठाते रहे, ताकि दुनिया आगे बढ़ सके।

ललित कलाएँ और सर्वेश्वर

"सभी कलाएँ रचना में एक साथ सक्रिय रहती है यह तो मैं ने जीवनभर माना है और मैं उनकी और भी निकटता चाहता हूँ। चित्रकार, मूर्तिकार, संगीतकार, वादक-नर्तक सभी ललित कलाओं में सहयोग पनपना चाहिए। चित्रकार स्वामीनाथन और नर्तकी स्वप्न सुन्दरी सभी को रचनाकार में मिलना होगा।"[1]

सच्चे साहित्यकार को अन्य कलाओं सम्बन्धी ज्ञान की ज़रूरत है। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का उक्त कथन यह साबित करता है कि साहित्य और अन्य कलाओं के आपसी और गहरे सम्बन्ध को वे मानते थे और नृत्य और संगीत कलाओं से जुडे उनके निबन्ध उसका दृष्टांत भी है।

---

1. भवानीप्रसाद मिश्र सर्वेश्वरदयाल सक्सेना अंतरंग साक्षात्कार : डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल-पृ. 71

उनके नृत्य-कला सम्बन्धी निबन्धों में कथक, ओडीसी, कूचीपूडी, भरतनाट्यम, मोहिनी आट्टम, कथकली, कूडियाट्टम, नृत्य-नाट्य आदि से सम्बन्धित टिप्पणियाँ और इन नृत्यों के महान कलाकारों की जानकारी प्राप्त हैं। हर एक नृत्य-विधा की जानकारी उन्हें है, ऐसा मालूम हो जाता है। सर्वेश्वर पुरानी कलाओं के प्रणेता हैं, पर उनके आधुनिकीकरण का वे विरोधी नहीं है, यदि वह नृत्य को उसकी तन्मयता से न वंचित करते है तो। हर एक नृत्य-कला की प्रस्तुति, उसके कलाकार की प्रतिभा आदि पर इन निबन्धों में विचार किया गया है।

सर्वेश्वर की कलाओं के प्रति व्यावहारिक दृष्टि है। क्योंकि पुराने ज़माने में कलाकार का धर्म आत्मसुख था तो अब वह जीविका का साधन भी है। सर्वेश्वर के अनुसार कला के क्षेत्र में टिकने के लिए नृत्यांगनों को कुछ खोना पड़ता है। ऐसे नृत्यांगनो के बारे में वे कहते हैं जिनकी मंच उपस्थिति अच्छी है, जो समझदार है, प्रतिभाशाली है, और आगे अपने गुरओं की तरह ही कला को समर्पित रहकर जीविकोपाजेन करता चाहती है। उनके सामने बहुत बडी होड है, बल्कि बहुत गलत होड़ है जिसमें पडे बिना लाख अच्छा नाच कर भी वह समाज में अपनी जगह नहीं बना सकतीं । इसके लिए उन्हें बहुत अनचाहे कार्य करना पडता है। इसलिए सर्वेश्वर कहते हैं अतः एक उदीयमान नृत्यांगना के लिए केवल अपनी साधना के बल पर कला में श्रेष्ठता आर्जित कर लेना ही काफी नहीं है वल्कि अपनी साधना को अपनी दूकान में बदलना भी ज़रूरी है। अपनी कला के ज़रिए खुद को पाने के लिए उसे बहुत कुछ खुद को खोना

पड़ता है। जो इस खोने और पाने के बीच अपनी चतुराई से कुछ संतुलन बनाए रखता है उसे ही कला की दुनिया में आज सब कुछ मिलता है। अन्यथा यह संतुलन खोना तिनकों की तरह एक शर्मनाक बाढ़ में बढ़ जाना है। यह कला दिन पर दिन उसके नृत्य की कला से ज़्यादा बडी होती जा रही है, यह दुर्भाग्य की बात है।

सर्वेश्वर ने नृत्य-नाट्यों पर अपने ठोस विचार प्रस्तुत किए हैं। आधुनिकता का दावा करते हुए लिखे और खेले जानेवाले नृत्यनाट्यों को देखकर उनके मन में ये सवाल उठते है कि "क्या रंगारंग परिधान और प्रकाश आदि ही आधुनिकता है? या उसका कोई विषयगत आधार भी होता है? ऐसा आधार जो आज के युग के सवालो से जुडा हो और उस व्यंग्यात्मक स्थिति को उभारता हो, जिसका यह समाज शिकार है? यानी नृत्यनाट्य के पीछे आधुनिक मन ज़रूरी है या आधुनिक कर्तव्य, जो यंत्रों के उपयोग पर आधारित है?"[1]

सर्वेश्वर के अनुसार उसमें विषय की गहराई अनिवार्य है। इसलिए उन्हें संचित शंकर के बैले 'बेसेंट स्ट्रीट' अच्छा नहीं लगा। श्रीराम भारतीय कलाकेन्द्र द्वारा प्रस्तुत नृत्य-नाट्य 'ययाति' कोणार्क भूमिका द्वारा प्रस्तुत 'आलिंगन' और शिकारी' भूमिका द्वारा प्रस्तुत व्यंग्य नृत्य-नाट्य कान्फ्रेंस-79 रंगश्री-लिटिल बैले ट्रूप द्वारा प्रस्तुत मुत्यू-नाट्यों आदि की तारीफ करते है। कला का देश विदेश आदान-प्रदान होना

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 374

सर्वेश्वर पसन्द करते है। राजधानी के कमानी हाल में शास्त्रीय नृत्य नाट्य की सोवियत मंडली द गाँसकंसर्ट द्वारा प्रस्तुत नृत्य-नाटकों की तारीफ वे करते हैं। मणिपुरी नृत्य शौली में खेला गया 'हू पांक्ती उनके अनुसार सफल हुआ।

सर्वेश्वर के अनुसार भारतीय शास्त्रीय नृत्य शैलियों में 'कथक' सबसे अधिक जीवंत नृत्य शैली है क्योंकि यह शास्त्रीय जकड़नों से अपने को इस हद तक मुक्त करने में समर्थ है कि नये प्रयोगों का उसमें समावेश हो सके । अन्य नृत्य शैलियाँ प्रयोगों से कतराती हैं। प्रयोग आत्मविश्वास के बिना संभव नहीं होता । कथक में यह आत्मविश्वास है कि प्रयोगों से वह नष्ट नहीं होगा बल्कि अपनी शास्त्रीय जड़ों को और मज़बूत करेगा, पुष्पित और पल्लवित करेगा।

सर्वेश्वर शिकायत करते हैं उन अंग्रेज़ी अखबारों की जिनके तमाम दक्षिणी समीक्षक दक्षिण की नृत्य शौलियों को, विशेषकर भरतनाट्यम को कितना महत्व देते हैं, उतना कथक को नहीं। बल्कि उन शैलियों के प्रति पक्षपात करते हैं। कथक के महान कलाकारों के रूप में वे बिरजू महाराज और कुमुदनी लखिया को मानते हैं। कथक कलाकार आज तेज़ संगीत पर नाचने लगे हैं। लेकिन सर्वेश्वर की राय में यह कथक की मिठास को दूर करता है। कथक में मधुरता और कोमलता भी उभरे, वही अच्छा है। रुखे ढंग से केवल व्याकरण को ही पेश करने से भी कथक का सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। कथक की सरसता को बनाए रखना

चाहिए। इसकेलिए सर्वेश्वर कहते हैं कि नए कथक कलाकारों को अपने गुरुओं का रास्ता अपनाना चाहिए। व्याकरण से भीतर की ओर लौटने की कला याने 'मनन' करने की कला बिरजू महाराज और कुमुदनी लखिया से सीखनी है। सर्वेश्वर को यह बात भी अखरती है कि आजके युवा कथक कलाकार गाते नहीं जबकि कथक में गाना निहित है। बिना गाना जाने कथक पूर्ण नहीं होगा। कथक केन्द्र द्वारा आयोजित महाराज बिदादीन कथक महोत्सव कथक नृत्य की उपलब्धियों उसकी सीमाओं और संभावनाओं को बडी सफाई से सामने रखने में सफल हुआ।

कथक को उसकी प्रस्तुति-रूढ़ियों से मुक्त करने में रश्मि वाजपेयी का श्रम अत्यंत सफल मानते हैं सर्वेश्वर। कथक को साहित्य से जोड़ने का प्रयत्न कथक कलाकार छोड़ते जा रहे हैं। वास्तव में इस नृत्यरूप का प्राण तो वही है। अपार साहित्य बिखरा पडा है। उसकी खोज होनी चाहिए और उसे कथक से जोडा जाना चाहिए, रश्मि वाजपेयी यह कर रही है।

क्या भक्ति और आस्था के वगैर नृत्य संभव है? शीर्षक लेख में सर्वेश्वर कहते हैं कि नृत्य रचना के भाव में कलाकार को अपने चरित्र के साथ लय होना होता है। नाटक में एक ईश्वर-विरोधी कलाकार एक ईश्वर-भक्त का अभिनय कर सकता है, पर नृत्य में नहीं। भारतीय शास्त्रीय नृत्य में बिल्कुल नहीं, क्योंकि नृत्य का भाव उपार्जित भाव नहीं होता वह आन्तर्निहित भाव होता है।

प्रगति मैदान के सांस्कृतिक मेले में संयुक्ता पाणिग्रही का ओडिसी नृत्य देखने के बाद लेखक के मन में यह सवाल उठा कि क्या हृदय में गहरी भक्ति के बिना शास्त्रीय नृत्य का कोई अर्थ है? क्योंकि तमाम नृत्यांगनाओं के ओडिसी नाच से और संयुक्ता का ओडिसी इसलिए अलग और अनन्यतम होता है कि संयुक्ता के मन में गहरी भक्ति है। अन्य कलाकार केवल भक्ति का अभनय करते हैं। संयुक्त को देखकर लगता है कि शास्त्रीय नृत्य का चरमोत्कर्ष कलाकार की अपनी तन्मयता है। जिस कलाकार की स्वयं ईश्वर पर आस्था नहीं है, वह भक्तिपरक नृत्य की लय में विलय नहीं हो सकता। शास्त्रीय नृत्य मंगलाचरण से शुरु होते हैं लेकिन आज शायद ही किसी नृत्य कलाकार में वास्तविक पूजाभाव दीखता हो । सब रस्म अदायगी करते हैं। केवल लय-गीत पर शुद्ध नाचकर, फूल चढ़ाकर नमन कर देने से ही मंगलाचरण नहीं होता, रीति का परिपालन होता है। लेकिन "संयुक्ता के मुख की सूक्ष्म से सूक्ष्म मांसपेशियां, एक -एक रग उनके अन्तर के भाव को उकेरती है और शब्दों की निस्सारता को प्रकट कर देती है। उनके ऊपर आलोक की रेखा सी कौधती चली जाती है   रघुनाथ पाणिग्रही के गायन मन्दिर पर लहराती पताका सी टिक जाती है।"[1] इसलिए सर्वेश्वर ओडिसी नृत्यांगनाओं से अनुरोध करते है कि वे संयुक्ता पाणिग्रही से सीखे यद्यपि भक्ति सिखाई नहीं जा सकती । पर उन्हें यह समझना चाहिए भक्ति के बिना वे शास्त्रीय नृत्य के शिखर तक नहीं पहूँच पाएँगे ।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना   संपूर्ण गद्य रचनाएँ   खण्ड तीन   पृ. 379

ओडिसी नृत्य शैली का एक नवीनतम प्रयोग माधवी मुद्गल द्वारा प्रस्तुत किया गया जिसकी सर्वेश्वर खूब प्रशंसा करते हैं। माधवी के साफ-सुथरे शुद्ध नृत्य में मृदंग पर थे गुरु केलुचरण महापात्र। 'जयदेव के गीत गोविंद का पद' चंदन चर्चित प्रस्तुत करते समय नृत्यांगना मंच पर नहीं थी एक सफेद पर्दा था। गायन और वादन के साथ पर्दे पर माधवी के ही नृत्य के छायाचित्र स्लाइडों के द्वारा एक के बाद एक दिखाए जा रहे थे। वे छायाचित्र अविनाश पसरीचा के थे जो अपनी कलादृष्टि के लिए प्रख्यात हैं और जिन्होंने इसका और ठोस सबूत उस शाम के इस कार्यक्रम में दिया जहाँ नृत्यांगना की देह नहीं उसके छायाचित्रों की लय; भाव और मुद्राओं द्वारा पद गायन के भाव लोक को अवतरित ही नहीं कर रही थी प्रेक्षकों को रसप्लावित भी कर रही थी।

राजधानी की झंकार महफिल में सोनल मानसिंह और कुमकुम लाल जो कम परिचित है का ओडिसी नाच था जिनमें कुमकुम अधिक प्रभावशाली थी। सर्वेश्वर प्रसिद्ध नर्तकी होने के कारण सोनल की तारीफ नहीं करते, बल्कि कुमकुम उन्हें आच्छी लगी क्योंकि उनमें सहज लय था, गीत्यात्मकता थी और अभिनय कौशल भी। सोनल और कुमकुम में वे इसप्रकार अन्तर दिखाते हैं कि पहले ने व्यावसायिक स्तर पर कला को स्वीकृत किया हैं तो दूसरी ने शौकिया स्तर पर।

सर्वेश्वर मोहीनी अट्टम को पुनर्जीवित करने में कनक रैले की प्रशंसा करते हैं। पर उनकी प्रस्तुति उतनी अच्छी नहीं थी। प्रस्तुति में

मोहिनी अट्टम का मोहिनी रुप उतना नहीं था। सर्वेश्वर के अनुसार केरल का अपना सोपानम संगीत ही मोहिनी अट्टम के लिए अच्छा है। केरल गायन शैली अपनानी चाहिए, नृत्य में केरल की भूमि का लेक-आस्वाद होना चाहिए। भारती शिवाजी का नृत्य इसकी खूब परिणति है। इसलिए वे कनक रैले से आशा करते हैं कि वे शास्त्रीय चौखटे में इसकी मूल विशेषताओं को सुरक्षित रखते हुए इसमें क्षेत्रीय संगीत के रचनात्मक रंगों और लोक आस्वाद को भरेगी, जिससे कि मोहिनी आट्टम को तंजौरी शैली' या 'कथकली और भरतनाट्यम की चोरी' या 'रोमांटिक शैली' कहकर टालनेवालों के हाथ मज़बूत न हो और यह शैली अशास्त्रीय नृत्यों में अपना सही कलात्मक लोकप्रिय स्थान पा सके, जिसकी यह हर तरह से अधिकारिणी है। विद्वत्ता और ज्ञान को कला के मर्म से जोडना ज़रूरी है।

भरतनाट्यम की नृत्यांगना भारती शिवाजी ने है, डेढ-दो साल केरल में रहकर मोहिनी अट्टम के विशुद्ध तत्वों की बेहत लगन और समर्पण के भाव से खोजकर प्रस्तुत किया जो एक अविस्मरणीय घटना थी । इसका श्रेय संगीत नाटक अकादेमी को भी है जिनके अधीन भारती शिवाजी ने यह कार्य किया। इसका श्रेय सर्वेश्वर कावालम नारायण पणिक्कर को देते हैं। कावालम नारायण पणिक्कर तिरुवनंतपुरम में सोपानम संस्थान चला रहे हैं और रंग जगत में 'मध्यम व्यायोग' 'दूतवाक्यम की प्रस्तुति और निर्देशन के कारण प्रसिद्ध भी हैं। पणिक्कर का मूलाधार केरल की लोकसंस्कृति है और केरल की ताल और संगीत प्रकृति की

खोज ही उनके जीवन का लक्ष्य और साधना है। सर्वेश्वर के अनुसार कावालम 'संगीत नृत्य और रंगमंच को समर्पित आद्वितीय निष्ठावन व्यक्ति हैं।

आंध्रप्रदेश का नृत्य रूप कूचीपूडी की प्रसिद्ध कलाकार हैं स्वप्नसुन्दरी। राजधानी में कूचीपूडी केन्द्र की स्थापना समारोह में स्वप्नसुन्दरी ने जो भामाकलापम प्रस्तुत किया, वह सर्वेश्वर के अनुसार वाकई बेजोड़ था । शास्त्रीय नृत्य शैली को उसके रूखे व्याकरण से मुक्त करके उसमें सरसता का संचार करना एक बडे कलाकार का काम है जो नृत्यसिद्धि का लक्षण है। स्वप्नसुन्दरी ने यह नृत्यसिद्धि दिखायी।

सर्वेश्वर की नृत्य-तप्तरता केवल भारतीय नृत्य रूपों तक सीमित नहीं है, इसका दृष्टांत है, उनका 'देह राग से ढलते बिंब' और 'लौर डीन का खुला संसार' आदि लेख।

'देह राग से टलते बिंब' में केनाडा (मांट्रियल) की नृत्यांगना मार्गो गिलिस का कमानी हाल में एकल नृत्य-प्रदर्शन की तारीफ वे करते हैं। वे कहते हैं कि कुमारी गिलिस नंगे पैर नाचती हैं और भावों की अभिव्यक्ति केलिए तन की मांसपेशियों को ढीला और सख्त कर और पूरी देह को कभी पत्ते-सा हल्का और कभी चट्टान सा भारी बना गतियों को पिरोती है। लगता है देह चित्रकार की तूलिका है, जिससे एक के बाद एक बिंब ढल रहे हैं। सर्वेश्वर को इसका दुःख है कि इस पूरी तरह के मौलिक नृत्यांगना के स्वयं संरचित नृत्य कार्यक्रम को उतने दर्शक नहीं मिले

जितने मिलने चाहिए थे। "इसके लिए कैनाडा हाई कमीशन और श्रीराम भारतीय कला केन्द्र से जिसके सहयोग से यह आयोजित हुआ था शिकायत की जा सकती है। विदेश के सांस्कृतिक विभाग अपने कलाकारों से भारतीय कलाकारों को मिलान की भी कोई योजना नहीं बनाते। सांस्कृतिक क्षेत्र में भी आदान-प्रदान एक खानापुरी होकर रह जाता है, यह दुर्भाग्य की बात है।"[1] अमेरिका के युवा नृत्य के क्षेत्र में अपने नये प्रयोग से सारी दुनिया का ध्यान आकर्षित कर रही लौरा डीन की कमानी हाल में जो प्रस्तुति हुई उसकी सर्वेश्वर तारीफ करते हैं।

सर्वेश्वर के नृत्यकला सम्बन्धी निबंध पढने पर नृत्यकला की दुनिया से अनजान व्यक्ति भी परिचित हो पाएँगे। देश की विभिन्न नृत्य कलाएँ, उनके कलाकार, कला प्रकट करने के मंच, कला पढाने केन्द्र आदि सबकी जानकारी होती है। क्षेत्रीय कला का परिचय भी दिया गया है । हर तक नृत्य की विशेषता बतायी गयी है जिससे मालूम हो जाता है कि सर्वेश्वर नृत्य कला के पारखी थे। यदि किसी कला के बारे में आप नहीं जानते, तो विशद वर्णन भी उन्होंने दिया है जैसे मोहिनी आट्टम और कूचीपूडी पर लिखे लेख। किसी भी राज्य की नृत्यकला के प्रति उनके मन में पक्षपात नहीं हैं। वे तटस्थ रूप से देखते हैं और कलाकारों की परख भी तटस्थ रूप से करते हैं। जैसे सोनल मानसिंह की ओडिसी नृत्य को कुमकुम जो उतना प्रशस्त नहीं है, की तुलना में कम प्रभावी मानते हैं।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 385

संगीत सम्बन्धी निबन्ध

इन निबन्धों में संगीतज्ञ सर्वेश्वर उभर आते हैं। विभिन्न मंचों पर आयोजित संगीत समारोहों पर इनमें सर्वेश्वर ने अपने विचार प्रकट किए है।

'दस सितार भारत में एकनाथ नहीं बज सकते' में भारतीय संगीत पर पाश्चात्य संगीत के प्रभाव पर चर्चा करते हैं। सर्वेश्वर के अनुसार पश्चिमी बाद्यवृन्द में जिस तरह एक साथ सभी वाद्यवृन्द बजाते हैं, उसी प्रकार भारतीय वृन्दगान में संभव नहीं, संभव है या नहीं ऐसी बात नहीं बल्कि वह उतना अच्छा नहीं लगता। "क्या हमारे वाद्ययंत्र एक साथ मिल सकते हैं? क्या दस सितार एक होकर बज सकते हैं ? सच तो यह है कि दस सितार एकसाथ बज नहीं सकते। दो सारंगी एकसाथ नहीं बज सकती । हर भारतीय वाद्य यंत्र का अपना अलग व्यक्तित्व होता है। दो सारंगियों में हर एक का अलग व्यक्तित्व होता है।"[1] इसलिए सर्वेश्वर कहते हैं इसप्रकार पश्चिमी वाद्यवृन्द के साथ मिलाने का प्रयास बनावट है। उसीप्रकार वृन्दगान यानी 'कोरस म्यूसिक या क्वायर म्यूजिक' पश्चिम की चीज़ है इसका भी सर्वेश्वर भारतीय संगीत में पनपना विरोध करते हैं। "क्या हमारे कीर्तन से इसका कहीं कोई मेल बैठ सकता है? कहाँ है इसकी जडें? कह सकते हैं भारतीय संगीत के मूल में वादी, विवादी स्वरों की चर्चा है। पर सामूहिक लोक-गान में सबके सुर एक होते

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 418

हैं और दूसरी ओर यह वृन्दगान जहाँ एक स्वर में इधर, तो दूसरे स्वर में उधर और तीसरे में और कहीं गायन हो रहा है। सच तो यह है कि यह गायन शैली पश्चिम से होकर आयी है।"[1] सर्वेश्वर के अनुसार भारतीय समूहगान में स्वरों की एकलयता और वृंदगान में स्वरों की 'हार्मनी' अलग है। इस तरह की कला आभिजात्य वर्ग की ही चीज़ होकर रह जाएगी। पर 'कला अततः लोक में लय होकर ही निखरती है । जो कला जन से जुड़ नहीं सकती वह लंगडाती रह जाती है।

किसी भी कार्यक्रम को सफल बनाने केलिए कलाकारों की ही नहीं, प्रेक्षकों की भी आवश्यकता है। सर्वेश्वर संगीत समारोह का आयोजन करनेवालों से यह सिफारिश करते हैं कि वे पूरी तरह इसका प्रचलन करें ताकि संगीतप्रेमी इससे वंचित न हो जाए। सर्वेश्वर के अनुसार किसी भी संगीत सम्मेलन की सफलता में श्रोता उतने ही महत्वपूर्ण होते हैं जितने कि संगीतकार। अब सरकारी अधिकारियों से संपर्क करने के माध्यम के रूप में ये सब मनाए जाते हैं। सरकार के तमाम विभागों के सचिव, उपसचिव, वरिष्ठ अधिकारी आयोजकों की ओर से आमंत्रित किए जाते हैं और संगीतप्रेमी श्रोताओं के लिए 'हाउस फुल' का एलान कर दिया जाता है। ये सरकारी अधिकारी या तो आते नहीं या बीच में ही उठकर चले जाते हैं या कार्यक्रम के समय ऊंघते या आपस में बात करते रहते हैं। मंचपर उपस्थित कलाकार इससे हतोत्साहित होता है।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 419

सरोदवादन की महीला कलाकार के रूप में वे ज़रीन दाराबाला की याद करते हैं। शास्त्रीय संगा की युवा कलाकार अनिता विश्वास जिसकी मृत्यु अकाल में हो गयी उनकी याद करते हैं। वे कहते हैं मध्यवर्गीय युवा पीढी केलिए आज शास्त्रीय संगीत की साधना बेहद कठिन हो गयी है । स्त्रियों को यह कठिनाइ ओर भी कई स्तरों पर झेलनी पड़ती है। परिवार के बंधन में बंध जाने पर उसकी खींचतान एक ओर, और संगीत जगत की आपाधापी दूसरी ओर। इसमें या तो कोई छोर छूटता है या कलाकार टूटता है। इसीलिए मध्यवर्गीय युवा संगीत साधिकाएँ विवाह न करना ही पसंद करती है। अनिता विश्वास की बात भी ऐसी थी। आकाशवाणी ने युवावर्ग के कलाकारों को प्रोत्साहन देने का एक नया साप्ताहित संगीत कार्यक्रम संगीतसभा आरंभ किया था जिसका श्रीगणेश अनिता ने ही किया था। वहीं से वह भागी-भागी घर आ गयी। घर में घुसते ही रोते हुए अपने डेढ़ वर्ष के बच्चे के लिए दूध गर्म करने लगी। स्टोव से कपडों में आग लग गयी और वह स्मृतिशेष हो गयी।

सर्वेश्वर के अनुसार वह अब कला की दुनिया भी राजनीति की दुनिया की तरह एहसान फरामोश होता जा रही है, यहाँ भी लोग बडी जल्दी भूल जाते हैं। छत्तीसगढ़ के लोक कलाकार ठाकुरराम की याद करते हुए वे ऐसे कहते हैं कि उनकी मृत्यु पर जाकध को छोड़कर अखवारों में कोई खबर प्रकाशित नहीं हुइ। वह अनपढ़ थे ग्रामीण थे। शहरी लोकप्रियता के मानदेड ऐसे लोगों के पास नहीं होते। "कला साधना के साथ-साथ ऐसे लोगों के लिए जीविका भी होती है। उसके

सहारे वे जीते हैं चुपचाप जीते हैं और चुपचाप चले जाते हैं। उनका नाम कहीं नहीं लिया जाता। वह दूसरों के नाम के लिए एक नगण्य सीढ़ी बनकर रह जाते हैं। ठाकुरराम ऐसे ही कलाकार थे।"[1]

उस्ताद हलीम जाफर के सितार वादन, उस्ताद बिस्मिल्लाखां के शहनाई वादन, कुमारी निलोफर खां और नव ध्रुवपद गायक उस्ताद रहीमुद्दीन खाँ डागर आदि की सराहना करते हुए सर्वेश्वर ने जो लेख लिखे हैं, वे पढ़कर मालूम हो जाता है कि उनकी, संगीत में भी बेहद रुचि और जानकारी थी।

रूस यात्रा

72 में पुश्किन काव्य समारोह में भाग लेने के लिए सोवियत लेखक संघ का निमंत्रण सर्वेश्वर को प्राप्त हुआ और तब की गयी रूस-यात्रा का विवरण 'कुछ रंग कुछ गंध' के नाम से हमें प्राप्त हुआ। सिर्फ एक यात्रा-संस्मरण नहीं है यह बल्कि रूस के कार्यों से, वहाँ की जनता से अपने भारत के कार्य और जनता की तुलना कर एक तुलनात्मक अध्ययन भी किया गया है। सर्वेश्वर की साहित्य सम्बन्धी मान्यताएँ भी पंक्तियों के बीच से हमें झाँककर देखती हैं। सर्वेश्वर भाषा की भी इस विवरण में चमकती है।

अपनी यात्रा के बारे में वे पहले ही कहते हैं कि रूस जाते समय सैलानी जैसा भाव मन में नहीं था यानी दौड़-दौड़कर सब कुछ

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 426

देख डालना हर पाल्हा छू आना। और हर राई रत्ती को मसाला लगा चटपटा बना पेश करने वाला यात्रा-संस्मरण लिखना उनके बूते का नही है, न ही उनका स्वभाव है। उन्हें इसके पहले भी 1971 की दिसंबर में सोवियत लेखक संघ की ओर से कवि नेक्रोसेव की डेढ़ सौवी जयंती में भाग लेने का निमंत्रण प्राप्त हुआ था पर भारत पाक युद्ध के कारण नहीं जा सका था।

सर्वेश्वर कहते हैं, अपनी कविता पर उन्हें जो विश्वास था, वह और भी इस निमंत्रण मिलने के बाद पुष्ट हुआ क्योंकि वे रूसी खेमे का लेखक नहीं है। और उनकी मान्यता है कि सच्चा लेखक किसी खेमें का नहीं होता।

सर्वेश्वर की यह यात्रा पहली विदेश यात्रा थी। विदेश-यात्रा ज़्यादा न करने की ग्लानि उनमें नहीं है, बल्कि अपना देश ही पूरा न देख पाने की ग्लानि ही मन में अधिक बनी रही है। सर्वेश्वर यह माँग करते हैं कि भारतीय लेखकों को अपना देश दिखाने की व्यवस्था करने की जरूरी है कि लेखक देश के विकास और भावनात्मक एकता से जुड़ा साहित्य लिखे, यह विडंबना ही है।

सर्वेश्वर की आपने देश के प्रति चिन्ता, अपने देश के प्रति ममता, सब इस यात्रा-विवरण में दर्शनीय है। इस यात्रा वृत्तांत के दौरान उनके मन में हमेशा भारत रहा। "इस यात्रा में हर समय मेरा देश मेरे साथ चिपका रहा ओर अनचाहे भी वहां का हर प्रसंग देश के किसी न किसी

प्रसंग से जुडता जाता था और मन जितना कुछ देखकर खुशी से भरता था, उतना ही उदास हो जाता था।"[1]

रूस के मेट्रो के रेलवे स्टेशन सोवियत संघ की चित्रकला से सजे हुए, साफ-सुथरे, बडे, खुले, आरामदेह था कि लगता ही नहीं था कि ज़मीन के भातर है। रूसी आदमी जो सार्वजनिक परिवहन का इस्तेमाल करता है दूरी समय में नापता है, कभी धोखा नहीं खाता। यह देखकर राजधानी में बसों के लिए मार-धाड, रेलपेल, घंटों समय का अपव्यय ये सब सर्वेश्वर को उस समय याद आये। और यह सोचकर उनका मन दुःखी भी हुआ कि 25 साल में सरकार दिल्ली तक में परिवहन की व्यवस्था ठीक नहीं कर सकी है। हमारे यहाँ सार्वजनिक परिवहन का भरोसा करना ज़िन्दगी छोटी करना, समय बरबाद करना और काम खराब करना है। "एक औसत रूसी चेहरे के साथ जब भी अपने देश के औसत आदमी का बुझा-बुझा कमज़ोर मरियल चेहरा सामने आ जाता था मन ग्लानि से भर जाता था ।"[2]

खाने के लिए मस्क्वा के बूफे में चले तो वहाँ की सुविधा देखकर तब भी सर्वेश्वर को अपने देश की दुस्थिति याद आयी। मस्क्वां में खाने की ही नहीं हर चीज़ का दाम हर जगह एक था। समय की बरबादी नहीं। खाने की चीज़े साफ-सुथरे ढंग से रखी हुई। तभी सर्वेश्वर

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 446
2. वहीं पृ. 450

को यह सोच तकलीफ आयी कि हमारी सरकार 25 साल में खाने के सामान में मिलावट भी नहीं रोक सकी, "राष्ट्रीय स्वास्थ्य गिरता जा रहा है। काम करने की शक्ति कम होती जा रही है, दवाओं, डॉक्टरों, अस्पतालों पर जोर है पर मिलावट खत्म करने पर नहीं । रूस में सड़कों पर ड़क्टरों की दूकानें नहीं दीखतीं। दवाओं की दुकाने हैं, बडी हैं, पर बहुत ज़्यादा नहीं। कदम-कदम पर नहीं। औसत आदमी खाता-पीता स्वस्थ रहता है। भारत में इसका उल्टा है।"[1]

मस्क्वा की सडकों पर निकल पडे तो सर्वेश्वर ने देखा कि मस्क्वा प्रतिमाओं से सजा हुआ शहर है - सुन्दर, विशाल, भव्य प्रतिमाओं से। लेनिन की प्रतिमाओं के अतिरिक्त क्रांति के सेनानियों और लेखकों कलाकारों की प्रतिमाएँ चारों तरफ हैं। हर चौराहे पर हर सडक पर किसी लेखक को याद करते हैं। उनके नाम पर सडकें हैं, पार्क हैं। मायकोवस्की गोकी, पुश्किन, टालस्टाय सभी सेवियत संस्कृति के प्रहरी की तरह खडे हैं। तभी सर्वेश्वर को अपने देश की याद एक और बार आती है कि यहाँ राजनीतिक व्यक्ति की प्रतिमा उसके जीवनकाल में ही खडी हो जाती है। लेकिन लेखकों की चिन्ता किसी को नहीं, लेखकों को अपने देश की चेतना से जोड़ने का कोई प्रयत्न नहीं है। व्यवस्था ऐसा मानती है कि समाज से उनका कोई रिश्ता नहीं। न पहले था न अब है, न आगे होगा। व्यवस्था लेखक को समाज का सक्रिय अंग नहीं मानती। जनता की

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 481

चेतना में उनको जमने नहीं दिया जाता। राजधानी में पत्रकारों के लिए कुछ सहूलियतें हैं भी पर लेखक के लिए नहीं। सर्वेश्वर पूछते हैं तुलसीदास और गालिब के नाम पर खाने-कमाने का धन्धा विशाल पैमाने पर हो जाता है पर कनाट प्लेस, इंडिया गेट या संसद के सामने उनकी प्रतिमाएँ नहीं लगा सकतीं? क्यों? इस दिशा में एक नये सोच की ज़रूरत पर वे ज़ोर डालते हैं।

मुख्य समारोह पुश्किन वनखंडी के विशाल वाडे के बाहर के एक बडे मैदान में था। वह मैदान आदमी, औरतों और बच्चों से भरा था। बाडे के चारों ओर पुलिस के सिपाही थे। पर हमारे देश के समान हाथों में लाठियों लिए पूरे प्रदर्शन के ठेकेदार नहीं लग रहे थे। सब कवियों ने अपनी कविता सुनाई, उसके बाद आटोग्राफ देने का सिलसिला था । कई देर बाद एक पुलिस ने आकर कहा कि कुछ और बच्चों की पुस्तकों में हस्ताक्षर करना है। तभी सर्वेश्वर सोचता है, 'मैं पुलिस के आदमी का चेहरा देखने लगा। बहुत सहज भाव या। मैं सोचते लगा, अपने देश का पुलिस का आदमी उन बच्चों की सहज आकांक्षा का इस प्रकार सहायक नहीं होता, हस्ताक्षर के लिए उनकी किताबें लाना तो दूर उन्हें डंडा हिलाकर भगा देता।"[1] सर्वेश्वर की समझ में नहीं आता कि भारत की पुलिस में जनता की सहायता का ऐसा भाव क्यों नहीं है? वह अधिकार और सत्ता के अहं से क्यों भरी हुई है?

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 466

लेखकों और साहित्य के प्रति इतना आदर और मान देने पर भी रूस में एक बात जो सर्वेश्वर को खटकी वह है नौकरशाही यानी, सर्वसाधारण के लिए सर्वत्र विदेशी साहित्य का उपलब्ध न होना। 'पर भारत की सड़कों पर रूसी और अंग्रेज़ी प्रकाशन धडल्ले से बिकते हैं - पेंग्यूइन जैसे प्रकाशकों के माध्यम से हम दीन-दुनिया से परिचित हैं पर रूस का औसत आदमी पेंग्यूइन का नाम भी नहीं जानता होगा। उसे दीन-दुनिया से काटकर रखा गया है। वह उतना ही मानता है जितना उसे जनाया जाता है"[1] इसलिए सर्वेश्वर को यह बात खटकती है कि इस तरह औसत आदमी को काटकर रखना लेनिन के सपनों की परिणति है?

रूस में हिन्दी भाषा का काफी प्रभाव है। 'हिन्दी का काफी साहित्य रूसी भाषा में हैं। हर शहर में ऐसे रूसी मिले जो विश्वविद्यालयों में हिन्दी पढ़ाते है और अनुवादक का काम करते हैं सही लेखक तथा सही साहित्य भी रूसी भाषा में आ रहा है। केवल साम्यवादी चिप्पी लगा साहित्य ही अब वहां स्वीकार नहीं है। उन लेखकों का साहित्य भी वहाँ प्रकाश में आ रहा है जिन्हें मानवतावादी लेखक की संज्ञा दे सकते हैं । और उनकी रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में छपती ही नहीं उनकी रचनाओं पर पत्र-पत्रिकाओं में विचार- विनिमय भी होते है।"[2]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 471
2. वहीं पृ. 475

फुटकर लेख

अपने वर्तमान की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक परंपराओं, स्थितियों, मूल्यों के प्रति सबसे ज़्यादा जागरूक सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की सामाजिक प्रतिपत्ति का दृष्टान्त है उनके फुटकर लेख। भारत की सबसे पिछडी जनता जो अकाल और सूखे से पीडित है, जो देश की नयी सुविधाओं से वंचित है, शिक्षित होने से वंचित है, उनपर उनकी पैनी दृष्टि पडी है।

"एक सच्चे रचनाकार का दायित्व सामाजिक जागरूकता की रचना करना है,"[1] यह उनकी मान्यता है। इस दायित्व को निभानेवाले सच्चे रचनाकार का रूप इन फुटकर लेखों में हम देखते हैं।

इलाहाबाद की डायरी में इलाहाबाद पर छा रहे अँधेरे पर विचार किया गया है। अपने खुलेपन के लिए मशहूर-सडकों और बंगलों के खुलेपन से लेकर दिल, दिमाग और विचारों के खुलेपन तक इस शहर में अब अँधेरा है   सडकों पर भी, दिलों और विचारों में भी।

अब यहाँ खुले आम चोरी-डकैती हो रही है। आतंक सब कहीं फैला हुआ है। पच्चीस रुपए में कट्टा (देसी पिस्तोल) खुले आम आसानी से मिल जाती है। 'बेरोज़गारी के आलम में कटे का उत्पादन बढ गया है! शरीफ और बदमाश में एक ही अन्तर रह गया है। शरीफ आदमी

---

1. भवानीप्रसाद मिश्र सर्वेश्वरदयाल सक्सेना अंतरंग साक्षात्कार : डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल-पृ. 75

के पास हथियार नहीं होता, वह नहीं रखता, प्रशासन और व्यवस्था पर अब तक उसका इतना विश्वास था कि उसे अनकी ज़रूरत नहीं थी, पर अब हवा बदल गयी है। वदमाश आश्वस्त है कि 'यह शरीफ आदमी है अतः उसके पास हथियार नहीं होगा। वह आसानी से शरीफ आदमी के साथ बिना किसी प्रतिरोध के ज़ोर जबरदस्ती कर सकता है।"[1] इतनी आसानी से यह आतंक इसलिए होता है कि पुलिस भी इसमें मददगार है। आतंक फैलानेवाले इन गुंडों और बदमाशों को अक्सर सत्ताधारी राजनीतिक नेताओं का संरक्षण प्राप्त होता है। यही आतंक अब शिक्षा के केन्द्र में भी है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के छात्रावासों में कमरे-कमरे में पिस्तौल और बम हैं। छात्रों में गुटबन्दी है। जिनके पास जितने अस्त्र हैं, वह उतना ही ताकतवर गुट है।

गाँव भी इससे भिन्न नहीं है। गाँव में बंदूक रखना प्रतिष्ठा का द्योतक है। विश्वविद्यालय में भी पिस्तौल रखना छात्र राजनीति की प्रतिष्ठा और दबदबे का द्योतक है। छातें में दो वर्ग साफ बनाये जा रहे हैं। एक सामान्य वर्ग और एक विशेष वर्ग। इस विशेष वर्ग में सामंती, ज़मींदारों, रजवाड़ों के घराने के छात्र हैं जिनके खून में अपने वंश का स्वाभिमान है! .....दूसरी तरफ गरीब सामान्य छात्र का है जो स्वाभिमान से नहीं विचारधाराओं से जुड़ता है, जिसकी चेतना परिवर्तित हो रही थी। दोनों में टकराव निहत्थे और हथियारों से लडने के बीच टकराव जैसा है। सर्वेश्वर मानते हैं कि इन सब के पीछे व्यवस्था का हाथ है।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 487

साहित्य के क्षेत्र में भी अँधेरा छा गया है। साहित्यिकों के खुलेपन में पहले व्यक्तित्व की टकराहट थी तो अब व्यावसायिकता की। नयी पीढ़ी आक्रोश और विरोध के साहित्य को मानती है। सर्वेश्वर कहते हैं कि रोशनी के खंभे हैं, पर रोशनी नहीं है। अखबारों की बात भी यही है। "इलहाबाद एक खुला नगर है पर अखबार तक का दरवाज़ा बन्द रहता है। इस खुलेपन पर दस्तक कौन कैसे दे?"[1] व्यवस्था के बन्द दरवाज़ों पर दस्तक देने की बात सर्वेश्वर कह रहे हैं। एक शहर या गाँव को अच्छा या बुरा बनाने में व्यवस्था का ही पूरा हाथ है। यही व्यवस्था आदमी को गण्य और नगण्य बनाती है।

'जाडा और जड़ता' में सर्वेश्वर ने उन लोगों के प्रति अपनी सहानुभूति दर्शायी है जो बाढ और सर्दी में मारे जाते है। उनकी केवल गिनती ही लेती है, न उनका कोई, नाम, पता और व्यक्तित्व। मौत के प्रति मनुष्य की उदासीनता यही प्रदर्शित होती है क्योंकि मरनेवाले समाज के सबसे निम्न तबके के लोग है। उनके मरने या न मरने किसी को क्या फायदा? उन लोगों की मृत्यु का केवल आँकडे मिल जाते है। अखबार वाले भी उनका नज़रअंदाज़ करते है। "उत्तर भारत में ठारा (शीत लहर) से 215 मरें ये लोग कौन थे। कहाँ के रहनेवाले थे? इनकी मौत ठंड से क्यों हुई? क्या काम करते थे ये? मौत की खबर पढ़कर ये तमाम सवाल मन में उठते हैं पर इनका कोई जवाब नहीं मिलता। ये लोग घरद्वार

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 489

वाले थे या अपंग थे, भीख माँगते थे? कुछ पता नहीं चलता। मौत की संख्या ठीक उसी तरह गिनायी जाती है जैसे तापमान घटते या बढ़ने की डिग्री की सूचना।"[1]

ठंडक से मरने के कारणों पर सर्वेश्वर चिन्ता करते हैं। उनके अनुसार मोत का रिश्ता गरीबी से जुड़ता दीखता है। गरीब क्षेत्रों में गरीब वर्गों में ऐसी बातें अधिक होती है। महंगाई इतनी बढ़ती जा रही है कि मूँगफली और गुड़ तक गरीब नहीं खा सकता। एक ज़माने में गरीब इलाकों का गरीब आदमी यही सब खाकर अपने शरीर के भीतर ठंडक से लडने की ताकत लिए, कपडों की कमी का संहारक असर न पड़ने देने के लिए, यह आग का सहारा लेता था पर अब लकडी और कोयला मिलता नहीं। आग का सहारा भी गया न भीतर गर्मी न बाहर गर्मी।

ये सब न मिलने पर घोर ठंडक से बचने के लिए पुराने टायर आदि वे सुलगाते हैं जिसके बदबू और घुआँ और नुक्सान करते हैं। उनकी आज की मौत से बचने के लिए वे कल का खतरा उठाते है, विवश, अनजाने । सर्दी से लड़ने केलिए इनके हथियार बदबुदार इसलिए हैं कि पूरे समाज का सोच बदबूदार हो गया है। सर्वेश्वर कहते हैं कि जो मर गए उनकी चिंता इसलिए ज़रूरी होती है कि जो जिंदा है उन्हे मरने से बचाया जा सकें। पर इस देश में गरीब आदमी को मौत से बचाने की ज़रूरत किसी को नहीं है।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 490

बास्तव में सर्दी से मृत्यु हर साल होती है, पर जनता भी इसका आदी हो गयी है कि हर साल ऐसा ही है। नष्ट तो केवल उन लोगों को है जिनको मृत्यु ने बेसहारा छोड़ दिया है। पर ये जो गरीब लोग हैं शायद वे भी मौत को रक्षा समझेंगे कि उनका अनदेखा करने वाले समाज से निकल जाएँ। ऊँचे तवके के लोगों के लिए तो यह केवल खबर मात्र ही है, एक दिन की खबर। वास्तव यह है कि ठंडक के कारण मृत्यु नहीं होती, बल्कि गरीबी के कारण होती है। पर उनके प्रति हम सारी जनता उदासीन हैं। सर्वेश्वर तिलमिलाकर पूछते हैं शीत लहर का जवाब हो भी सकता है पर क्या उदासीनता की उस लहर का कोई जवाब है जो उससे भी अधिक भयंकर रूप से चारों तरफ छाई हुई है और हर भौत को आँधी पेड़ टूटने की तरह भी नहीं देख पाती? यह नहीं समझ पाती कि सर्दी में मरने का मतलब है गरीबी से मरना-खाना, दवा, कपड़ा, घर न मिलने से मरना। क्या हम यह मानने को तैयार हैं कि मौत सर्दी से नहीं होती, उन तमाम वस्तुओं के अभाव से होती है, जो ज़िन्दा रहने के लिए ज़रूरी है। आदमी फसल नहीं है कि जिसे पाला मार जाए।

यही चिन्ता 'मौत का मुआवाजा नहीं होता' में भी दिखाई पड़ती है। इस लेख में सर्वेश्वर तीखी टिप्पणी करते हैं। उस पर सरकार पर जो मरने पर मुआवजा देती है । मौत के कारणों को मिटाने में सरकार कुछ नहीं करती, बल्कि मुआवजा घोषित करनेवाली व्यवस्था पर सर्वेश्वर क्रुद्ध हो जाते हैं। "यह सत्ता का प्रर्शन है कि आप देने में सनर्थ हैं और अपने निकम्मेपन की घोषणा है कि आप बचाने में समर्थ नहीं है। कितना

फूहड़, बदसलीका, बेहूदा ढंग है यह मुआवजे का एलान कि देखो भई अपनी लापरवाही और अपनी बदइंतज़ामी से हमने तुम्हारे बच्चे को मार डाला अब यह रुपया लो और चुप हो जाओ, इसे बंद करना चाहिए।"[1]

ऐसी दुर्घटनाएँ हमेशा होती रहती हैं, रेलों में, खदानों में, सड़कों पर। ये सब व्यवस्था की लापरवाही से उपजी दुर्घटनाएँ हैं। अपनी उदासी से हुई मौतों की कीमत चुकाने की कोशिश सरकार करती है। सर्वेश्वर सरकार पर अपना क्रोध बरसाते हैं, "हर मौत पर कितनी शान से सरकार मुआवज़ा घोषित करती है, गोया मौत का दाम चुका रही हो। गोया मौत की कीमत अदा की जा सकती है। सत्ता की इतनी अहम्मन्यता! क्या किसी मौत का कोई मुआवज़ा हो सकता है?"[1]

सर्वेश्वर सरकार से केवल यह निवेदन करता है कि आपकी थोथी संवेदना का यह प्रदर्शन मौत को अपमानित करता है बेहद अपमानित। मौत की कीमत पैसों से नहीं चुकायी जा सकती वे दरवाज़े बंद कीजिए जिधर ये मौतें आती हैं।

आदमी की स्थिति यही है तो जानवरों की क्या होगी? 'बिहार का सूखा' पर जो लेख है 'बरसात बे-बीजः बैल बे-चारा' में यही सवाल सर्वेश्वर करते हैं। बिहार के सूखे के वक्त लेखक ने वहाँ दौरा किया तो देखा कि आधा पेट खाकर ही सही, आदमी ज़िन्द है, उसे भूखा मरने से बचा लिया गया है। लेकिन अकाल की अभिशप्त छाया आदमियों से

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 503

हटकर मवेशियों पर पड रही है। "बेजबान मवेशी वेमौत मर रहा है। उसकी आवाज़ सुनने की ज़रूरत किसी ने भी महसूस नहीं की ।.... फिर भी उन्हें पूरी कोशिश से बचाया जाना चाहिए क्योंकि खेती के मेरुदंड वही हैं।"[1]

बेचारे बैल बे-चारा मर रहे हैं। सर्वेश्वर कहते हैं कि बिहार की जनता इस संकट से बचने में उदासीन है। जहाँ जनता उदासीन हो, पीडित वर्ग लालची और अकर्मण्य हो रहा हो, कर्मचारी वर्ग बेईमानी पर कमर कसे हो, अधिकारी आँकडों को शतरेज की तरह चलाते हो, वहाँ संकट का सामना आसान नहीं है। फिर भी बिहार रिलीफ कमेटी ने सराहनीय कार्य किया है। सर्वेश्वर कहते हैं, इस सूखे की चपेट में सबसे बुरी तरह निम्न मध्यम वर्ग ही पिसा है। इस वर्ग का आदमी कठिन श्रम नहीं कर सकता। मुफ्त की भी नहीं खा सकता, क्योंकि प्रतिष्ठा का सवाल सामने हैं। उसके घर गिर रहे हैं। वह अपना छप्पर बेचकर भी पेट नहीं पाल सकता। घर के चूल्हे काले पडे हैं और औरतें दीवारों के भीतर ठठारियाँ मात्र रह गयी हैं।

'पैसा नहीं दाना दो' में गुजरात के सूखे की स्थिति बतायी गयी है। आम आदमी की तकलीफ के प्रति उदासीनता यहाँ भी दिखायी गयी। "सूखे के प्रति सरकार का रवैया एक दम औपचारिक है, चिंता की मात्रा उसमें नहीं के बराबर है। आँकडों की फाइल लेकर उच्च सरकारी अधिकारी कितनी आसानी से मई के महीने को जब सूखे की स्थिति अपने

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 503

गहनतम विकराल रूप में होगी 'पीक सीजन' कहते हैं, जैसे तमाशे का टिकट बेच रहे हों।"[1] राहतकार्य में काम करनेवालों को पैसा दिया जाता है बडों को 3 रुपया रोज़ छोटों को डेढ़ रुपया रोज़ मिलता है। 'पर उनके लिए यह काफी नहीं है। वे काम करने पर भी भूखे है। इसलिए वे कहते हैं कि 'पैसा क्या करे। दाना दो दाना।"[2]

'सूखा और शिंदे' में सर्वेश्वर ने केन्द्रीय खाद्य एवं कृषिविभाग में राज्यमंत्री शिंदे पर व्यंग्य किया उन्होंने यह बताया कि देश में अनाज की उतनी कमी नहीं है जितना सही वितरण की। लोगों ने भय से अनाज जमाकर रखा है, जिससे वितरण का संतुलन बिगड गया है। सरकार देश के सूखे की स्थिति के प्रति सदैव चिंतित रही है। उनके अनुसार 'अकाल की मन:स्थिति चिंताजनक है, स्थिति नहीं। "आँकडों द्वारा देश की सूखा स्थिति पर आश्वस्ति के बाद पत्रकारों ने उनसे पूछा कि क्या उन्होंने बीड (एक घास की जड़) का नाम सुना है! पत्रकारों ने उन्हें खामोश पाकर बीड के काले दाने दिखाए, जिन्हें वे गुजरात के सूखाग्रस्त क्षेत्र से लाए थे और जिनकी रोटी वहाँ के लोग खा रहे हैं।"[3]

गुज़रात के सूखे के लिए एक ही रास्ता है नर्मदा की पानी । पर इस नर्मदा पर मंध्यप्रदेश और गुजराज झगडा कर रहे हैं। 'एक ही रास्ता-नर्मदा का पानी' में सर्वेश्वर यही पूछते है कि हर वर्ष सूखे के

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 515
2. वहीं पृ. 519
3. वहीं पृ. 522

राहत कार्य में सैकडों करोड रुपया खर्च करता है। 300 करोड रुपए गुजरात के नर्मदा बांध पर खर्च होते। पर इतना उसने सूखा से राहत कार्यों पर खर्च किया है। "यह कौन-सी अर्थव्यवस्था है समझ में नहीं आता। मध्यप्रदेश और गुजरात दो अलग-अलग देश नहीं है, एक ही शरीर के दो हिस्से हैं फिर क्यों उनका स्वार्थ इतना हावी है कि वे 25 साल से झगडा कर रहे हैं।"[1]

इस पर सर्वेश्वर अपना मत व्यक्त करते हैं कि नर्मदा बांध का फैसला तुरंत होना चाहिए और करोडों रुपया हर साल राहत कार्यों पर खर्च होने से बचाया जाना चाहिए। आम जनता को इस संकट से निकालना होगा। इसका कोई मतलब नहीं है कि आम जनता जो कठिनाई झेलने की आदी है आज़ाद देश में भी दिन पर दिन अधिक कठिनाई झेलने की दिशा में ढकेली जाये और आराम सुख के आदी थोडे से लोग अधिक से अधिक आराम सुख हासिल करते जायें। इस दूरी को कम करना होगा। अन्यथा आम आदमी जो जानवर की तरह जीने केलिए मज़बूर है आगे भी मज़बूर रहेगा। अतः सर्वेश्वर का सुझाव है कि कम से कम नर्मदा बाँध जैसी देश की बडी योजनाओं को प्रादेशिक स्वार्थों से अलग कर राष्ट्रीय दृष्टि से देखना ज़रूरी है और उनपर तुरन्त निर्णय लिया जाना और भी ज़रूरी है। क्या केन्द्र सरकार 25 साल ही सहीं इस कार्य की तात्कालिकता समझेगीं और ऐसी स्थिति उत्पन्न करेगी कि खाद्य मंत्रालय अकाल मंत्रालय न कहा जाए। यदि सर्वेश्वर आज होते, तो यह देखकर

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 524

इन्हें दु:ख ही नहीं क्रोध और आश्चर्य भी होते कि आज भी नर्मदा पर ढगडे हो रहे हैं।

स्वतंत्रता के पहले की पीडित जनता, स्वतंत्रता के बाद भी पीडित ही रहती है । देश की जिस आम जनता को मन में लादे, गाँधीजी ने आज़ादी की लडाई लडी थी, वे आजभी गुलाम हैं, वे देश की स्वतंत्रता से अनजान हैं, उनकी आज की पीढी नहीं जानती कि गाँधीजी कौन है क्योंकि उन्हें क्या फर्क पडता है देश के स्वतंत्र या अस्वतंत्र होने से? यही सवाल "सडका का आदमी' में सर्वेश्वर ने पूछा है। तख्ती में बैठकर सरकारें कई घोषणाएँ करती हैं, पर सबकुछ कागज़ में ही बन्द है। यदि सरकार पैसे बाँटे तो भी वह ज़रूरतमंद जनता को नहीं मिलते क्योंकि बीचवाले खाते है।

मेहनत करनेवालों को भी उसका फल न मिल रहा है, हमारे देश की ऐसी स्थिति है। 'शिक्षक की यात्रा' में भी सर्वेश्वर इसी चिन्ता को लिए हुए है। नयी दिल्ली में सैकडों शिक्षकों को प्रदर्शन वर्जित क्षेत्र के भीतर प्रदर्शन करते दफा 144 तोड़ने पर गिरफ्तार किया गया। वे हरियाण के शिक्षक थे। वे इसलिए दिल्ली आए कि हरियाणा में औरंगजेबी शासन है। दिसंबर से लेकर वे माँगों के लिए लड़ रहे हैं, लेकिन किसी ने नहीं सुना। इंदिरा जी और दीक्षित को सुनाने वे दिल्ली आए, लेकिन दोनों ने इनकार किया। हरियाणा में उनके और उनके घरवालों की जान खतरे में हैं, क्योंकि पुलिस उन्हें नंगा कर रही है। 15 हज़ार शिक्षक दिल्ली आए हैं सख्त सर्दी को झेलते हुए, "बिना किसी

सामान के केवल ओझल लटकाए, इस विश्वास में कि लोकतंत्र में उनकी तकलीफ सुननेवाला कोई है पर उन्होंने देख लिया, कोई नहीं।"[1]

अपने तुच्छ वेतन से घर की जिम्मेदारियाँ निभा नहीं सकते, लेकिन उनके वेतन में वृद्धि करने की गुंजाइश ही नहीं होती। सरकार से कहा तो नौकरी खत्म करने, स्कूल बन्द करने की धमकी देती है। सर्वेश्वर सोचते हैं, अपनी न्यायोचित मांग की लडाई में हर आदमी, हर वर्ग कितना अकेला है। राजधानी में बडे-बडे लेखक, कलाकार, बुद्धिजीवि, वकील, डाक्टर है, पर किसी को उस तकलीफ से सरोकार नहीं जो एक आम शिक्षक झेल रहा है।

हमारे लोकतंत्र की यही विशेषता है कि जहाँ जो कुछ भी घटित है, वह किसी दूसरे जानते तक नहीं। लोगों से चुनी गयी सरकार शासन कर रही है। लेकिन उन्हीं लोगों का साथ देनेवाला कोई नहीं है, "इस लोकतंत्र में क्या किसी का मालूम है?"[2]

दुर्घटनाएँ होने पर भी आम आदमी का साथ देनेवाला कोई नहीं है, उल्टे उसीको गुनाह साबित करने की कोशिश लगी रहती है। सड़कों की बुरी हालत के लिए जनता नहीं सरकार ही गुनाह है। जनपथ' में सर्वेश्वर यह चिन्ता हमारे सामने रखते हैं।

शिक्षा के कार्य पर भी सर्वेश्वर की अपनी व्यक्त धारणाएं है। 'सैनिक स्कूल' में सर्वेश्वर और अधिक सैनिक स्कूलों के होने की आशा करते हैं, 'जितने सैनिक स्कूल खोले जाएँ उतना ही उत्तम है। कम से

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 496
2. वहीं पृ. 497

कम, अनुशसनप्रिय छात्र स्वस्थ नागरिक के रूप में बाहर आएँगे। इससे शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ अनुशासन युक्त पीढी बाहर आएगी।"[1] 'इन्हें पढाओ' में गरीब बच्चों को पढ़ाने की ज़रूरत पर सर्वेश्वर ज़ोर लगाते है।

हमारे देश में गरीबों की शिक्षा की समस्या का अब तक कोई हल नहीं निकला है। आर्थिक व्यवस्था ऐसी है कि गरीब आदमी चाहकर भी शिक्षा के रास्ते पर चल नहीं सकता। गरीब का बच्चा हाथ पैर चलाने लायक नहीं हुआ कि माँ-बाप के साथ रोटी कमाने की चिंता में जुट जाता है। बहुत छोटा हुआ तो माँ-बाप के काम पर जाने के बाद अपने छोटे भाई बहिन की देख रेख करता है, इंधन के लिए लकडियाँ बीनता है। कुछ बडा हुआ तो खुद काम करना शुरु कर देता है। बच्चे का पढ़ना गरीब परिवार की आर्थिक स्थिति को डंवाडोल करना है।

मुक्त मन के भावगीत हैं सर्वेश्वर का यह निबंध-संकलन। चाहे वह समीक्षा हो, चाहे यात्र-वृत्तांत, या आत्मलेख, या चाहे साहित्यिक निबन्ध। सबमें किसी की नकल न करनेवाले सर्वेश्वर को देखते हैं। किसी भी कवि या कलाकार की समीक्षा में उन्होने पक्षधरता नहीं दिखाई है। तटस्थ रूप से सभी कृतियों की परख की गयी है। उनकी पसन्द केवल एक ही तरफ है समाज की तरफ आम जनता की तरफ । सब में वे कुछ अतिरिक्त देखते हैं। अतिरिक्त देखने का उनका जो नज़रिया है वह सर्जनात्मकता की खूबी ही नहीं, बल्कि अचूक कामयाबी का निदर्शन भी है।

❖❖❖

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड तीन पृ. 499

पाँचवाँ अध्याय

पत्रकार सर्वेश्वर और उनकी सामाजिक दृष्टि

पत्रकार सर्वेश्वर और उनकी सामाजिक दृष्टि

पत्रकारिता रचनात्मक साहित्य की आधार शिला है। यह एक ऐसा विस्तृत, मिश्रित, त्वरित जनमाध्यम है जिसमें साहित्य की समग्र विधाएँ पल्लवित एवं पुष्पित होती रहती हैं। साहित्य सर्जनात्मकता की मनोरम प्रस्तुति है जबकि पत्रकारिता यथार्थ भावबोध को सहजरूप में संप्रेषित करने की कला है। सर्वेश्वर एक ऐसे साहित्यकार हैं जिनका व्यक्तित्व पत्रकार के रूप में भी प्रदीप्यमान है। ''दिनमान' के स्तंभकार के रूप में 'चर्चे और चर्खे' के नाम पर उन्होंने जो लेख लिखे हैं, वे उनके पत्रकार व्यक्तित्व के साक्षी हैं।

अपनी बेबाक टिप्पणियों में सर्वेश्वर व्यक्ति, परिवार, समाज, संस्कृकति, साहित्य, शिक्षा, राजनीति, कला, संगीत आदि सभी क्षेत्रों में आए परिवर्तनों पर दृष्टिपात करते हैं और अनुभव करते हैं कि आज जीवन में कृत्रिमता का वर्चस्व स्थापित हो गया है, संवेदना का स्रोत सूख गया है, विज्ञान और तकनीकी के विकास ने आत्मीय सम्बन्धों को गहराई से प्रभावित किया है, भावनात्मक सम्बन्ध व्यावसायिकता में बदल गए हैं। सर्वेश्वर की ये टिप्पणियाँ समाजिक जीवन-प्रक्रिया की उपज है। कहना न होगा कि यहाँ सर्वेश्वर की सामाजिक प्रतिबद्धतावाली दृष्टि का विस्तार मिलता है जो व्यापक मानवीय सरोकारों से आबद्ध है।

समाज से जुडी हुई छोटी-सी-छोटी बात भी सर्वेश्वर की कलम की धार से बच नहीं पाती। सबकुछ उनके विचार-विमर्श के विषय बन जाते हैं। चींटी से लेकर हाथी तक घास से लेकर पहाड तक उनकी विचारधारा फेली हुई है। पर इन सबकी अंतर्धारा एक ही है समाज।

नये साल की खुशी में सब लोग रमते वक्त भी सर्वेश्वर के मन में यही चिंता है कि नया वर्ष इस देश की 80 प्रतिशत जनता के लिए क्या नया लाता है? उनकी राय में नया वर्ष तो पैसेवालों के लिए ही है। जिसके पास जितना पैसा है उसके लिए उतना ही नया वर्ष है। लेकिन देश की नंगी, भूखी जनता नये साल में भी अपने घर में ही थम जाते हैं। इसलिए कि सर्दी की रात में बाहर निकलने केलिए गरम कपड़ों की ज़रूरत है। कपडे नहीं है तो कैसे बाहर जाएँगे । और सच तो यह है कि यह हमारा नया वर्ष नहीं है। यह अंग्रेज़ों द्वारा दिया गया नया वर्ष है। हमारा नया वर्ष होली है। अब भी हम अंग्रेज़ों के दिमाग के गुलाम है।

हमारे भारत के लोकतंत्र की यही हालत है कि यहाँ राजनेता और बाकी लोग अलग-अलग तबके में खडे हैं। राजनीतिकों के लिए अलग कानून हैं और आम जनता के लिए अलग। 'तांत्रिकों के देश में' शीर्षक लेख में यही बात सर्वेश्वर कहते हैं । किसी तांत्रिक ने भविष्यवाणी दी कि प्रधानमंत्री इंदिरागाँधी 1982 में दिसंबर 31 तक या तो किसी दुर्घटना का शिकार होंगी या मारी जायेंगी । इस तांत्रिक को गिरफ्तार किया गया है । इस खबर पर सर्वेश्वर तीखी टिप्पणी करते हैं कि

इंदिरागाँधी के मरने की खबर देने के कारण ही उसे गिरफ्तार किया गया है। हमारा देश तांत्रिकों का देश है। सभी लोग, अखबार उनके पीछे हैं। आम आदमी के बारे में क्या क्या न कहते। फिर क्यों उसे गिरफ्तार किया गया।

आज़ादी के बाद के भारत का यथार्थ चित्र 'चोर-चोर' शीर्षक लेख द्वारा व्यंग्यात्मक ढंग से प्रस्तुत करते हैं। आज़ादी के पहले भारत की गरीब जनता में जो आशाएँ थीं, वे सब आज़ादी के बाद निराशा में बदल गयीं। उसके मन में अब भय आक्रमण करने लगा है। गरीब जनता इस भीषण व्यवस्था के विरुद्ध लड़ना चाहती है, पर उसका साथ देनेवाला कोई नहीं है। सर्वेश्वर की भेंट एक नामी मनोचिकित्सक से हुई। उन्होंने अपने एक मरीज के बारे में कहा जिसके कान में हर समय ज़ोर-ज़ोर से 'चोर-चोर' की आवाज़ आती रहती है। उसकी केस हिस्ट्री बताती है कि आज़ादी मिलने के वक्त वह सत्रह साल का था। उस समय बिलकुल ठीक था। 1950 तक आते-आते उसके कान में कुछ भारीपन रहने लगा। 1955 के बाद से उसके कानों में धीरे-धीरे 'चोर-चोर' की फुसफसाहट आनी शुरु हो गयी। उसके माँ-बाप-पितामह आज़ादी की लड़ाई में शामिल हुए थे और उसका परिवार औसत रूप से कुर्बानी देनेवाला परिवार था और आज़ादी के लिए अपनी कुर्बानियों का कोई मुआवज़ा उन्होंने आज़ादी के बाद सरकार से न चाहा था, न मांगा था। कहता है अब तक यह आवाज़ किसी तरह बरदाश्त करता रहा, पर अब असह्य हो गया है। इसीलिए न चाहकर भी उसे इलाज के लिए अस्पताल आना पड़ा। वह एक जागरूक आदमी है। पढ़ता है और सोचता-समझता है। सर्वेश्वर ने

डाक्टर से यह इलाज बनाया कि जितनी ज़ोर की आवाज़ 'चोर-चोर' की कान में आती है उससे ज़्यादा ज़ोर से वह खुद 'चोर-चोर' चिल्लाए ताकि वह आवाज़ दब जाए। तब उस मरीज़ ने कहा कि यदि सब लोग - उसके घरवाले, पास-पडोस वाले, सब इकट्ठे होकर चिल्लाएँगे तो दब जाएगी। 1950 तक आते-आते भारत का शासन लुटेरों के हाथ पड़ा और राष्ट्र-सेवा के नाम पर देश का सब कुछ लूटने लगे। एक जागरूक आदमी जिसने आज़ादी के पहले भी भारत को देखा हो, भारत की अब की स्थिति सह नहीं सकता। देश की गरीब जनता इकट्ठे नहीं है, इसीलिए इसका शोषण हो रहा है। सर्वेश्वर यही संदेश दिलाते हैं कि जब सब मिलकर चिल्लाएँगे तब देश के लुटेरों को पकड़ सकेंगे और देश की लूट करने से बच पाएँगे।

हमारे देश में सब कहीं भ्रष्टाचार फैला हुआ है। अपने कुछ काम करने के लिए आदमी को घूस देना पड़ता है। राशन कार्ड का मामला तो भ्रष्टाचार में पूरी तरह गोता लगाया हुआ है। गरीबों को राशन कार्ड मिलने के लिए कितने रुपए घूस देने पड़ते हैं। 'गरीब और राशन कार्ड' शीर्षक लेख में सर्वेश्वर समाज के नीची तबके के लोग झुग्गीवालों की परेशानी हमारे सामने लाते हैं। उन गरीब आदमियों से रोज़ किसी-न-किसी कारण बताकर राशन अधिकारी पैसे माँगते हैं। राजधानी के लाखों झुग्गीवालों को राशन दफ्तर के इस भ्रश्टाचार का सामना करना पड़ रहा है। दुकानदार और राशन क्लर्क और अधिकारी भी उसको नोचने और लूटने में मिले हुए हैं। सर्वेश्वर खुलेआम कहते हैं कि कोई भी उनकी सहायता करने न आएगा यदि वे शिकायत करें तो भी।

'क्या मनोरंजन बिगाड़ता है?' शीर्षक लेख के माध्यम से सर्वेश्वर कहते हैं कि आज के मनोरंजन के माध्यम समाज को निकम्मा बना रहे हैं। वे तो आम आदमी से बहुत दूर हैं और उन्हें झूठे ख्वाबों में मग्न कराते भी है। इसलिए सर्वेश्वर की राय में सिनेमा जैसे माध्यमों पर रोक लगाए तो उतना अच्छा ही है।

भारत धर्मों का देश है। सभी धर्म वाले भाईचारे की भावना लिए रहते हैं। यही भारतीयों का ढ़ोंग है। पर वास्तविकता क्या है? एक ही धर्म के लोगों के बीच तक ऊँच-नीच का भेदभाव है, धर्मों के नाम पर एक-दूसरे से पृथक खडे हैं। पर ये सब राजनीतिकों का काम है। वोट मिलने केलिए वे हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच नफरत की भावना पैदा करते हैं। पर आम जनता को इससे कुछ लेना-देना नहीं है। क्योंकि उनकी ज़िन्दगी वैसी की वैसी रह जाती है। 31 जुलाई 1981 को लाल किले के मैदान में कुछ ग्रामीण लोग हरिजन से मुसलमान बने थे। इसका कारण यह है कि हिन्दु धर्म में उनको अछूत मानते हैं। एक लड़के ने जब कुएँ से पानी लिया, तब ठाकुरों ने उसकी पिटाई की। लेकिन किसी ने भी उस लड़के का साथ नहीं दिया। केवल एक व्यक्ति आए, उनके इलाके का मुल्लाजी। मुसलमानों ने उनको साथ तक बराबरी का बर्ताव किया। उनके बदलाव के बारे में पूछा गया तो बोला, 'हम क्या हो गए, यह नहीं जानते साहब बस इतना जानते हैं कि जो हो गए हैं उससे हर वक्त की बेइज्जती से पीछे छूट गया। कुत्ते के मुँह पर भी बार-बार थूको तो वह आपको चाटेगा नहीं। आखिर हाथ, पैर, नाक, कान मुँह वही हैं। अपना

कुछ बदला नहीं। बस भगवान बदल गया खुदा हो गया। उसके दरबार में ऊँच-नीच नहीं। सो साहब उसीकी इबादत करेंगे।"[1] आदमी को इन्सानियत की ज़रूरत है, अपने अभिमान की रक्षा की ज़रूरत है। क्या हिन्दु क्या मुसलमान मनुष्य ही बडा है, मनुष्यत्व ही महत्वपूर्ण है।

जाँच कमेटी बैठाओ और छुट्टी पाओ' शीर्षक लेख में जाँच कमेटियों की निरर्थकता पर सर्वेश्वर प्रकाश डालते हैं । इसमें वे कहते हैं कि हमारे देश में प्रशासन का काम जाँच कमेटियाँ बैठाना है। कुछ भी घटित हो जाए, छोटी या बडी, जाँच कमेटी को दायित्व देकर प्रशासन हाथ धोएगा। ज़हरीली शराब पीकर मरनेवालों की संख्या बढ़ रही है, जाँच कमेटियों की गिनती भी बढ़ रही है। लोगों की जुबान बंद करने के लिए सत्ता के हाथ में एक ही उपाय है, जाँच कमेटी बैठाना। सर्वेश्वर की राय में इन सबका संबन्ध संपूर्ण सामाजिक-राजनीतिक ढाँचे से है। ज़हरीली शराब पीकर बैंगलूर में तीन सौ से अधिक लोग मर गए, इसके पीछे की वास्तविकता सर्वेश्वर परखते हैं। ज़हरीली शराब बेचनेवाला दुकानदार या एजेण्ड तो पकडा भी जा सकता है, लेकिन वह पैसेवाला गिरोह जो यह शराब बनाने का धंधा करता है, उसको कोई भी नहीं पकडेगा क्योंकि उसके पैसे की नींव पर ही सत्ता और प्रशासन की इमारत खडी हुई है। इसलिए बनानेवाला ही मारनेवाला है, मारनेवाला ही जाँच कमेटी बैठानेवाला है। वही रपट लिखता है, और अगली दुर्घटना तक के लिए फाईल को बंद करके रख देता भी है।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड चार पृ. 86

भारत और पाकिस्तान के बीच आदान-प्रदान, दोस्ती का आच्छा संबंध हो, सर्वेश्वर अपना यह कामना 'आम और लीची' द्वारा प्रकट करते हैं। भारत और पाकिस्तान का आम आदमी यह चाहता है कि अपने देश की खुशियों में दूसरे भी शामिल हो जाए। आम और लीची सभी त्योहार, मौसम में एक-दूसरे से बाँटने का माहौल हो। "दरवाज़े खोल दिए जाएँ ताकि भारत के तमाम लोग जिनके दोस्त-अहबाब, भाई-बन्धु, परिवार के लोग पाकिस्तान में हैं, हर मौसम में, हर त्योहार पर-ईद, बक्रीद, होली-दीवाली अपने पाकिस्तानी भाइयों को मोहब्बत भरे तोहफे भेज सकें और पाकिस्तानी भाई अपने भारतीय भाइयों को।"[1]

आम और लीची दोनों में गुठलियाँ हैं, उनमें फरक दोनों के आकारों को छोटे-बडे होने के कारण है। दोनों में छिलके हैं, उनके रंग अलग-अलग है, पर दोनों के गूदे समान हैं, मिठास और स्वाद से भरपूर अपनी-अपनी खासियत लिए। उसी प्रकार ही भारतीय और पाकिस्तानी हैं, सभी मनुष्य है । हमारे छिलके न मोटी हो जाए, इसी में हमारी विजय है। सर्वेश्वर की सामाजिकता संकुचित नहीं है। वह देश-काल की सीमा से परे हैं।

हमारे देश में बेरोज़गारों की सख्या बढ़ रही है। पढ़ाई खतम करने के बाद वर्षों तक एक नौकरी के इंतज़ार में युवा लोग अपना अच्छा यौवन बिता रहे हैं। यह तो हमारी सामाजिक व्यवस्था की बिडंबना है।

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड चार पृ. 90

कोई आदमी यदि तुरंत काम चाहता है तो उसे तुरंत ही काम मिल जाए, ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए। पढाई खतम करके ही नौकरी मिलने की प्रतीक्षा करना एक अजीब सी बात मानी जाती है। 'एक विचित्र भय' शीर्षक लेख द्वारा सर्वेश्वर यही चिन्ता, आशा प्रकट करते हैं।

गाँधीजी ने जिस विशाल अर्थ में भूख हड़ताल की थी, उतनी संकुचित अर्थ में आज भूख हड़तालों का आयोजन कर रहे है। 'भूख हड़ताल' शीर्षक लेख में सर्वेश्वर कहते हैं कि महात्मागाँधी ने कोई मांग मंगवाने के लिए भूख हड़ताल कभी नहीं की। लेकिन आज सब कहीं भूख हड़ताल की जा रही है। किसी न किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए 'ब्लैकमेल' के समान भूख हड़ताल की जाती है। इन भूख हड़तालों की हैसियत ही क्या है जब हमारी व्यवस्था, हमारी समाज ममतामय नहीं है। भूख हड़ताल उसी समाज में असरदार होगी, जहाँ इन्सानियत हो। गाँधीजी ने आत्मशुद्धि के लिए भूख हड़ताल की थी। पर आजके नेता लोग विज्ञापन के लिए। इसलिए भूख हड़ताल को आपसी राजनीति का शस्त्र न बनाया जाए, उसे माँगें मनवाने के लिए न इस्तेमाल किया जाए और जो लोग सचमुच अन्याय और शोषण के खिलाफ इसे इस्तेंमाल करना चाहते हैं, वे इस ममताहीन समाज में उसकी व्यर्थता समझ लें। अंग्रेज़ी शासन की अमानवीयता के विरुद्ध गाँधीजी ने हड़ताल किया था तो आज हमारे समाज में मानविक मूल्यों के विरुद्ध हड़ताल हो रहे हैं। 'निर्दोष की मौत' शीर्षक लेख में सर्वेश्वर डाक्टरों की हड़ताल पर बात कर रहे हैं। बडे डाक्टरों और छोटे डाक्टरों के बीच मतभेद के कारण

हड़ताल हैं जिसका बुरा असर पड़ रहा है मरीज़ों पर। तीस से ज़्यादा मरीज़ मर गए, पर डाक्टर लोग बताते हैं कि वह हड़ताल के कारण नहीं है क्योंकि इतने लोग तो रोज़ मरते हैं। किसी को भी गरीबों की चिंता नहीं है। अपनी सुविधाओं के बढ़ाव केलिए वे हड़ताल कर रहे हैं। सर्वेश्वर अपना क्रोध उनपर बरसाते हैं कि गरीब मरीज़ ही आम तौर पर बिना इलाज़ मरता है। ये हड़ताली डॉक्टर उनकी मौत से खेल रहे हैं। इस देश को ये भूल गए हैं। यहाँ जितनी सुविधा उन्हें है वह नियामत माना जाना चाहिए। लेकिन इस देश में न राजनीति, न डॉक्टर, किसी को गरीबों की चिंता नहीं है।

'नैतिक सूखा' लेख द्वारा भारत में जनमती और बढ़ती आनेवाली अनैतिकता की ओर सर्वेश्वर हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। उनके अनुसार हमारे भारत में पूँजिपतियों की संख्या बढ़ रही है और गरीबी भी बढ़ रही है।

आकाशवाणी द्वारा प्रसारित एक समाचार पर सर्वेश्वर अपनी टिप्पणी देते हैं । समाचार यह था कि कृषि वैज्ञानिकों द्वारा गुलाब के फूल की सात नयी किस्में खोजी गयी हैं। सबसे सुन्दर फूल को 'जवाहर' नाम दिया गया है। इस समाचार की नैतिकता पर सर्वेश्वर विचार करते हैं। सर्वेश्वर की समझ में नहीं आता कि जब हमारे देश की आधी जनता सूखे की चपेट में है, जानवर प्यासे, बिना चारे के लावारिस से घूमने लगे हैं, किसान साल-भर के गुज़ारे की चिंता में खुद सूखने लगे हैं वहीं पर देश

के अंग्रेज़ीदा वैज्ञानिक गुलाब की किस्में खोजने में राष्ट्रीय साधनों का दुरुपयोग कर रहे हैं। हमारे समाज के सोच की दिशा इस प्रकार है।

इसका मतलब यह नहीं कि गुलाब के फूल की आवश्यकता नहीं है। बल्कि सवाल यह है कि गरीब देश में अन्न और गुलाब में प्राथमिकता किसको दी जानी जाहिए। सर्वेश्वर की राय में "सारा देश जब सूखे की चपेट में हो तो गुलाब पर धन और प्रतिभा बरबाद करने से लगता है कि इस देश में नैतिक सूखा भी पड़ा हुआ है। जब दस बच्चे खाने को हों तो घर के सामने के सहन में केवल सब्जी लगाइए फूल नहीं। एक-एक इंच ज़मीन को ज़िंदा रहने के लिए इस्तेमाल कीजिए।"[1]

वास्तव में यह तो सत्ता के निकट जाने की सुविधाभोगी वैज्ञानिकों की कोशिश है। सौन्दर्यबोध का नाम लेकर सत्ता से चिपकने की यह कोशिश बिलकुल अनैतिक है। भूखी औरत का बालों में फूल लगाकर बैठने से उतनी तकलीफ नहीं होती जितनी सत्ताधारी की हवेली के सामने बैठे देखने से। सर्वेश्वर आकाशवाणी पर भी इस समाचार का व्यापक प्रसार करने के लिए टोकते हैं कि आकाशवाणी से ऐसे समाचार को प्रसारित नहीं किया जाना चाहिए जिससे प्राथमिकताओं से न जूझकर पलायन के मार्ग खोजनेवालों और सत्ता की कृपादृष्टि पानेवालों का हौसला बुलंद हो।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड चार पृ. 183

समाज में अत्याचार होते देखकर भी चुप्पी साधनेवाले धर्मगुरुओं के ढोंग पर सर्वेश्वर अपना क्रोध प्रकट करते हैं। 'चुप की बीमारी' शीर्षक लेख में पारसबीधा और पिजरा जैसे अमानुषिक कांड के घटित होने पर भी कुछ न बोलनेवाले देश के तथाकथित धर्मगुरुओं, बुद्धिजीवियों को अपनी कटु आलोचना का विषय बनाते हैं। सर्वेश्वर पूछते हैं कि जब धर्म के नाम पर अनाचार हो रहा है तब बोलनेवाले कहाँ खो जाते हैं। यह इसलिए कि हरिजनों पर जो अत्याचार हो रहे हैं उनमें सवर्णों को कुछ कहने के लिए नहीं है? बेचारे गरीब जनों की हत्या की जाना उनका विषय नहीं है। लेकिन ये धर्मगुरु ही गोहत्या पर देशव्यापी आंदोलन तक चलाते हैं। सर्वेश्वर को दुख इस बात पे है कि आदमी को छोड़कर सभी जीवों से धर्मगुरु को प्यार है खासकर गरीब हरिजन को छोड़कर। "यदि हरिजन ताकतवर हो जाएँ और सवर्णों पर हमला बोल दें, उनके घरों में आग लगा उन्हें गोलियों से भूनने लगें, तो देखना ये धर्मगुरु ज़रूर बोलेंगे। ....सच तो यह है कि हमारे धर्मगुरु गरीब के खिलाफ हो रही अमानुषिक् साजिश में हिस्सेदार हैं।"[1]

सर्वेश्वर ने यह बात सन् 1980 में कही थी, पर अब भी यही बात हमारे समाज में हो रही हैं। धर्मगुरुओं को यह हक नहीं है कि वे इसे पारस्परिक अदावत की लड़ाई या राजनैतिक लड़ाई कहकर टाल दें। क्योंकि बुनियादी रूप से उनकी जातिव्यवस्था ही इसकी जिम्मेदार है।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड चार पृ. 197

हरिजनों के खिलाफ हो रहे इन बर्बर हत्याकांडों पर बोलना चाहिए । ऐसा साफ-साफ कहना चाहिए कि हम हरिजनों पर हो रहे अन्याय के खिलाफ ही नहीं बल्कि लडाई में उनके साथ हैं।

रही चुप्पी साधनेवालों की बात। यदि कोई आम व्यक्ति सत्ता के विरुद्ध कुछ भी बोलने को उद्यत होता है तो उसकी मारपीट होती है। 'क्यों-क्यों मत कर' शीर्षक लेख में सर्वेश्वर ने यही बात कही है। चुनाव के वक्त राजनीतिकों द्वारा क्या-क्या वादे दिए जाते हैं। चुनाव के बाद यदि एक ने भी आवाज़ उठायी तो उसका क्या परिणाम होगा, सब जानते हैं। हमारे जनतंत्र में 'क्यों-क्यों' का सवाल ही नहीं उठता, क्योंकि उसका जवाब न मिलेगा बल्कि गुंडों द्वारा मार-पीट ज़रूर मिलेगी।

भारत में सरकारी कर्मचारी की कामचोरी की बात सब लोग अति उत्साहकता से कहते हैं। लेकिन उसके कारण पर कोई नहीं सोचते। 'एकतरफा नैतिकता की दुहाई' शीर्षक लेख में सरकारी कर्मचारियों पर हो रहे आरोप के कारण सर्वेश्वर अपनी रायी प्रकट करते हैं। उनकी राय में सरकारी नौकरी से जो तन्ख्वाह मिलता है, उससे कुछ नहीं बनता है एक प्रकार का असुरक्षित भाव उनके मन में हमेशा समाए हुए है, जिससे उनका मन काम पर नहीं लगती। सर्वेश्वर की राय में ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करनी चाहिए कि काम करने वाले में काम के प्रति रुचि हो। उसे लगे कि वह उसका काम है, उसका ही पैसा है जिसे उसे काम करके अर्जित करना है। लेकिन हमारे यहाँ ऐसा नहीं है। वह जानता है कि काम करने या न करने से कोई फर्क पड़नेवाला नहीं है।

भ्रष्ट थानाशाही ने भी हमारे यहाँ जनता का जीना हराम कर दिया है। जहाँ भी कोई अवांछित घटना हो जाए, उसी वक्त ही पुलिस को खबर मिलती है और गुनाहदार का पता भी पुलिस को मिलता है। फिर भी कई मामले ऐसे ही रह जाते हैं। सर्वेश्वर यह मानते हैं कि पुलिस को घूस देकर उन्हें चुप करा दिया जाता है। फलतः यहाँ अपराधियों को छोड़ दिया जाता है और निरपराधी फँस जाते हैं। 'मलखानसिंह की खोज में', 'भय की पराकाष्ठा, 'अपराधों के छोर', आदि लेखों में सर्वेश्वर पुलिस की भ्रष्टाचारिता पर प्रकाश डालते हैं। देश के पहरेदार लुटेरे हो जाते हैं। देश की सुरक्षा के नाम पर देश को अरक्षितावस्था में डाल दिया जाता है। यही हमारे देश की विडंबना है।

सडी -गली राजनीति पर सर्वेश्वर की तीखी टिप्पणियाँ

भारत की राजनीति इतनी सडी हुई है कि उससे बदबू आने लगी है। इस भ्रष्ट राजनीति पर सर्वेश्वर प्रहार करते हैं। जिस देश की आधी से ज़्यादा जनता अकाल में सूख रही हैं, राज्य पर करोंडों का कर्जा है, उसी देश के राजनेता सरकारी खर्च पर गर्मियों में विदेश चले जाते हैं। वे ही नहीं उनका पूरा परीवार यानी, पत्नी, बच्चे, साली, समधी समधिन आदि भी उनका साथ देते हैं। जयपुर की 'इतवारी पत्रिका' में सरकारी खर्च पर विधेयकों द्वारा तीर्थों की सैर के बारे में एक तकलीफदेह टिप्पणी छपी है जिसमें कहा गया है कि राजस्थान के कुछ विधेयक गर्मियों में देश के ठंडे स्थानों की ओर सैर के लिए गए। इस अभावग्रस्त देश में ऐसी यात्राओं की नैतिकता पर उस पत्रिका ने प्रश्नचिह्न लगाया है।

सर्वेश्वर की राय में यह राजस्थान में मात्र घटित घटना नहीं है। देश भर के राजनेता ऐसा करते हैं। लोग भी यही मानते हैं कि जो ऐसा नहीं करते वे मंत्री नहीं है। इसकी नैतिकता की किसी को चिन्ता नहीं है। सर्वेश्वर इसके लिए जनता को कोसते हैं, 'सो पाठको? तीर्थ यात्रा, पूजापाठ, देव-दर्शन के नाम पर कितना भी सरकार अपव्यय करे, उस पर देशवासियों का ध्यान नहीं जाता। वह मानता है कि वह तो पवित्र काम है। जब ऐसी मानसिकता हो तो शिकायत किससे करें? देश में दो-चार प्रतिशत लोग नैतिकता की तलाश नहीं कर सकते। उसके लिए पूरे देश को निकलना होगा।"[1] मंदिर जानेवाले सब भ्रष्ट चोरबाज़ारिये है और यह दावा करते हैं कि देश की भूखी जनता के लिए वे प्रसाद लाए हैं। इन कामचोर राजनीतिज्ञों पर सर्वेश्वर व्यंग्य करते हैं।

सत्ता का चरित्र धीरे-धीरे दूसरों की स्वतंत्रता छीनना होता जा रहा है आदमी जब आदमी से ही यह हक छीनने को तैयार है, तब उसके सामने जानवर की क्या बिसात है? यह सर्वेश्वर की संवेदनात्मक टिप्पणी है उस भैंसे के प्रति जो कोहिमा के बूचडखाने से अपनी-जान बचाकर भागा। वह सड़कों पर दौड़ता हुआ सीधे सीमा सुरक्षादल के अतिथि निवास में आश्रय के लिए घुस गया। उसे वहाँ से भगाने की बहुत कोशिश की गयी लेकिन वह मौत के डर से वहाँ से नहीं निकला। इस मौके पर कोहिमा के जिला इंदिरा कांग्रेस के अध्यक्ष आर. सोपु अवतरित हुए जो

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड चार पृ. 19

ग्राम रक्षक अधिकारी रह चुके हैं। उन्होंने रायफल उठाई और उस भैंसे का काम तमाम कर दिया।

सर्वेश्वर की समझ में नहीं आता कि उस भैंसे ने क्या किया। वह कोई आक्रमणकारी वन्य पशु नहीं। उसने जो ताकत दिखायी थी वह अपनी जीवन रक्षा के लिए दिखायी थी। लेकिन आज किसी को भी जो स्वतंत्र रहना और आत्मरक्षा के लिए अपनी ताकत का इस्तेमाल करना जानता है, उसे जीवित नहीं रहने दिया जा सकता।

यदि उस भैंसे की जगह आदमी होता तो भी उसकी नियति भी ऐसी ही होती। आज आदमी और जानवरों में कोई फर्क नहीं है। जानवर में जो हिंसात्मक भाव है वही मनुष्य में भी है। एक निरीह प्राणी की वेदना में सर्वेश्वर भाग लेते हैं। उस भैंसे की मृत्यु ने एक अजीब-सी बेचैनी सर्वेश्वर में जगा दी है। अपनी समाज-सेवा और बहादुरी को दिखाने के लिए मात्र उस अधिकारी ने भैंसे की हत्या की थी। उसकी मौत केवल किसी की यशवृद्धि का एक अदना-सा साधन बनकर रह गयी है।

सर्वेश्वर लोकतंत्र का अपमान करनेवाले किसी भी बडे से बडे राजनेता की खिल्ली उडाते हैं। इंदिरागाँधी ने जब राष्ट्रपति चुनाव में पार्टी हित को मानने की बात अपने सदस्यों से कही थी, सर्वेश्वर उसपर तीखा प्रहार करते हैं। 'इदिराजी मानती है कि उनकी पार्टी का हित ही लोकतंत्र है और उनके अतिरिक्त सब लोग लोकतंत्र विरोधी है। भारत का और लोकतंत्र का हित केवल उनके सत्ता में बने रहने से ही होगा।"[1]

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड चार पृ. 23

लोकतंत्रीय दृष्टि का पहला आधार ही यह है कि वह दूसरों की नीयत पर शुबहा न करे। लोकतंत्रीय दृष्टि समान मंच पर सबको खड़ा देखती है और आरोपों पर नहीं, संवाद पर जीती है। इंदिरागाँधी की कटु आलोचना करते हुए सर्वेश्वर कहते हैं कि वे राष्ट्रपति पद पर एक ऐसा आदमी नहीं चाहतीं जो उसकी कमियों और असफलताओं पर उँगली उठा सके, बल्कि ऐसा आदमी चाहती हैं जो उनकी गलतियों और कमज़ोरियों का भी समर्थन करे। वे एक स्वतंत्र विवेकवान व्यक्ति से डरती हैं।

जिस इंदिराजी ने 1969 में चुनाव के वक्त अंतरात्मा की आवाज़ की वकालत की थी, वही इंदिराजी ने 1982 में राष्ट्रपति चुनाव के वक्त कहा कि अंतरात्मा की आवाज़ सुनना लेकतंत्र का अपमान है। इससे एक कमजोर इंदिरा की छवि उभरती है।

सर्वेश्वर यह टिप्पणी देते हैं कि अंतरात्मा की आवाज़ को मजाक में न लिया जाये। घटिया, दब्बू स्वार्थी मनोरोगी और लोलुप आदमी यह आवाज़ सुन नहीं सकता, उसकी आत्मा मर चुकी होती है। यह एक सर्वोच्च नैतिक मूल्य है जिस पर युगों-युगों से चली आयी मानव संस्कृति टिकी हुई है लोकतंत्र तो इसका एक छोटा सा हिस्सा है। इससे विमुख होना, इंसानियत से, इंसान के इतिहास से विमुख होना है।

जनता द्वारा चुने जाने पर हमारे राजनेता बहुत जल्दी 'आम' से 'खास' बन जाते हैं। 'फिर उनकी बारी है। जनाता ने भी सांसदों को ऐसा समझ रखा है कि उनकी पाद-सेवा सबको करनी है। जितना भी

कुकृत्य करें, पूछनेवाला कोई नहीं है। सांसदों की गाडियाँ सडक में इस तरह चलायी जाती हैं कि लोग मर तक जाते हैं, फिर भी पूछनेवाला कोई नहीं होता। लेकिन जब जनता आवाज़ उठाने लगती है, तो तथाकथित सांसद अपना शौर्य भूल जाते हैं और अपने को साधारण से साधारण मानने लगते हैं। सच तो यह है कि उन्हें जनता से डर है। 'एक शरीफ आदमी' शीर्षक लेख में सर्वेश्वर ऐसे एक सांसद की हँसी उठाते हैं।

राजनीतिज्ञों ने भारत का ऐसा हाल बनाया है कि भारत गंदगी, शोर और पाखण्ड का पर्याय बन गया है। हमारे नेता लोग चुनाव के वक्त ही जनता के पास आते हैं और चुनाव के बाद उनका पता तक नहीं मिलता। लोकतांत्रिक व्यवस्था में चुनावों की महत्वपूर्ण भूमिका है। पर आज हमारे लोकतंत्र में चुनाव भी प्रहसन बन गया है। आम जनता को चुनाव या चुनाव के नतीजे में कोई दिल्चस्पी नहीं हैं। वे वोट इसलिए देते हैं कि वे विवश हैं। चुनाव और चुनाव के परिणामों में दिलचस्पी केवल राजनीतिक दलों के नेताओं, कार्यकर्ताओं या उन लोगों में है जो सत्ता से अपने पेशे या अपने स्वार्थ के कारण जुडे या जुड़ते हैं। 'थपकियाँ और चपत' शीर्षक लेखमें सर्वेश्वर इस सच्चाई को उजागर करते हैं। चुनाव में कौन जीते या हारे, आम आदमी को यह जानने की इच्छा नहीं है क्योंकि उससे उसे कोई सरोकार नहीं है। क्योंकि वह जानता है कि चुनाव का नतीजा कुछ भी हो, उसे ऐसा ही रहना है। उसकी ज़िन्दगी में कोई फर्क नहीं पड़ता है। सर्वेश्वर की राय में देश के कम-से-कम सत्तर प्रतिशत

लोगों को चुनाव में, चुनाव के नतीजों में कोई दिलचस्पी नहीं। क्योंकि देश की अधिकांश जनता सत्ता से कोसों दूर रहती है।

इस सड़ी राजनीतिक व्यवस्था में युवकों की हालत बहुत बरी बन गई है। उन्हें काम दिलानेवाला कोई नहीं है, उनकी चिन्ता करनेवाला कोई नहीं है। समाज में प्रचलित अन्याय के विरुद्ध वह लड़ना चाहता है तो उसको दबाने की कोशिश सब लोग करते हैं। भारत अपनी युवसंपत्ति का नाश कर रहा है। राजनेताओं के लिए ऐसे युवा लोग चाहिए जिसके खून उबल रहे हैं। वे अनुयायी चाहते हैं, विरोधी नहीं। बेकार युवक ही उनका साथ देते हैं। लेकिन जो युवक दिन-रात मेहनत करते हैं, उन्हें अपने प्रति किए जानेवाले अन्याय सहनीय नहीं है। इसके लिए वे हथियार तक का इस्तेमाल करते हैं। राजधानी में साउथ एवन्यू में इंका के एक संसद सदस्य के घर में घुसकर दो हथियारबंद युवकों ने पांच व्यक्तियों को नौ घंटे तक बंधक बनाकर रखा जिन्हें बाद में पुलिस ने अखबार के संवाददाता होने का स्वांग रचकर गिरफतार किया, इस घटना पर सर्वेश्वर अपने विचार प्रकट करते हैं, 'क्या कोई और रास्ता बचा है?' शीर्षक लेख में। ये युवक मध्यप्रदेश के झारघंड इलाके के कोयला खदानों में काम करनेवाले बीस हज़ार खान मज़दूरों की बुनियादी ज़रूरतों की ओर संसद सदस्य का ध्यान आकर्षित करना चाहते थे जो उसी इलाके के निर्वाचन क्षेत्र से चुने गए हैं।

इस घटना के जिक्र करके सर्वेश्वर यही सोच हमारे सामने रखते है कि क्यों आज का युवक समाज के बुनियादी सवालों की ओर सत्ता का ध्यान आकर्षित करने के लिए हथियार की ताकत इस्तेमाल करन की दिशा में बढ़ रहा है जबकि सब जानते हैं कि हिंसा की ताकत सीमीत ताकत है और किसी हद तक अवांछित और अर्थहीन भी है। सर्वेश्वर की राय में कोई भी क्रांतिकारी अपने भीतर से हिंसा का समर्थन नहीं करता। हिंसा का रास्ता मजबूरी का रास्ता है। जब सब द्वार बंद हो तो खिड़की से कूदना पड़ता है। यही अंतिम रास्ता है। इसीप्रकार ही युवा लोग तभी हथियार अपनाते है जब सब उनको अनसुना करते हैं, इसलिए सर्वेश्वर यही सलाह देते है कि सत्ता को इन सच्चे लोगों का रचनात्मक साथ लेना चाहिए। इनके जीवट, आत्मोत्सर्ग और जुझारूपन का सही इस्तेमाल करना चाहिए।

'टिकटार्थी' शीर्षक लेख द्वारा सर्वेश्वर चुनाव के वक्त टिकट के लिए पागल होकर भागनेवाले टिकटार्थियों की हँसी उडाते हैं। वे कहते हैं, जिस तरह बरसात में गाँव में हर जगह मेंढक ही मेंढक दिखाई देते हैं वैसे ही चुनावों के मौसम में हर जगह टिकटार्थी दिखाई देते हैं। वे राजधानी में आकर बसते हैं कि एक बार किसी न किसी नेता से मुलाकात हो जाए। उनके लिए अमुक पार्टी की टिकट ही चाहिए, ऐसा कोई भेद-भाव नहीं है। जो पार्टी टिकट देगी, वे उसका साथ देंगे। सर्वेश्वर से मिलने आए एक टिकटार्थी जो कालेज में लेक्चरर है, पावर में जाने की एंबीशन लेकर चुनाव लड़ने आया है। वह कहता है कि यदि इंदिराजी उसे टिकट

नहीं देंगी तो सी.पी.आई में चला जाएगा। क्योंकि आज सभी दल बदल रहे हैं । चुनाव में जीतने के बाद क्या करना है, उसने अभी तक यह सोचा नहीं है, पहले टिकट मिलनी है। सर्वेश्वर हमें यह समझाते हैं कि आज चुनाव लड़ना एक धंधा हो गया है जिसके लिए किन्हीं सिद्धान्तों, जनसेवा आदि की ज़रूरत नहीं है। केवल जान-पहचान की ज़रूरत है, ताकि टिकट मिले। पहले राजनेता कुछ लक्ष्य को लेकर चुनाव लड़ते थे, अब चुनाव लड़ना ही उनका लक्ष्य बन गया है।

दिल्ली की ठिठुरती ठंड में 'समकालीन तीसरी दुनिया' नाम की एक पत्रिका द्वारा आयोजित निरंकुश तानाशाही विरोधी राष्ट्रीय विचार गोष्ठी की तुलना देश में हो रही अन्य राजनीतिक गोष्ठियों से करते हुए सर्वेश्वर कहते हैं कि यह गोष्ठि बिल्कुल अलग थी। इस गोष्ठी में 14 राज्यों के 72 किसान मज़दूर संगठनों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। हम जानते हैं कि हमारी राजनीतिक गोष्ठियों में भाग लेनेवाले कम हैं, बैठकर सुननेवाले उनसे भी कम हैं। लेकिन उस गोष्ठी में लोग कहीं घूमने नहीं गए। "सुबह से रात तक गोष्ठी में वे बैठे रहते थे और बडी आशा के साथ मंच को निहारते रहते थे और अपनी बारी आने पर मंच पर जाकर अपनी खुरदुरी, टूटी-फूटी भाषा में अपनी लडाई की तकलीफ वयान करते थे, लेकिन जाते-जाते भी इस लड़ाई को जारी रखने का अटूट संकल्प दोहरा जाते थे।"[1] इस गोष्ठी में भाग लिए लोग बेढंगे

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड चार पृ. 59

कपड़ों में थे उनको दिखावे से नहीं काम से मतलब था। आज की राजनीतिक गोष्ठियों में भाग लेने वाले राजनीतिक अपनी बनी-संवरी सूरत से, अपनी लकदक खादी की पोशाक से, अपनी तराशी हुइ जवाब और भाषा से इस देश के आम आदमी से दूर हो गया है। लेकिन इस गोष्ठी में भाग लेनेवाले ऐसे नहीं थे।

लाखों रुपए खर्च कर जो गोष्ठियों बनायी जा रही हैं उनमें भाग लेनेवाले बहुत कम हैं। इसमें आनेवाले प्रतिनिधियों को रहने केलिए बडे-बडे होटल तैयार किये जाते हैं, और आराम की ज़िन्दगी जीकर बढिया खाना खाकर गोष्ठी में आने की सर्टिफिकेट लेकर जाते हैं। गोष्ठियों के अंत में आम अपनी सोचेगा, कि इस गोष्ठी से हमारा क्या लाभ हुआ। दो-तीन दिन बैठे रहने पर भी कुछ असर न पड़ने की निराशा छा जाती है। सर्वेश्वर इन गोष्ठियों की हैसियत पर ही प्रश्न-चिह्न लगाते हैं।

लेकिन किसानों-मज़दूरों की इस गोष्ठी में कोई 200 लोग नित्य भाग लेते है। अखबार वाले नहीं थे, एकाध को छोड़कर लेखक, कलाकार और बुद्धिजीवि भी नहीं थे। अधिकतर लोग अपने-अपने खर्च पर दूसरे दर्जे के रेल के डिब्बे में आए थे। रात में झपकी लेने के लिए कुछ कमरों में ठूँसकर सोते थे। उन्हें कोई असुविधा नहीं थी क्योंकि वे इससे भी बदत्तर स्थिति में जी रहे थे, और वे किसी ऐसे राजनीनिक दल के सदस्य नहीं थे जिसका सम्बन्ध सत्ता की कुर्सी से या किन्हीं और कुर्सियों से हो, जिनके चेहरे, कपड़ों और भाषा के हिसाब से जिनका

खाना भी पंच सितारे होटलों के खाने की महक से भरा होता है। सर्वेश्वर अपने इस लेख द्वारा आजके राजनेता और राजनैतिक सम्मेलनों को अपनी कटु आलोचना का विषय बनाते हैं।

हँसी-मज़ाक में भी सर्वेश्वर अपना कार्य बताते हैं। 'लोकतंत्र का लड्डू' शीर्षक लेख में अमेठी का चुनाव जीतकर लौटने के बाद अखबारवालों को राजीव गांधी द्वारा लड्डू बँटे जाने की खबर पर व्यंग्य करते हैं सर्वेश्वर। लड्डू खाकर सब संतुष्ट हो जाते हैं। और राजीवगाँधी के लड्डू का यशोगान करने लगते हैं।

राजनेताओं के वादे ही लड्डू हैं जो पहले अच्छे लगते हैं, फिर ज़्यादा मिलने पर ऊब पैदा करते हैं। लड्डू खाने के बाद अखबार वाले सब कुछ भूल जाते हैं कि उन्हें लड्डू में चुनाव की ज़ोर-ज़बरदस्ती, धींगा-मुश्ती, भय, लालच, गंदी उखाड़-पछाड़ की बू भी नहीं लगती। क्योंकि अखबारवालों को आगे बढ़ना है। एक पत्रकार ने कहा "जिसका लड्डू खाया है उसका हक अदा करना है। मैं एक अरसे से पत्रकारिता कर रहा हूँ और जहाँ था वही है, जबकि मुझसे जूनियर लोग संपादक बने बैठे हैं। मैंने तय किया है कि मैं भी आगे बढ़ूँगा।"[1] चुनाव के पहले जिन लेखकों ने राजीवगाँधी का विरोध किया था, चुनाव के बाद वे ही लोग अब राजीव गाँधी का ढिंढोरा पीटने लगे हैं क्योंकि उन्हें आगे बढ़ना है।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड चार पृ. 95

'यह दर्ज कर लिया जाये, 'खोदा पहाड़ निकली मछली' आदि लेखों में सर्वेश्वर नागभूषण पटनायक की वर्तमान दशा पर चिंता व्यक्त करते हैं। इतने बडे क्रांतिकारी की अबकी बडी बुरी हालत है। वे मेडिकल इंस्टीट्यूट में पडे हैं, लेकिन उनकी सहायता करनेवाला कोई नहीं है। आंध्रप्रदेश के सेशन जज ने राजद्रोह के आरोप में उन्हें मृत्युदंड दिया था, लेकिन उच्च न्यायालय ने उन्हें छोड दिया है। लेकिन अब तक (सन् 81 तक) उन्हें छोड़ा नहीं गया है।

हमारी आजकी व्यवस्था में गुनाहदार भी बडी सहानुभूति के पात्र बन जाते हैं। और उन्हें न्यायालय द्वारा सजा देने से बचाने की माँग चारों ओर से होती है। ऐसे माहौल में एक क्रान्तिकारी की ऐसी अवस्था बडी शोचनीय है। सर्वेश्वर की समझ में नहीं आता कि क्यों अतीत का क्रांतिकारी पूज्य हो जाता है और वर्तमान का क्रांतिकारी इतना बड़ा अपराधी कि दारुण रोग शय्या पर भी उसे छोड़ा न जा सके? यह इसलिए कि अतीत के क्रांतिकारियों की पूजा से वर्तमान शासकों का रुतबा बढ़ता है और वर्तमान क्रांतिकारियों के स्वीकार करने से उनके अस्तित्व के लिए खतरा बढ़ता है। यह हमारी भ्रष्ट व्यवस्था का परिचायक है। न्यायालयों को मानवीय दृष्टि होने की ज़रूरत पर सर्वेश्वर जोर लगाते हैं।

गाँधीजी, नेहरू, राजाराम मोहनरॉय, स्वामी विवेकानंद, सुभाषचन्द्र बॉस, बालगंगाधर तिलक जैसे आदर्श नेता हमारे भारत को महान बनाते थे तो आज के लोग भारत को पतित बना रहे हैं । कोई भी

ऐसा नेता नहीं है, जिसे आदर्श चरित्र के कहा जा सकें। बच्चों को देखने सुनने और आगे बढ़ने केलिए सहायक देश का नेता कोई भी नहीं है। आज तो सब लोग पार्टी के नेता है। आज़ादी पूर्व के राष्ट्रीय नेताओं जैसा व्यक्तित्व आज किसी का नहीं है। आज हर नेता की कहानी त्याग, तपस्या और बलिदान की कहानी नहीं है, छल, फरेब और जोड़तोड़ की कहानी है। उन्हें देखकर सीघने केलिए कुछ भी नहीं है। हमारी आजकी इस दुस्थिति की आलोचना करते हैं सर्वेश्वर 'कलेंडर' शीर्षक लेख द्वारा।

एक कलेंडर कलाकार से लेखक की मुलाकात हुई और आज के कलेंडरों पर बातचीत हुई जिससे मालूम हुआ कि अब नेताओं के कलेंडर की मांग नहीं है, जबकि आज़ादी के पहले स्वाधीनता संग्राम के दिन देश के नेताओं के कलेंडर बाज़ारों और घरों में भरे होते थे। सारे समाज में देश भक्ति की लहर जगाने में इन राष्ट्रीय नेताओं के कलेंडरों का बडा हाथ था जो घर-घर में पहुँचे हुए थे। बच्चे घर की दीवारों पर उन्हें टंगे देखकर उनके बारे में पूछते थे और इस तरह स्वाधीनता संग्राम के इतिहास से खुद को जुड़ा मेहसूस करते थे और देश की आज़ादी के लिए बडे होकर लड़ने के स्वप्न देखा करते थे।

उस कलेंडर कलाकार ने कहा कि अब ऐसा नेता कहाँ है जिसका कलेंडर लगा सकते हैं। "अब किसी नेता का कलेंडर लगाने, बनाने या बेचने का मतलब उस पार्टी का होना है और पार्टी के होने का मतलब उस पार्टी की गंदगी को ढ़ोना है। एक भी ऐसा नेता आज नहीं है जो देश का नेता हो।"[1]

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड चार पृ. 138

कलेंडर कलाकार ने यह भी बताया कि अब देवी देवताओं का कलेंडर भी बिकता नहीं है क्योंकि धर्म में अब उतनी रोशनी नहीं है। धर्मपरायण मध्यवर्ग का दिल अब धर्म के नाम से दमकता नहीं, बुझा-बुझा रहता है। महापुरुषों और संतों के कलेंडर भी अब नहीं रहे, उनकी जगह अब खिलाडियों और फिल्मी हीरों ने ले लिया है। लेकिन उनके भी कलेंडर नहीं बनते क्योंकि वह रंगीन पत्रिकाओं के माध्यम से घर-घर पहूंचते हैं और काटकर दीवारों पर चिपका लिए जाते हैं। अब केवल सेक्स के कलेंडर ही बिक रहे हैं। औरत की देह के कलेंडर।

हमारे समाज का कितना पतन हो गया है कि नेता, संत, महापुरुष, पौराणिक चरित्र, प्रकृति, देवी-देवता सब दीवारों पर से उतर गए और एक नंगी औरत की तस्वीर उनपर चढ़ गयी। त्याग, तपस्या, प्रेम, करुणा, बलिदान, देशभक्ति सब पर वासना चढ़ बैठी और वही हर समय आँखों के सामने लटकी है। सर्वेश्वर कहते हैं, कामुकता कमज़ोरी का लक्षण है। क्या यह समाज इतना कमज़ोर हो गया है?

'असली जगजीवनराम की खोज' कुर्सी पर, हल, 'जब्बर चोर सेध में गावे' 'हर जोर जुलुम के टक्कर में' 'दिल्ली के रोज़गार दफ्तर' शीर्षक लेखों में राजनीति की छद्म प्रणाली पर सर्वेश्वर हँसी-मजाक द्वारा तीखा प्रहार करते हैं। इन लेखों के द्वारा आजके राजनेताओं के कापट्य का पर्दाफाश करते हैं। अब भारत में जनसेवा का मतलब दूसरे की टांग तोड़ना है। चुनाव के वक्त नेता लोगों द्वारा क्या-क्या नहीं

किए जाते। कितने नीचे तक गिरने तक भी वे तैयार होते हैं। इसके लिए वे दोहरे या तिहरे व्यक्तित्व दिखलाएँगे, आदमी बदलेंगे और जनता को वंचित करेंगे, अपने चिह्न का निर्णय करने के लिए तांत्रिकों की सहायता लेंगे, ये सब बाते इन लेखों में उजागर होती हैं।

'गणराज्य दिवस परेड और औकातबोध' शीर्षक लेख में वे गणराज्य दिवस में हो रहे सैन्य प्रदर्शन की हँसी उडाते हैं। यह कहा जाता है कि भारत के अपने औकात दिखाने के लिए यह सैन्य शक्ति प्रदर्शित की जाती है। सर्वेश्वर पूछते हैं कि इस एक दिवस में क्या भारतीय का औकात बढ़ेगा? यह भी मान लिया जाता है कि परेड देखना भी अपनी औकात देखना है। यदि कोई व्यक्ति परेड सीधा न देखकर घर में बैठकर टी.वी. देखे तो क्या उसकी औकात कम होगी? सर्वेश्वर की राय में तब तो हमारे भारत के नब्बे प्रतिशत लोग बिना औकात के हैं, क्योंकि परेड देखने केलिए 'पास' होना है। यदि सब की औकात बढानी है तो बेचारे आम आदमी को भी उसमें बराबरी के भाव से शामिल करना चाहिए।

राजनीतिक अपने स्वार्थ-लाभ के लिए धर्म को साथ ले रहे हैं। भारतीय जनता की अधिकांश संख्या किसी न किसी धार्मिक विश्वास पर आस्था रखने वाले हैं, इसलिए ही उनको भटकाना भी आसान है। हमारे भारत की धार्मिक चिन्ताएँ इतनी छूई मुई हैं कि किसी के कहने या न कहने से उनकी आस्था टूट जाती है। जनता की इस दुर्बलता का गलत फायदा उठानेवाले लोगों पर एक टोक है 'दिमाग की गुटर गूँ'।

हरियाणा के मुख्यमंत्री भजनलाल ने यह एलान किया था कि वह उस व्यक्ति को एक लाख रुपए देंगे और राजपंडित की उपाधि से सम्मानित करेंगे जो यह बता सके कि कुरुक्षेत्र में भगवान कृष्ण ने किस तरह गीता का उपदेश दिया था। सर्वेश्वर के अनुसार यह बिलकुल ही नासमीचीन है। लोग इसके उतावले हो गए हैं गीता की जगह ढूँढने के लिए। एक व्यक्ति गीता की जगह सिद्ध करने आए, उसके कथन इस बात का गवाह है कि हमारे भारत की सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक व्यवस्था कितनी भोंडी है।

उस आदमी ने एक गड्ढा दिखाकर कहा कि यही वह गड्ढा है यहाँ कृष्ण का रथ काफी देर तक खड़ा रहा था, और अभी तक यह गड्ढा नहीं पटा है। इससे साफ ज़ाहीर है कि वहाँ कुछ अलौकिक घटा था।

उसका दूसरा तर्क यह है कि उस स्थल का इतना प्रताप है कि यहाँ पर बैठकर आज तक किसी भिखारी ने भीख नहीं मांगी। यहाँ सर्वेश्वर व्यंग्य कसते हैं कि "हमारे भारत के चप्पे-चप्पे पर भीख माँगनेवालों के चरण पडे है, केवल यही वह जगह है जहां उनके चरण नहीं पडे।"[1]

उसका तीसरा तर्क यह है कि उसी स्थल में अन्याय के विरुद्ध लड़ने को कहा था, उसी स्थल में अर्जुन में लडने का भाव आया था।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड चार पृ. 196

क्योंकि आज भी वहाँ पहूँचते ही लडने का भाव अपने आप लोगों में उमड़ आता है।

धार्मिक जगहों के नाम पर लड़ाई करनेवालों की ओर इशारा है यहाँ । सर्वेश्वर की राय में मुख्यमंत्री को इस तरह के एलान मत करना चाहिए । यदि उनको रुपए देकर नाम कमाना है तो कोई और चीज़ों के लिए देना चाहिए । जनता के दिमाग को गुटर गूँ करने की ज़रूरत नहीं।

प्याज को लेकर लडा गया चुनाव की हँसी उडा रहे हैं सर्वेश्वर। प्याज की महँगाई ही उस समय बडा विषय था, इतने बडे लोकतंत्र का चुनाव प्याज को लेकर था, यहीं अपने आप में व्यंग्य का विषय है। 'लोकतंत्र और प्याज' में सर्वेश्वर कहते हैं कि राष्ट्र, समाज, लोकतंत्र सबकी रचना प्याज की तरह परत-दर-परत होती है।

अनैतिक शिक्षा प्रणाली पर क्रुद्ध सर्वेश्वर

अपने देश की शिक्षा प्रणाली एवं शैक्षणिक संस्थाओं की भ्रष्ट मान्यताओं से लेखक बिलकुल अवगत है। उनकी राय में एक देश की संपत्ति वहाँ के शिक्षित लोग हैं। अच्छी शिक्षा व्यवस्था अच्छी समाज-व्यवस्था का सबूत है। नालंदा, तक्षशिला जैसे विश्वविद्यालयों के लिए प्रसिद्ध भारत की आज की शिक्षा प्रणाली इतनी पतित हो रही है कि यहाँ पाठशालाओं में शिक्षा के सिवा बाकी सब कुछ हो रहे हैं। प्राइमरी में बच्चों के एडमीशन से लेकर शोध विद्यार्थियों के शाेध प्रबन्ध समर्पित करने तक भ्रष्टाचार फैल गया है। घूस देनी पड़ती है।

'रास्ता बंद है' स्तंभ में लेखक अपने मित्र की झंझट व्यक्त करते हैं। मित्र के बच्चों को पब्लिक स्कूल में एडमीशन कहीं नहीं मिल रही है। इसका कारण यह नहीं कि बच्चा इंटर्व्यू में अच्छा न निकला, बल्कि सभी स्कूलवाले बच्चे की होशियारी की तारीफ भी करते हैं, पर किसी भी स्कूल में एडमिशन नहीं मिला। इसका कारण यही है कि किसी मंत्री की सिफारिश नहीं, मोटी रकम देने के लिए पैसा नहीं, और मैनेजमेंट से दोस्ती नहीं।

सर्वेश्वर ने यह बात 81 इं में कही थी, आज भी हमारी स्थिति वैसी ही है, उससे भी बदत्तर हो गयी है। पब्लिक स्कूलों में पढ़नेवाले बच्चे ही आज सब जगहों में प्रथम बनते हैं। इसका कारण यह नहीं कि सरकारी स्कूलों में पढ़नेवाले बच्चे पब्लिक स्कूलों के बच्चों से कम होशियार हैं, बल्कि यह कि सरकारी स्कूलों के बच्चों के माँ-बाप की समाज में कोई 'पोजीशन' नहीं है, उनके पास पैसा नहीं है। इसलिए अच्छी नौकरियों में, राजनीति में उद्योग-धंधों में सब जगह उनके लिए रास्ते बंद हैं। सरकारी स्कूल का बच्चा दूसरे-तीसरे दर्जे का आदमी ही रहेगा।

प्रदत्त कार्य, परियोजना आदि के नाम पर जो-जो योजनाएँ शिक्षा-प्रणाली में बनायी जा रही है, वे सब विद्यार्थियों और अध्यापकों को उल्लू बनानेवाली हैं। मेरठ विश्वविद्यालय के कुछ छात्रों से सर्वेश्वर की मुलाकात हुई। वे नेशनल सर्वीस स्कीम की तरफ से दस दिन की कैंप के

लिए पेड लगाने की योजना लिए आये थे। उनके अध्यापक उनके साथ नहीं थे। पूछने पर मालूम हुआ कि वे कहीं घूमने गए हैं। पेड लगाने केलिए पेड़ लाये नहीं है। दस हज़ार पेड लगाने की योजना थी, लोकिन एक भी पेड लगाए नहीं है। लडकों ने खुद पेड लाने की बात कही तो अध्यापकों ने कहा कि इसकी कोई ज़रूरत नहीं है। दिन-भर ऐसे ही धूमते रहेंगे गेस्ट हाउस अच्छा है, खाना-पीना भी अच्छा है। बच्चे पढ़ना एवं करना चाहते हैं, लेकिन अध्यापक करने नहीं देते।" हम लोग कहते हैं पेड ले आइए तो बोलते हैं तुम्हें क्या तकलीफ है। उन्हें कोई 'इंट्रेस्ट' ही नहीं है सर। कहते हैं अगर कभी कोई पूछे, जो पेड़ लगाये थे उनका क्या हुआ? तो कह देना गाय खा गयी। इधर हम लोग पेड़ लगा जाते हैं उधर गाय खा जाती है। क्या करें सर? हम तो खुद इसकी शिकायत किसी से करना चाहते हैं पर किससे करें? यदि वे शिकायत करेंगे तो उन्हें मुसीबत आ जाएगी। सर्वेश्वर इस पर अपनी टिप्पणी देते हैं कि इस पेड लगाने के अभियान पर खर्च होगा। आंकडे बता देंगे कि नोएडा क्षेत्र में इतने पेड़ लगाये और इतना रूपया खर्च हुआ। इतने अधिकारियों शिक्षकों और विद्यार्थियों ने इसके लिए इतने दिन श्रम किया। पर पेड़ नहीं होंगे। उन्हें कोई अदृश्य गाय खा जाएगा। इस गाय को पहचानना बहुत ज़रूरी है। एक उदासीन, आचरणहीन समाज इस गाय को पहचान नहीं सकेगा। क्योंकि यह इस समाज की रगों में घुस गई है और हर नव निर्माण के लिए

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड चार पृ. 17

कर्म के पौधे को चर जाती है और थोथा प्रलाप के सिवा कुछ हाथ नहीं लगता।

आज शोध के नाम पर जो कुछ किये जाते हैं, उसपर भी सर्वेश्वर तीखी टिप्पणी करते हैं। सर्वेश्वर के अनुसार शोध प्रबंध लिखना, नौकरी पाना सब एक व्यवसाय हो गया है। साहित्य में जिन्हें अभिरुचि नहीं है, वे ही साहित्य में शोध कर रहे हैं। वे कहते हैं, एक गिलास का पानी दूसरे गिलास में होता रहता है। शोधार्थी को केवल यह करना होता है कि उसकी थीसिस मोटी दीखे। कम पन्नों की पतली थीसिस को स्वीकार ही नहीं किया जाता। ....गाइड के पास फुर्सत नहीं रहती। फुर्सत हो भी कैसे? फुर्सत का मतलब विषय की पूरी जानकारी रखना, पढ़ना, उलझना। और थीसिस जिनके पास जांच के लिए भेजी जाती है उनके पास तो और भी समय नहीं रहता। वे वरिष्ठ लोग होते हैं, अनुभवी, परीक्षण कला में माहिर। खत का मजमूँ भांप लेते हैं लिफाफा देखकर। उन्हें थीसिस पढ़ने की ज़रूरत ही नहीं पड़ती... फिर मौखिक परीक्षा केलिए वह बुलाए जाते हैं। उन्हें तुरत अपना भत्ता वगैरह लेकर लौटने की जल्दी रहती है।"[1]

इस तरह पंडित बननेवाले लोग कालेजों- विश्वविद्यालयों में पढ़ाने के नाम पर लग जाते हैं और राजनीति करते हैं। हमारे बच्चे इन्हीं से इन्हीं माहौल में शिक्षा, ग्रहण करते हैं और सब लोग सिर पीटते रह जाते हैं।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड चार पृ. 43

शोध प्रबंध लिखने के लिए शोध विद्यार्थियों द्वारा भेजी जानेवाली प्रश्नावली की हँसी उठाते हैं सर्वेश्वर। वे कहते हैं कि हर दूसरे दिन हिन्दी के किसी न किसी छात्र की एक लम्बी प्रश्नावली हिन्दी लेखकों को प्राप्त होती है। वह लेखकों से उनकी किताबों के नाम से लेकर वह सारी जानकारी चाहते हैं जो उनके शोध का विषय है। इसका मतलब है कि विद्यार्थी को करने के लिए कुछ भी नहीं रह जाता है। लेखक गण इसके जवाब देंगे, और उन्हीं जवाबों को उसी तरह नकल भी करेंगे। क्योंकि ऐसे साहित्यकार है जो थीसिस में नाम घुसवाने की ललक में बैठे है।

कॉलेजों में नौकरी केलिए घूस ली जाती है, यह सत्य बडी ग्लानि से सर्वेश्वर ने सन् 82 ई में कहा था, अब तो लाखों रुपये नौकरी के लिए घूस दी जाती है। अगर अब सर्वेश्वर जिंदा रहते तो क्या कहते!

हमारे भारत में बच्चे छुट्टियों के दिन कुछ नहीं करते। गर्मी की छुट्टियाँ ज़्यादा होती हैं, लेकिन केवल सोते, सिनेमा देखते, हल्के-फुल्के उपन्यास पढ़ते बच्चे समय बिताते हैं।

देश की युवाशक्ति बेकार बैठती है छुट्टियों में। हमारे समाज की व्यवस्था ऐसी है कि यदि कुछ युवा लोग समाजसेवा में जुडेंगे तो उसे गुंडागिरी कहेंगे। नहीं तो पुलिस किसी जुर्म में फँसा देगी। इससे बेहतर है कुछ न करना, यह सोचकर बच्चे कुछ करे बिना बैठते है। सर्वेश्वर इसके ज़िम्मेदार देश के वरिष्ठों को मानते हैं, "लेकिन किसी को यह चिंता तो हैं नही कि छात्र छुट्टियों में कुछ रचनात्मक काम करें   जब

देश के कर्णधारों को इस बात की चिंता नहीं है कि समस्याओं के हल के लिए युवाशक्ति का इस्तेमाल करें, देश की प्रगति से उनको जोडे, छुट्टियों में उन्हें काम दें, तो हम क्यों चिंता करें।"[1]

जून 1981 में सर्वेश्वर ने जब यह स्तंभ लिखा था, तब बच्चे घर में बेकार बैठकर छुट्टियाँ बिताते थे तो अब क्या हाल हो रहा है? सब कहीं चोरी-डकैती, मार-पीट सत्रह-उन्नीस के बरसोंवालों द्वारा की जाती है। किसी भी जुल्म के पीछे इन नौजवानों का हाथ हैं जो बेकार बैठते हैं। किसी को काट-काटके मारने में भी वे नहीं चूकते हैं। अध्यापक-वृत्ति में अभिरुचि तत्परता के बिना घूस देकर लगनेवाले अध्यापकों द्वारा जो शिक्षा हमारी पाठशालाओं में हो रही है, उसका नतीजा है ये निर्मम, मनुष्यत्वहीन बच्चे। राजनीति में प्रवेश करनेवालों की पहली जगह है, पाठशालाएँ। वहाँ केवल इसकी शिक्षा दी जाती है कि कैसे दूसरों को कुचलकर, मारकर अपनी इच्छा की पूर्ति करें। उन शिक्षा-संस्थाओं की उपज भी वैसी ही होगी। अपनी ही कक्षा के विद्यार्थी को मारना वे सीखते हैं तो पढ़ाई छोडकर समाज में आकर वे किसी दूसरे को काट डालेंगे, अपनी फल-प्राप्ति केलिए । कुछ नया जो अच्छा हो, करने के लिए उन्हें कोई प्रेरित नहीं करता, पर बुरा कर्म करने की प्रेरणा देनेवाले होते हैं। इसप्रकार हमारे भारत की सबसे बडी संपत्ति का नाश हो रहा है।

हमारी शिक्षा व्यवस्था इतनी गिरी हुई है कि शिक्षा खतम करके प्रथम श्रेणी में जीतनेवाले बच्चे निकम्मे हो जाते हैं क्योंकि ऐसे

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड चार पृ. 97

बच्चे रट्टू तोते हैं और नौकरी मिलना उनका एकमात्र लक्ष्य होता है। समाज से उनका कोई सरोकार नहीं होता है। कोई भी कवि, लेखक, अनुसंधानकर्ता, समाजसेवी या क्रांतिकारी बनना नहीं चाहता। 'पुर्जे ढल रहे हैं शीर्षक लेख में सर्वेश्वर आजकी शिक्षा प्रणाली की हँसी उडाते हैं। परीक्षा करना, परीक्षा में जीतना या हारना तकदीर का खेल है, हमारे भारत में। "तकदीर ही है जिसके कारण दो-चार नंबर कम-ज़्यादा मिलने पर डिवीज़न बनता-बिग़डता है, बच्चा फेल या पास होता है। यह तकदीर ही है जिससे एक की हंसती हुई फोटो छपती है दूसरा मुँह लटकाए घर में लौटा होता है।"[1] इसका मतलब यह है कि घटिया शिक्षा व्यवस्था ही तकदीर है जिसमें योग्यता की सच्ची परख असंभव है। निश्चित समय में बहुत सारी उत्तर पुस्तिकाओं की जाँच करना आसान नहीं है। लेकिन अध्यापकों को ऐसा करना पड़ता है। इस तरह बहुत जल्दी जितने पर्चे देख सकेंगे, वही अध्यापक की निपुणता मानी जाती है। अध्यापक के मन के अनुसार अंक निश्चित होंगे। यानी यदि तकदीर बच्चे के साथ है तो वह पास हो जाएगा।

इसकी जिम्मेदारी भी सरकार याने सत्ता की ही है। क्योंकि सत्ता अपनी शर्त पर पढ़ाती है, जो चाहती है सो पढ़ाती है। अपनी शर्त पर योग्यता जाँचेगी, अपनी शर्त पर जीविका देगी। बेचारे विद्यार्थी की कोई शर्त नहीं। इसलिए सर्वेश्वर मानते हैं कि हमारी शिक्षा व्यवस्था को

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड चार पृ. 170

पूरी तरह बदलना चाहिए। और छात्रों को समाज को बदलने की ताकत के रूप में तैयार किया जाना चाहिए।

समाज की यथार्थता से बच्चों को दूर रखने में पब्लिक स्कूलें जो सतर्कता बरकराए रखती हैं, सर्वेश्वर उनका विरोध करते हैं। पब्लिक स्कूल में अखबारों की खतरें पढी जाती हैं। लेकिन समाज में घटित अनचाहे या हिंसात्मक खबरें पढ़ना मना है। सर्वेश्वर की राय में यह षड्यंत्र है जो समाज का उच्च वर्ग-पैसे-प्रतिष्ठानवाला वर्ग-पब्लिक स्कूलों के साथ मिलकर बच्चे के विरुद्ध रचता है। क्योंकि उन्हीं टकसालों से ही उन्हें ऐसे बच्चे निकालने होते हैं जिनके हाथों में वह सत्ता शासन की बागडोर सौंप सकें। इसलिए खबरों की असली दुनिया से काटकर उन्हें नकली सतही दुनिया में घुमाया जाता है। मंत्रियों, उद्योगपतियों की टैक्स चोरी, कालाबाज़ारी, भ्रष्टाचार की खिलाफत की खबरों पर ध्यान इसीलिए नहीं दिखाया जाता कि इन स्कूलों में ज़्यादातर ऐसे ही मंत्रियों अफसरों और उद्योगपतियों के लड़के पढ़ते हैं।

स्कूलों में पढी जानेवाली खबरों के चुनाव पर भी सर्वेश्वर अपनी राय प्रकट करते हैं। उनके अनुसार देश के दो आम नागरिकों के विवाह और मौत, समृद्धि और गरीबी, उत्सव और आन्दोलन के बीच यदि खबर चुननी है तो दूसरे प्रकार की खबरें चुनी जानी चाहिए। “सामाजिक जागरूकता का संस्कार जगाना ही अच्छे देशभक्त नागरिक तैयार करना है और यदि शिक्षा संस्थाएँ इससे कतराकर देश के झूठे वैभव का संस्कार डालती है तो वे आदमी नहीं अंगूठा पैदा करती हैं।”[1]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड चार पृ. 523

इसी प्रकार स्कूलों में जो प्रदर्शिनी होती है, उनका भी समाज से जुडा होना, सर्वेश्वर पसन्द करते हैं। और वे यह भी कहते हैं कि चित्रकला में प्रयुक्त रंग देसी रंग होना ही समीचीन है। इस महंगी शिक्षा व्यवस्था में बच्चों से महंगे बाज़ारू रंग खरीदवाना एक ओर चारों ओर बिखरे उपलब्ध रंगों को सार्थकता से उन्हें अनभिज्ञ कराना है दूसरी ओर रंग बनाने की रचनात्मक खुशी से उन्हें वंचित करना है।

ह्रासोन्मुख संस्कृति पर दुःखी सर्वेश्वर

अपने देश की शानदार संस्कृति पर लेखक गर्व महसूस करते हैं; लेकिन इस संस्कृति की वर्तमान ह्रासोन्मुख स्थिति के बारे में सोचकर उनका मन बडा दुःखी होता है। भारतीय संस्कृति विश्व की अन्य संस्कृतियों से बिलकुल भिन्न है। उसकी अपनी एक गरिमा है, परंपरा है। पिता के वचन के पालन के लिए मुकुट त्यागनेवाले राम, पति की अनुचर्या पतिव्रता सीता, भाई की पाद-सेवा करनेवाले लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न जैसे भाई, दूसरों के बेटे को अपना माननेवाली माताएँ.... भारत इन सबका देश है। एक रावण था जिसने सीता को हडप लिया पर इज्जत से रखा था। लेकिन अब हमारे देश की हालत कैसी है। राम-राज्य अब नहीं रहे, रावण का देश है। पर पुराने रावण ने तो औरत को इज्जत से रखा था, अब रावणों का ज़माना आ गया है जो औरतों को बेइज्जत कर रहे हैं। भारतीय संस्कृति की महिमा ही नहीं रह गयी है। सांस्कृतिक महिमा के बढाव के लिए यहाँ मेले, सम्मेलन हो रहे हैं, पर हमारी महान

सांस्कृतिक परंपरा दिन-व-दिन गिरती जा रही है। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना अपनी धारदार कलम से उन सबकी हँसी उठाते हैं।

हमारे राजनेता अब कर्म पर नहीं, भाग्य पर विश्वास करनेवाले बन गए हैं। अपने देश की विपत्तियों को टालने के लिए वे अब तंत्रियों की सहायता की ताक में है। सन् 82 में बिहार के मुख्यमंत्री जगन्नाथ मिश्र ने चारों ओर की विपत्तियाँ टालने के लिए किसी तांत्रिक की सलाह से 108 बकरों के खून से स्नान किया है, इस खबर पर सर्वेश्वर व्यंग्य कसते हैं 'आखिल भारतीय बकरा यूनियन' शीर्षक लेख द्वारा।

यह खबर जब से अखबारों में छपी है, तब से इस देश के बकरों में काफी खलबली मच गयी है। बकरों ने चिंतित होकर एक यूनियन बनायी है 'अखिल भारतीय बकरा यूनियम'। 'बकरी' नाटक लिखनेके कारण इस यूनियन के नेता सर्वेश्वर के पास आया और कहा 'बकरे बकरी मिलाकर तो काफी हैं, करोडों में। लेकिन हमने सदस्यता खुली रखी है। उन आदमियों को भी हम लोग अपनी यूनियन में शामिल कर लेंगे जिनकी बकरा प्रकृति हो जो हमारी तरह सीधे, निरीह, कम में गुज़रनेवाले हों ओर दूसरों के स्वाद के लिए अपने को कटा देने के खिलाफ सिवा मिमियाने के और कुछ न कर पाते हों।"[1]

निरीह जनता का प्रतीक है बकरी। अपने शासन को बनाये रखने के लिए इसी आम जनता को 'आम' बनाये रखना राजनीतिकों

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड चार पृ. 14

केलिए ज़रूरी है। जो भी अत्याचार उनपर करें आम जनता कुछ नहीं बोलेगी। इसलिए उनका साथ देनेवाला कोई नहीं होता। लोग लडाई का साथ देते हैं। जो खुद नहीं लड़ता, खाली चिल्लाता है अकेले या तमाम लोगों के साथ मिलकर भी उसका साथ कोई भी नहीं देता। सरकार के कान पर कोई जूं नहीं रेंगेगी। इसलिए सर्वेश्वर बकरों के नेता से कहता है कि यूनियन से कुछ नहीं होगा।

स्त्री की महिमा का गीत गानेवाली भारतीय संस्कृति आज स्त्री पर अत्याचार करनेवाली संस्कृति बन गयी है। हमारे समाज में बलात्कार की जघन्थ घटनाएँ रोज होती रहती हैं। ज़्यादातर पुलिस, गुंडे या सवर्ण लोग हरिजनों, आदिवासियों को कुचलने या दबाकर रखने केलिए बलात्कार करते हैं। सर्वेश्वर के अनुसार यह औरत पर ही हमला नहीं है, उसके पूरे परिवार और उसकी जाति और वर्ग पर भी हमला है। बलात्कार की जितनी भी खबरें आती हैं वह उच्चवर्ग यहाँ तक कि मध्यवर्ग की नहीं होती; निम्नवर्ग की होती हैं। यह निम्नवर्ग पर जुल्म का एक हिस्सा है जिसमें पुलिस उसके द्वारा समर्थित गुंडे और उसके पोषक सामन्त, जमींदार और सवर्ण शामिल हैं।

बलात्कार की घटनाओं का यह सिलसिला तब तक जारी रहेगा, जब तक बलात्कारी को सख़्त सज़ा दी जाएगी। आमतौर पर बलात्कारी छूट जाता है क्योंकि उसका कोई चश्मदीद गवाह नहीं होता। समाज में भी उसे हिकारत से नहीं देखा जाता। वह सीना तानकर अपने

पौरुष का बिल्ला लगाये घूमता है! सर्वेश्वर की राय में ये घटनाएँ तभी खत्म हो सकती हैं जब कि कानून सख्त हो और ऐसे व्यक्ति पर सख्त सामाजिक प्रतिबन्ध लगें। उसे सामाजिक निन्दा का भय हो। अपनी सामाजिकता पर उसे खतरा दीखे।"[1]

पर हमारे समाज में तो बलात्कार की गयी औरत बिना कसूर दूसरों के अपराध के कारण समाज की नज़रों से गिर जाती है। समाज शोर तो मचाता है पर ऐसी औरत को उठाकर खड़ा नहीं करता। इसलिए औरत को डर यही रहता है कि अब उसका क्या होगा?

वास्तव में, बलात्कार का कोई मोआवजा नहीं हो सकता क्योंकि बलात्कार से स्त्री के मन और आत्मा में जो चोट उत्पन्न होती है, उसे भरने नहीं देता । यह जीवन भर का घाव है। बलात्कार हत्या से बडा पाप है। हत्या कई बार होती है, बलात्कार ऐसी हत्या है जिसका सामना औरत को ताजिन्दगी रोज़ करना होता है अपने भीतर बहुत गहरे, हर प्यार के क्षण में उसे यह शव ढोना पड़ता है जो उसका होकर भी उसका नहीं किसी और का होता है। इसका कोई मोआवजा नहीं, कोई इलाज नहीं। एक ही इलाज है कि बलात्कारी के सामने औरत सारी ताकत से फिर खडी हो उसकी नामर्दगी को ललकारे और उसी के हाथों जान गंवा दे।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड चार पृ. 20

'विधुर दिवस मनाइए' शीर्षक स्तंभ द्वारा सर्वेश्वर विधवा दिवस मनाने की आयोजना की हँसी उडाते हैं। किसी दिवस को मनाने का उद्देश्य विकास है। 'सेना दिवस' 'शिक्षक दिवस' 'बालक दिवस' आदि के साथ दयाभाव नहीं जुडता है सेना, शिक्षक, बच्चों का विकास समाज के विकास का अंग है। लेखक की समझ में नहीं आता कि विधवा का विकास कैसे किया जाएगा। उनके अनुसार 'विधवा जैसे दिवस मनाकर बदलते मूल्यों को पीछे न खींचिए। विधवा होना एक स्थिति है उससे निपटना होगा अपनी सामर्थ्य से, दूसरों की दया से नहीं।"[1] लेखक की राय में यदि मदद देनी है तो वह सारे स्त्री समाज को देनी है। चाहे वह विधवा हो या सधवा। सधवा तो आज विधवा से ज़्यादा त्रस्त है।

संस्कृति की सबसे बडी संपत्ति पर भी सर्वेश्वर विचार प्रकट करते हैं। भारतेन्दु ने कहा था कि अपनी भाषा की उन्नति के ज़रिए ही अपने देश की उन्नति संभव है। पर आजकल हमारी संस्कृति की विड़ंबना यह है कि यहाँ अंग्रेज़ी का बोल-बाला है। मातृभाषा और राष्ट्रभाषा की उन्नति के नारे लगानेवाले ही आज-अपने द्वारा आयोजित समारोहों में अंग्रज़ी का उपयोग ज्यादा कर रहे हैं। संगीत नाटक अकादमी के पुरस्कारों की पुस्तिका अंग्रेज़ी में छपी गयी है यह जानकर सर्वेश्वर को अचरज हुआ। पुरस्कार वितरण समारोह के दिन प्रशस्ति पाठ भी अंग्रेज़ी में ही हुआ। पुरस्कृत कलाकारों में से आधे तो अंग्रेज़ी नहीं जानते।

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड चार पृ. 26

लेखक के लिए यह आश्चर्य की बात है कि संगीत नाटक अकादेमी जो देश के कोने-कोने से क्षेत्रीय कलाकारों को खोजकर लाती है, जो क्षेत्रीय भाषा के अतिरिक्त कुछ नहीं जानते, उनका प्रशस्ति पाठ अंग्रेज़ी में करती है।

सर्वेश्वर का ख्याल है कि देश की संस्कृति की पोषक, उन्नायक यह संस्था यही सोचती है कि अंग्रेज़ी से ज़्यादा असर पड़ता है। शायद यह भी मानती है कि देश के कलाकारों का दिमाग अभी औपनिवेशिक है। सर्वेश्वर उनपर यह आरोप लगातें हैं कि अकादेमी के अधिकारियों का दिमाग ज़रुर औपनिवेशिक है।

इसप्रकार नागरिक स्वाधीनता जन समिति और 'इंडिया टुडे' द्वारा घोषित मानव आधिकार पत्रकारिता पुरस्कार और उसके इश्तिहार पर सर्वेश्वर उँगली उठाते हैं कि वह इश्तिहार अंग्रेज़ी में था। उस इश्तिहार में कहा गया है कि अखिल भारतीय स्तर पर मानव अधिकारों से संबंधित सर्वश्रेष्ठ पड़ताल रपट पर बीस हज़ार रुपए का वार्षिक पुरस्कार दिया जाएगा । किसी भी भारतीय भाषा की पुरस्कार के लिए भेजी जानेवाली रपट के साथ उसका अंग्रेज़ी में अनुवाद होना ज़रूरी ही है । इससे यह सिद्ध होता है कि निर्णायक मंडल में, जिसमें देश के प्रसिद्ध साहित्यकारों और पत्रकारों के होने की घोषणा की गई है, वे ही लोग हैं जो केवल अंग्रेजी जानते हैं । देश की अन्य भाषाओं के लोग नहीं है । सर्वेश्वर की राय में "मानव अधिकारों की चिन्ता करनेवाले लोगों का यह औपनिवेशिक दिमाग है जो आज भी अंग्रेज़ी के प्रभुत्व के नीचे दबा हुआ है।"[1]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड चार पृ. 74

मानव अधिकार की चिन्ता करते समय, पत्रकार की अपनी भाषा में लिखने के अधिकार की चिन्ता उसे नहीं है। इससे वे भाषाई पत्रकार तो वंचित हो जाएँगे जो अपनी रपट का अंग्रेज़ी के चटखारेवाला अनुवाद न कर सकते हैं न करा सकते हैं। मूल रपट की भाषा की गरिमा, ओज, तेवर, जो रपट की जान होती है, वह अंग्रेज़ी में कैसे दल पाएगी। सर्वेश्वर अपनी राय का समर्थन दुनिया की सौन्दर्य प्रतियोगिता के दृष्टांत द्वारा करते हैं कि उसमें सबको अपनी-अपनी पोशाक पहनकर आने का हक दिया जाता है। यह नहीं कहा जाता कि हमारे देश की पोशाक पहनकर भी दिखाओ तब सौन्दर्य का निर्णय होगा।

'अंग्रेज़ी की मार' 'आज़ादी के 25 वर्ष, 'बधाई के कार्ड' 'वह अकेला क्यों' आदि लेखों में सर्वेश्वर अंग्रेज़ी के बोलबाले पर तीखी टिप्पणी करते हैं। हिन्दी के प्राध्यापक पद की नियुक्ति करने हेतु जो साक्षात्कार था, उसमें अंग्रेज़ी लेखकों के नाम पूछे जाना कितना ना समझ की बात है, 'अंग्रेज़ी की मार' में यह सवाल सर्वेश्वर हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं। आज़ादी के 25 वर्ष बाद भी राष्ट्रपति द्वारा अंग्रेज़ी में स्वतंत्रता दिन का संदेश देना सर्वेश्वर को असीमीचीन लगता है । सर्वेश्वर को इस बात का दुःख है कि सभी बधाई के कार्ड अंग्रेज़ी में है, हिन्दी में एक भी नहीं। अपने इतिहास की परीक्षा हिन्दी में लिखना चाहा तो विद्यार्थी को मना कर दिया गया।

लोक संस्कृति सहन शक्ति की संस्कृति थी, उदारता और स्नेह की, दूसरों की नीयत पर शक न करने की संस्कृति थी। लेकिन अब

हमारी संस्कृति असहिष्णुता की संस्कृति है, आशंका, अनुदारता, संदेह की संस्कृति है सहनशक्ति गायब हो गई। इसीलिए होली के अवसर में लड़कों का लड़कियों पर रंग बरसना छेड़ने के स्तर पर हम लेते हैं। होली के एक दिन पहले राजधानी के राष्ट्रीय दैनिक पत्रों में यह खबर छपी गयी कि होली के हुडदंगियों द्वारा दिल्ली विश्वविद्यालय परिसर में गुंडागिरी हुई। इस खबर पर सर्वेश्वर के दोस्त चौबेजी अपनी राय प्रकट करते हैं कि होली को गाँव और शहर के लोग भिन्न-भिन्न नज़रिए से देखते हैं। गाँव में दूसरों की मस्ती पर शक नहीं किया जाता। टोली का जवाब टोली रंग का जवाब रंग, कीचड़ का जवाब कीचड़। सब खुले हुए घरों से बाहर, फिर सब कुछ भूलकर अपनी-अपनी सीमा में। पर शहरवालों की संस्कृति यह नहीं है। वहाँ होली के अवसर पर लड़की पर फब्ती कस दी, उसे पकड़ लिया, छू दिया तो लगता है जैसे उसे लूट लिया। वे अपने आप में सीमित है।

दिमागी रूप से अपने समाज को बंद कर दिया है और कहते हैं कि पढ़-लिखकर सभ्य हो गए। हमारी इतनी बडी संस्कृति, हमारा सारा पुराना साहित्य सब खुलना सिखा रहे है और शहर के लोग बंद होने पर कमर कसे हैं। शहर के लोग खुलकर कुछ नहीं बताते। 'जो खुद खुला होता है, मुक्त होता है, वह दूसरों को खोलता है, मुक्त करता है। यही होली है। बंद और खुले के बीच होली नहीं होती, फसाद होता है। वही हो रहा है। इसीलिए आज अखबारवाले होली के मूड पर हमला कर रहे हैं।"[1]

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड चार पृ. 114

हमारे भारत में पत्रकारिता को 'फार्थ एस्टेट' का पद प्राप्त है। इस पद की गरिमा को कायम रखना पत्रकारों का कर्तव्य है। सर्वेश्वर के मन में यह प्रश्न उठता है कि क्या आज के अखबारवाले अपना कर्तव्य पूरी तरह निभाते हैं   समाज में घटित घटना बिना पक्षपात के, तटस्थ होकर अखबारों में छपी जाती है? आजकी पत्रकारिता अपना कर्तव्य भूल गयी है। पत्रकार किसी न किसी राजनीतिक दल के लिए खडे होते हैं जिसका बुरा प्रभाव अखबारों में भी पड़ता है। अखबारों को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता नहीं है। किसी समस्या को अपने पत्रों में छपना चाहते हैं तो भी वे ऐसा नहीं कर पाते, क्योंकि राजनीतिज्ञों का दबाव पड़ता है। इसलिए किसी सनसनीखेज़ खबर ही समाचार पत्रों में आती है। अमरीकी और ब्रितानी अखबारों की तरह भारत के अखबार भी सत्ताधारियों के घर में जो कुछ होता है उसकी खोज खबर रखते हैं, उसे छापते हैं, सामने लाते हैं क्योंकि उसका असर राजनीति पर पड़ता है। सर्वेश्वर के अनुसार हमारे अखबारवालों के अब भी कस्बाई दिमाग है। सच्चाई यह है कि भारतीय पत्रकारिता को सनसनीखेज कहानियाँ, मनोरंजक कहानियाँ चाहिए, वह समृद्ध देशों के चोंचले अपनाता है। गरीब देशों का धर्म नही अपनाता। सवालों और उनके संभावित समाधानों, और तनावों की ओर से ध्यान हटाकर दूसरी ओर ले जाता है। इसके पीछे कोई बड़ा षड्यंत्र न भी माना जाए तो यह तो माना ही जा सकता है कि यह कस्बाई दिमाग है।

जाडे के दिनों में पत्रकारों को राजनीतिज्ञों द्वारा सूट देने की जो प्रवृत्ति दिखाई दे रही है, उसपर व्यंग्य करते हैं सर्वेश्वर। कुछ पत्रकार सूट

न मिलने पर शिकायत करते भी है। हमारे पत्रकार इतना पतित हो गए हैं कि सर्वेश्वर उनको अपनी हँसी-मज़ाक का विषय बनाते है "अच्छा तो यह हो कि इस लोकतंत्रीय व्यवस्था में देश के सभी पत्रकारों को एक जैसा सूट देने का इंतज़ाम किया जाए। आखिर जब सेना, एन.सी.सी., स्काउट, पुलिस, आग बुझानेवाले हवाई जहाज उडानेवाले सबकी वर्दी हो सकती है तो पत्रकारों की ही क्यों न हो? पत्रकार ही तो लोकतंत्र की बुनियाद होता है। क्या आप चाहते हैं बुनियाद नंगी रहे -ठंड में ठिठुरे, सूट न पहने?"[1]

नवंबर 81 में दिल्ली में आठ दिन अखबार बाँटनेवाले हाकरों ने हड़ताल की जिसके कारण आठ दिन अखबार किसी के भी घर नहीं पहूँचे। सर्वेश्वर के एक मित्र ने कहा कि अखबार न आने पर बडा अच्छा लग रहा है। क्योंकि अखबार पढ़ने पर सुबह उठते ही मन खराब हो जाता है। पत्रकार अपने-अपने राजनैतिक दलों के हिसाब से स्थितियों का विश्लेषण करते हैं। सभी के अपने-अपने स्वार्थ के दायरे हैं। बेरोज़गार रोज़गार के कालम, राजनीतिक कार्यकर्ता अपने नेताओं के बयान पढ़ता है। उस लेखक मित्र के अनुसार सिवा अलमारियों में बिछाने, किताब-कापियों पर चढ़ाने और बिस्तरे पर बिछा कर खाना खाने या प्लेटफार्म पर विछाकर सो रहने के, इस देश के अखबार किसी काम के नहीं है।

आज के अखबारों को समाज के दीन दु:खियों से कोई सरोकार नहीं है। सच्ची पत्रकारिता का उद्देश्य यह है कि उसे बुनियादी

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड चार पृ. 52-53

सवालों से टकराना है और उन्हें हल करने योग्य दूसरों को बनाना है जिससे समाज का नक्शा बदले। लेकिन आज कौन सा अखबार अपना यह कर्तव्य पूरी तरह निभाता है? सर्वेश्वर ने पच्चीस साल पहले यह प्रश्न पूछा था, आज भी वही सवाल जवाब बिना खडा है।

दर्द-दुखियों की समस्याएँ ज़रूर अखबारों में प्रकाशित होती हैं, लेकिन सनसनीखेज कहानी के रूप में। बलात्कार की खबरें मसाला भरे छपी जाती हैं। इन खबरों को इस तरह छापा जाता है जैसे उनमें मजा लिया जा रहा हो, इस तरह नहीं छापा जाता जिससे उस ग्लानि का पता चले जो ये खबरें भरती हैं। सर्वेश्वर इसका विरोध करते हैं। बलात्कार की खबरों को पढ़कर स्त्रियाँ ही स्त्रियों पर आरोप लगाती है। "जो शर्म बलात्कार करनेवाले को और उसे पालने वाले समाज को भोगनी चाहिए उसे स्त्री भोगती है। सबसे ज़्यादा मार उस निर्दोष पर ही पड़ती है।"[1] इसलिए सर्वेश्वर के अनुसार अखबारवालों को इसतरह बलात्कार की खबर धपनी चाहिए कि उससे समाज स्त्री को नहीं बल्कि बलात्कारी को दोषी ठहराएँ।

'मंत्री शरणम् गच्छामि' शीर्षक लेख में सर्वेश्वर अपनी राय प्रकट करते हैं कि साहित्यिक या सांस्कृतिक समारोहों में केवल मंत्री होने के नाते किसी को अध्यक्षता या उद्घाटन आदि के लिए नहीं बुलाया जाना चाहिए। हमारे देश की व्यवस्था की यही रीति है कि कोई मंत्री हो जाए तो

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड चार पृ. 179

उसे सब कहीं मौके बेमौके बुलाया जाता है। बुलाने में कोई एतराज़ नहीं है, पर मंत्री को विषय की जानकारी होनी चाहिए। लेखकों के आदर के लिए जो समारोह होते हैं, उनके लिए महान लेखकीय व्यक्तित्वों को ही बुलाया जाना चाहिए।

मंत्री लोगों को इसलिए बुलाया जाता है कि मंत्री के आने से समारोह की शोभा ही नहीं बढ़ती, आयोजकों के लिए उसकी उपयोगिता भी बढ़ पाती है, उनका काम चमक कर सामने आ जाता है। सर्वेश्वर की शिकायत है कि अखबारवाले बडी-से बडी बात बड़े-से-बड़ा आदमी कहे उसे समारोह की रिपोर्टिंग में स्थान नहीं देते जबकि साधारण से साधारण मंत्री की साधारण से साधारण बात को महत्व देते हैं और उसे छापते हैं। हमारे समाज की बुनावट ऐसी कर दी गई है कि जगह मंत्री के लिए ही होती है किसी और के लिए नहीं। हर जगह मंत्री के लिए ही है। इसमें मंत्री लोगों का भी दोष है। यदि वे विषय के जानकार नहीं है तो कह सकते हैं कि वे उद्घाटन नहीं करेंगे। पर वे ऐसा नहीं करेंगे क्योंकि आजके मंत्री यशलोलुप होता है। सर्वेश्वर मंत्रियों पर व्यंग्य करते हैं कि कोई भी मंत्री उद्घाटन जैसा कोई भी मौका छोड़ना नहीं चाहता। बल्कि हमेशा इस प्रतीक्षा में रहता है कि उससे अध्यक्षता या उद्घाटन आदि कराया जाए। क्योंकि इससे वह अखबारों की सुर्खियों में रहेगा और अखबारों की सुर्खी में रहना जनता की निगाह में रहना है और जनता की निगाह में रहने का मतलब है पद पर बने रहना। सर्वेश्वर का इतना खुलकर विरोध उनके पक्षकार व्यक्तित्व को और निखार कर देता है।

महान व्यक्तियों, लोखकों आदि की स्मृति में समारोह आयोजन करना जैसे जन्मशति समारोह, निधन के बाद सौ वर्ष का समारोह हमारी संस्कृति का अंग बन गया है। इसके लिए लाखों रुपए भी खर्च किये जाते हैं। सर्वेश्वर की राय में ये सब थोथा प्रलाप है तब तक जब तक उन महान लोगों के चरित्र को, उनकी चिंताओं को हम कार्य में बदले।

प्रेमचन्द की जन्मशति के अवसर पर देश के शहरों में समारोह ही समारोह थे। लेकिन प्रेमचन्द ने अपनी रचनाओं में जिस गाँव को चित्रित किया था, वह जनता की स्मृति से छूट गया। यानी प्रेमचन्द की रचनाओं के पात्र भूमिहीन किसान, खेतिहर मज़दूर, जूठा खानेवाले हरिजन थे, उनकी याद सबके मन से गयी, क्योंकि आज भी वैसे ही पात्र हमारे समाज में जीवित है। प्रेमचन्द की स्मृति में लोग समारोह कर रहे हैं और गरीब आदमी को मारने, तोड़ने, और लूटने की ताकतें और मज़बूत और संगठित होती जा रही हैं।

सर्वेश्वर को लगता है कि जन्मशति के अवसर पर प्रेमचन्द स्वयं आकर उनसे कह रहे हैं कि "मुझे अच्छा लगता यदि इस जन्मशति पर मेरे पाठक, मेरे साहित्य के अध्येता और अध्यापकों ने स्कूलों, कालेजों और विश्वविद्यालयों से निकलकर गाँवों में शिक्षा, शिविर लगाए होते। सरकारों और संस्थनों ने मेरी याद में अस्पताल खोले होते, यदि एक भी ऐसा ठोस काम किया होता जिससे अन्याय, शोषण, जातपांत को समाप्त किया जा सकता। लेकिन यह सब नहीं हुआ। वह अंधविश्वास,

वही सूदखोर हैं, वही महाजन है, वही ज़मीनदार है, वही छोटे-बडे हैं। सब कुछ वही है, कहीं कुछ नहीं बदला।"[1]

भूमंडलीकरण के इस ज़माने में उपभोगवादी संस्कृति के जाल में फँसनेवाले आम आदमी के प्रति सर्वेश्वर ज़्यादा चिन्तित है। 'विदेशी जेहनियत से बचो' 'टूथपेस्ट युग' 'संजय अखाड़ा' आदि लेखों में सर्वेश्वर यह चिन्ता हमारे सामने रखते हैं। 'विदेशी जेहनियत से बचो' में साधारण मानव पर विज्ञापनों के प्रभाव पर वे प्रकाश डालते हैं । विज्ञापनों में जो दीखता है, वही करने की इच्छा मनुष्य को है। हेममालिनी जैसे बनने के लिए लक्स साबुन, सिम्मी गैरवाल जैसे बनने के लिए हैलो एग शैंपु का उपयोग आज की लड़कियाँ करती हैं। टूथपेस्टों का उपयोग करने लगे हैं। सर्वेश्वर के अनुसार नीम की दातौन सबसे अच्छी चीज़ है लेकिन लोग उसका उपयोग करते नहीं। दूसरों के आगे अपना स्तर ऊँचा करने के लिए ही आदमी टूथपोस्टों का उपयोग करते हैं। किसी नामी व्यक्तित्व के उपयोग से अपनी संस्था या कार्रवाई की माँग बढ़ेगी, मनुष्य की ऐसी प्रवृत्ति संजय अखाड़ा' में दिखायी गयी है। अपने अखाड़ा में दिखायी गयी है। अपने अखाड़ा के नाम के लिए संजय गाँधी से उद्घाटन करना अच्छा है, यही लोगों की चिन्ता है।

सर्वेश्वर अपने इन लेखों द्वारा पाठकों को यह सोचने के लिए छोड़ते हैं कि क्यों विदेशी चीज़ों का इस्तेमाल हो जाए, जबकि देशी चीज़ें

---

1. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ खण्ड चार पृ. 158

अच्छी हैं। उनके अनुसार विदेशी फार्मूलों, विदेशी सहयोग से बनी चीज़ों से जुडी प्रतिष्ठा को ध्वस्त करने और ऐसी जेहनियत को खत्म करने का आन्दोलन होना चाहिए।

वर्षों पहले लिखी इन बेबाक टिप्पणियों की प्रासंगिकता और बढ़ रही है, क्योंकि आज भी भारतीयों का औपनिवेशिक दिमाग है।

❖❖❖

उपसंहार

उपसंहार

स्वतंत्र भारत की आम जनता इस नंगे सत्य का निषेध नहीं कर सकती कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद देश के राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक धरातल पर व्यापक रूप से फैले हुए स्वार्थ, अवसरवाद, भाई-भतीजावाद, नैतिक गिरावट, संकीर्ण गुटबन्दी, छीना-झपटी, भ्रष्टाचार और इन सबसे उत्पन्न असुरक्षा की भावना ने उनका मानसिक विघटन किया है। आम आदमी के इस मोहभंग की चीख से हिन्दी के कुछ नये साहित्यकार जुडे हैं जिनमें सर्वेश्वरदयाल सक्सेना अग्रणी हैं।

1927 ई. से 1983 ई. तक की जीवन-यात्रा में उन्होंने जो कुछ सुना, भोगा, अनुभूत किया, वही उनका रचना-जगत है। आम आदमी के प्रति सर्वेश्वर के मन में जो संवेदना है, वही उनकी रचनाओं का मूल स्वर है। किसी राजनीतिक या धार्मिक पार्टी का सदस्य बनकर नहीं, बल्कि अपने आपमें जो आम आदमी है, उसके प्रति प्रतिबद्धता के तहत वे रचना करते हैं। यदि मनुष्य संगठित प्रयास करेगा तो, समाज के कई अवांछित घटकों को बदलने में कामयाब होगा, यही उनकी आस्था थी। सर्वेश्वर ज़िन्दगी के प्रति सकारात्मक रुख अपनानेवाले साहित्यकार थे।

सर्वेश्वर का सारा रचना-जगत एक ही मुद्दे के इर्द-गिर्द घूम रहा है। उनकी कविताएँ, नाट्य-रचनाएँ, कथा साहित्य, निबन्ध साहित्य

तथा पत्र साहित्य ठोस सामाजिक धरातल को केन्द्र में रखे हुए हैं। उनका आधार भारत की अस्सी प्रतिशत शोषित, पीडित जनता है। आम आदमी के प्रति उनके मन में जो संवेदना है, वही सारी रचनाओं की संवेदना है।

सडी-गली राजनीति की विद्रूपताओं के बीच पिसती जनता का चित्रण उन्होंने 'बकरी' और 'अब गरीबी हटाओ' में किया। शासन की क्रूरताओं में दबी मनुष्य की ज़िन्दगी की कराह, उसकी चीख उनके नाटकों में गूँज रही है।

अपने अन्दर के आम आदमी के प्रति प्रतिबद्ध सर्वेश्वर कुछ ऐसा करना चाहते हैं जिससे समाज बदल जाए। इसीलिए उन्होंने 'लडाई' का नायक सत्यव्रत से समाज के विरुद्ध लड़ाई करायी, लेकिन उसकी पराजय से मालूम हो गया कि अकेली लडाई कहीं भी पहूँचती नहीं। संगठित प्रयास ही जनता को शासन के विरुद्ध की लड़ाई में सफल बनाता है, 'बकरी' और लड़ाई के माध्यम से उन्होंने यही संदेश दिया।

लीक से हटकर चलनेवाले सर्वेश्वर का अपना चरित्र उनके कुछ पात्रों में प्रतिफलित है 'सूने चौखटे' की हेमदीदी साधारण औरतों की तरह पति की सेवा-शुश्रूषा में रहकर कुछ न कर बैठने की बजाय अपनी पसन्द की नौकरी करती है, अपने ससुर की इच्छाओं के विरुद्ध। वह उनसे अलग होकर, बच्चों के लिए एक पाठशाला खोलकर, सामाजिक प्रगति में हाथ बंटाकर तृप्त होती है।

सर्वेश्वर हमेशा समाज के निम्नतम तबके के लोगों के साथ रहे हैं। हीन काम करने को भी वे नकारते नहीं है, बल्कि उनकी वेदना को, उनकी कुंठा को भी अपनाते हैं। दरअसल 'पागल कुत्तों का मसीहा' की विपती सर्वेश्वर के व्यक्तित्व की ही परछाई है।

सर्वेश्वर की रचनाएँ हर काल में प्रासंगिक रहेंगी, जब तक हमारा समाज नहीं बदलेगा। आजके समाज का भरा-पूरा चित्र अपनी कमियों के साथ सर्वेश्वर की रचनाओं में मिलता है। समाज की हर इकाई उनकी धारदार कलम का विषय बन जाती है। पाताल से धरती तक, धरती से आकाश तक उनकी रचना-जगत का फैलाव है। लेकिन उन्होंने ज़्यादा लिखा, आम आदमी के बारे में। भारत की अस्सी प्रतिशत जनता जो हर तरह से पीडित है भूख से, गरीबी से, सर्दी से - उस पीडित जनता के प्रति ही उनकी संवेदना रही। अभावों से जूझते बचपन ने ही उनके मन में शोषित, पीडित जनता के प्रति सहानुभूति की भावना जगायी थी।

हमारे भारत में हर वर्ष जाडे और सर्दी में हज़ारों लोग मारे जाते हैं। बुनियादी ज़रूरतों-रोटी, कपड़ा, मकान की किल्लत ही उनकी मृत्यु का कारण बनती हैं। उन बेनाम लोगों की चिन्ता करने के लिए हमारे शासकों के पास वक्त नहीं है, क्योंकि वे अपनी कुर्सी को कायम रखने की तरकीब ढूँढ निकालने के लिए परेशान है। गरीब जनताओं के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करने के साथ-साथ शासकों की संवेदनहीनता पर प्रश्न चिह्न लगाते भी हैं। अनपढ़, भोले-भाले ग्रामीण लोग उनके लिए

वॉटबैंक मात्र हैं। उन्हीं को लूटकर शासक ऐश और आराम की ज़िन्दगी जीते हैं।

देश के निम्न वर्ग, निम्न मध्यवर्ग और मध्यवर्ग के लोग उनकी रचनाओं के पात्र हैं। ये सब किसी न किसी दृष्टि से शोषण के शिकार हैं। निम्न वर्ग और निम्न मध्यवर्ग शोषकों से शोषित हो जाते हैं तो मध्यवर्ग के लोग दिमागी रूप से। भूमण्डलीकरण का बुरा प्रभाव मध्यवर्ग के लोगों पर ज़्यादा पड़ा है। अमीरों जैसे बनने की इच्छा में बाजार में आनेवाली सभी चीज़ें उनके द्वारा खरीदी जाती हैं जबकि देशी चीज़ें कम खर्च में उपलब्ध हैं।

देश के शोषित लोगों की कड़ी में स्त्री भी आती है क्योंकि हमारे समाज में स्त्री और पुरुष दो तबकों में खडे हैं। हमारे समाज में लड़कियों पर बचपन से लेकर पाबन्दियों का सिलसिला है जो उनकी जीवन-यात्रा के हर मोड़ में रोक लगाता है। 'सूने चौखटे' की बेचारी कमला, 'कमला मर गयी' की कमला, 'टूटा हुआ पंख' की शीला, 'डूबता हुआ चाँद' की पत्नी, 'बेबसी' की मधु सबके सब अपनी ज़िन्दगी के फैसले लेने में असमर्थ हुई, बल्कि उनपर दूसरों का फैसला लादा गया। वे ज़िन्दगी जी नहीं रही हैं, बल्कि ढो रही हैं, जिन्दा रहने के एहसास देने के लिए वे जी रही हैं।

अपने समाज की बदहालत पर चिन्तित होते वक्त भी सर्वेश्वर ने हमेशा सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाया है। ज़िन्दगी से ऊबकर, अकेलेपन

से तंग आकर आत्महत्या करने के लिए तुले एक स्त्री और पुरुष को जोड़कर जिन्दगी की ओर वापस लाए, 'अँधेरे पर अंधेरे' कहानी में। 'बर्फ ने कहा' रेडियो रूपक का बर्फ उनकी सकारात्मक दृष्टि का प्रतीक है जिसके माध्यम से घायल और अकेले सैनिक एवं नर्स आपस में जोड़े जाते।

समाज के क्रूर यथार्थ को पाठक के सामने रखते वक्त भी सर्वेश्वर की रचनाएँ ज़िन्दगी से पलायन करना नहीं सिखाती हैं। जीवन से भागना नहीं, जीवन की ओर भागने की सीख देती हैं। एक सच्चा साहित्यकार वही है जो समाज को कुछ 'नया' देता है। भुई लोटन के चरित्र द्वारा एक महान दर्शन वे हमारे सामने रखते हैं कि 'मा फलेषु कदाचन'।

सर्वेश्वर की मानसिकता एक नेक इन्सान की है। प्रेम के उदात्त भाव को उन्होंने हमेशा स्वीकारा। पवित्र प्रेम की कहानियाँ लिखकर वे यह कहना चाहते हैं कि प्रेम सबके दिल में होता है। एक देश के ही नहीं, सारी दुनिया में प्रेम का जादू फैला है। लेकिन आर्थिक सामाजिक, धार्मिक असमानताएँ, खानदान और कुल के अन्तर ये सब हमेशा प्रेम के रास्ते मं विघ्न डालते हैं। इसकी एक ऐतिहासिक परंपरा भी है। 'मौत की आँखें' 'मृत्युपाश' 'आंधी की रात' 'प्रेम और मोह', 'प्रेम-विवाह' 'वह चित्र' 'क्षितिज के पार' 'पत्थर के फूल' आदि कहानियाँ सर्वेश्वर की नेक मानसिकता के दर्शन कराने के साथ-साथ समाज की असामाजिक घटनाओं के प्रति सर्वेश्वर की चिन्ता को भी प्रकट करती हैं।

हमारी शासन-व्यवस्था देश की युवा-संपत्ति का नाश कर रही है। हमारी शासन व्यवस्था में युवा लोगों के लिए कई योजनाएँ हैं। लेकिन उनमें अधिकांश योजनाएँ कागज़ी योजाएँ बन गयी हैं। शासन की अपनी ओर उपेक्षा देखकर देश के युवा लोगों में ऐसी सोच आ गयी है कि पढ़ाई खत्म करने के तुरंत बाद ही नौकरी मिलने की आशा रखना मूर्खता है। अपने निबन्धों और बेबाक टिप्पणियों में सर्वेश्वर ने युवकों के प्रति चिन्ता व्यक्त की है। बेरोज़गार युवकों के मानसिक तनाव को सर्वेश्वर ने अपनी रचनाओं में उभारा। 'सूने चौखटे' का रामू, 'हवालात' के तीन लड़के, 'एक नयी बाइबिल' का आदमी, 'सोया हुआ जल' का किशोर, 'मैं एक बेरोजगार आदमी' आदि इसके मिसाल हैं।

साहित्य और संस्कृति पर लिखे गए निबन्ध उनके सतर्क व्यक्तित्व के द्योतक है। हमारे सांस्कृतिक गरिमा को बढ़ाने का वादा करनेवाले मेले आज प्रदर्शनप्रियता के शिकार बन गए हैं। ऊपरी चमक-दमक लिए हुए मेले वास्तव में मनुष्य के अन्दर के खोखलेपन को दर्शाते हैं। सर्वेश्वर के अनुसार यदि इन मेलों से तात्पर्य जनता का उद्धार है तो इन मेलाओं का आयोजन गाँवों में होना चाहिए।

सर्वेश्वर की रचनाओं में गाँव हर क्षण मौजूद है। गाँव की पगडंडी, कच्ची सडक, गाँव में तना गरीबी का अँधेरा आदि उनकी रचनाओं के अंग हैं। अपनी मिट्टी की महक के प्रति उनका आकर्षण हमेशा रहा। इसलिए मेलों या संगोष्ठियों में अंग्रेज़ी का बोलबाला उन्हें

कभी भी अच्छा नहीं लगा। हमारा भारत भाषाओं की समृद्धि के लिए प्रसिद्ध है। लेकिन क्षेत्रीय भाषाओं की उपेक्षा और पराई भाषा की सनक यह हमारे देश का शाप है और सर्वेश्वर की राय में

'एक गलत भाषा में
गलत बयान देने से
मर जाना बेहतर है
यही हमारी टेक है।"

सर्वेश्वर की बेबाक टिप्पणियाँ साहसी पत्रकार के द्योतक हैं। समाज, संस्कृति, शिक्षा आदि किसी भी क्षेत्र में घटित अवांछित घटनाओं का वे खुल्लमखुलला जिक्र करते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में आए मूल्य विघटन पर वे दुःखी होते हैं। राजनीति की सडी-गली मान्यताओं का पर्दाफाश करते हैं।

रूस यात्रा-वृत्तांत में अपने देश की बदहालत पर चिन्तित और व्याकुल सर्वेश्वर को देखते हैं। समीक्षात्मक लेखों में तटस्थ भाव से स्थितियों को आँकनेवाले समीक्षक सर्वेश्वर को देखते हैं।

बडे लोगों की बडी बातें करते वक्त भी सर्वेश्वर के मन में हमेशा देश के बालक रहे हैं, इसीलिए उन्होंने उनके लिए कविताएँ और कहानियाँ लिखीं, नाटक लिखे। अपने निबन्धों में बाल-साहित्य सम्बन्धी अपनी अवधारणाएँ प्रकट कीं। सर्वेश्वर हमेशा श्रेष्ठ बाल साहित्य की माँग में रहे हैं। उनके अनुसार हमारे यहाँ बाल-साहित्य की कोई ऐतिहासिक परंपरा नहीं है। लेखकों को ऐसी कहानियाँ लिखनी चाहिए जिनसे बच्चे

समाज के यथार्थ से अवगत हो जाएँ और उससे जूझने की प्रेरणा भी बच्चों को मिलें।

सर्वेश्वर की रचनाएँ पाठकों को एक नयी चेतना देती है। नये प्रभात के आने की प्रतीक्षा देती है। आशा की एक लकीर 'सोया हुआ जल' 'कल भात आएगा' आदि में खींची गयी है।

झूठे लोगों की इस झूठी दुनिया में ईमानदार रहना जोखिम का काम है। लेकिन सर्वेश्वर की रचनाएँ इस बात का साक्षी हैं कि सर्वेश्वर अपने अंदर के आम आदमी और बाहर के आम आदमी के प्रति हमेशा ईमानदार रहे।

❖❖❖

मूल ग्रन्थ

1. 'अब गरीबी हटाओ' — सर्वेश्वरदयाल सक्सेना
राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
नई दिल्ली 110002
प्र.सं. 1981

2. एक सूनी नाव — सर्वेश्वरदयाल सक्सेना
अक्षर प्रकाशन
नई दिल्ली
प्र.सं. 1968

3. कविताएँ दो — सर्वेश्वरदयाल सक्सेना
राजकमल प्रकाशन प्र.लि.
नई दिल्ली 110002
प्र.सं. 1978

4. कुआनो नदी — सर्वेश्वरदयाल सक्सेना
राजकमल प्रकाशन प्र.लि.
नई दिल्ली 110002
तृ.सं. पुनर्मुद्रित 1994

5. खूँटियों पर टँगे लोग — सर्वेश्वरदयाल सक्सेना
राजकमल प्रकाशन प्र.लि.
नई दिल्ली. पटना
तृ.सं. 1991

6. गर्म हवाएँ — सर्वेश्वरदयाल सक्सेना
वाणी प्रकाशन
नई दिल्ली 110002
प्र.सं. 1969

7 जंगल का दर्द — सर्वेश्वरदयाल सक्सेना
राजकमल प्रकाशन प्र.लि.
नई दिल्ली-110002
द्वि.सं. 1994

8. तीसरा सप्तक — सं. अज्ञेय
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
कलकत्ता-27
तृ.सं. 1967

9. 'बकरी' — सर्वेश्वरदयाल सक्सेना
राजकमल प्रकाशन प्र.लि.
नई दिल्ली-110002
छात्र सं. 2001

10. लडाई — सर्वेश्वरदयाल सक्सेना
लिपि प्रकाशन
नई दिल्ली-110002
प्र.सं. 1979

11. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना संपूर्ण गद्य रचनाएँ (खण्ड 1-4) — किताबर
24/4866, अंसारी रोड
दरियागंज
नई दिल्ली-110002
प्र.सं. 1992

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.	अपनी बात	भीष्म साहनी द्वि.सं. 1995
2.	आज और आजसे पहले	कुँवर नारायण राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली प्र.सं. 1998
3.	आजका हिन्दी नाटक प्रगति और प्रभाव	दशरथ ओझा राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली प्र.सं. 1984
4.	आजकी कहानी	विजयमोहन सिंह राधाकृष्ण प्रकाशन प्र.लि. द्वि.सं. 2002
5.	आजकी कहानी समांतर कहानी	श्याम गोविन्द पराग प्रकाशन शाहदर, दिल्ली-32 प्र.सं. 1985
6.	आठवें दशक के हिन्दी उपन्यास	डॉ. रजनीकान्त जैन सुशील प्रकाशन पुरानी मण्डी अजमेर प्र.सं. 1969

7	आधुनिक पत्रकारिता	डॉ. अर्जुन तिवारी विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक, वाराणसी-221001 चतुर्थ सं. 2004
8.	आधुनिक भावबोध की संज्ञा	अमृतराय हंस प्रकाशन इलाहाबाद प्र.सं. 1972
9.	आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य मूल्यों से प्रयाण	रघुवीर सिन्हा शकुन्तला सिन्हा दि मैक मिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड प्र.सं. 1980
10.	आधुनिक साहित्य और इतिहास बोध	नित्यानंद तिवारी वाणी प्रकाशन दिल्ली-110007 प्र.सं. 1982
11	आधुनिक हिन्दी नाटक एक यात्र दशक	नर नारायण राय भारती भाषी प्रकाशन विश्वास नगर, दिल्ली प्र.सं. 1979
12.	आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमंच	लक्ष्मीनारायण लाल साहित्य भवन प्र.लि. इलाहाबाद द्वि.सं. 1989

13. आधुनिक हिन्दी नाटक संवेदना और शिल्प के नए आयाम	डॉ. सुन्दरलाल कथूरिया भावना प्रकाशन दिल्ली-110001 प्र.सं. 1998
14. आलोचना की सामाजिकता	मैनेजर पाण्डेय वाणी प्रकाशन नई दिल्ली प्र.सं. 2005
15 इनसानियत की नसीहत	डॉ. पी.ए. शमीम अलियार सूर्य भारती प्रकाशन दिल्ली-110006 प्र.सं. 1998
16. उपन्यास का शिल्प	डॉ. गोपाल राय बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी पटना-3 प्र.सं. 1973
17 उपन्यास स्वरूप और संवेदना	राजेन्द्र यादव वाणी प्रकाशन नई दिल्ली प्र.सं. 1997
18. उपन्यास समीक्षा के नए प्रतिमान	डॉ. दंगल झाल्टे वाणी प्रकाशन नई दिल्ली प्र.सं. 1987

19. औपनिवेशिक मानसिकता से (शिक्षा और संस्कृति की राजनीति)	न्गुगी कथ्योगो संपा. और अनुवादक आनंदस्वरूप वर्मा ग्रंथ शिल्पी नई दिल्ली प्र.सं. 1999
20. उपन्यास का पुनर्जन्म	परमानंद श्रीवास्तव वाणी प्रकाशन नई दिल्ली सं. 1995
21 कवितान्तर	डॉ. जगदीश गुप्त ग्रन्थम पब्लिकेशन प्र.सं. 1973
22. कहानी अनुभव और अभिव्यक्ति	राजेन्द्र यादव वाणी प्रकाशन नई दिल्ली 110002 द्वि. 2000
23. कहानी का समाजशास्त्रीय समीक्षा	रमेश उपाध्याय नमन प्रकाशन दिल्ली-110002 प्र.सं. 1999
24. कहानी के नए प्रतिमान	कुमार कृष्ण वाणी प्रकाशन नई दिल्ली प्र.सं. 2005

25. छठवाँ दशक — विजयदेव नारायण साही
हिन्दुस्तानी एकेडेमी
इलाहाबाद
प्र.सं. 1987

26. जनवादी कहानी पृष्ठभूमि से पुनर्विचार तक — रमेश उपाध्याय
वाणी प्रकाशन
नई दिल्ली-110002
प्र.सं. 2000

27 नयी कविताएँ एक साथ — रामस्वरूप चतुर्वेदी
लोक भारती प्रकाशन
इलाहाबाद-1
प्र.सं. 1990

28. नयी कविता का इतिहास — डॉ. वैजनाथ सिंहल
संजय प्रकाशन
दिल्ली
सं. 1977

29. नयी कहानी का शिल्प सौन्दर्य — रामाश्रय सविता
सुलभ प्रकाशन
लखनऊ
प्र.सं. 1999

30. नयी कहानी संदर्भ और प्रकृति — सं. डॉ. देवीशंकर अवस्थी
राजकमल प्रकाशन
नई दिल्ली
सं. 1973

31. नयी रंग-चेतना और हिन्दी नाटककार — जयदेव तनेजा, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1994

32. नये साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र — मुक्तिबोध, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली-110006, प्र.सं. 1971

33. नवें दशक की कथायात्रा कहानी सामाजिक परिवर्तन के संदर्भ में — सं. धर्मेन्द्र गुप्त, साहित्य सहकार, दिल्ली-110032, सं. 1998

34. नवें दशक की हिन्दी कहानी में मूल्य-विघटन — राहुल भरद्वाज, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, प्र.सं. 1999

35. नाटककार सर्वेश्वर — धीरेन्द्र शुक्ल, शांति प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1989

36. पच्चीस उपन्यास नाटकीयता के निकष पर — ओम प्रकाश शर्मा प्रकाश, पांडुलिपि प्रकाशन, दिल्ली-110051, प्र.सं. 1987

37	पच्चीस उपन्यास नाटकीयता के निकष पर	ओम प्रकाश शर्मा प्रकाश पांडुलिपि प्रकाशन दिल्ली-110051 प्र.सं. 1987
38.	परिवेश की चुनौतियाँ और साहित्य	हेतु भरद्वाज सं. 1984
39.	प्रतिबद्धता और मुक्तिबोध का काव्य	प्रभाव त्रिपाठी वाग्देवी प्रकाशन बीकानेर-334001 प्र. 1990
40.	प्रेमचन्द	सं. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली 110002 प्र.सं. 2002
41.	प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास नए नैतिक मूल्य	शशि गुप्त नमन प्रकाशन नई दिल्ली-110002 प्र.सं. 1999
42.	प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना	डॉ. अभरसिंह जगराम लोधा अमर प्रकाशन अहमदाबाद-380022 द्वि.सं. 1985
43.	भारतीयता के आधार	डॉ. शंकरदयाल शर्मा पांडुलिपि प्रकाशन दिल्ली-110051 प्र.सं. 1998

44. भारतीय पुनर्जागरण के सामाजिक प्रभाव — विमला आचार्य, के एल पचौरी प्रकाश, दिल्ली, प्र.सं. 1997

45. भवानी प्रसाद मिश्र सर्वेश्वरदयाल सक्सेना अंतरंग साक्षात्कार — कृष्णदत्त पालीवाल, सचित्र प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, प्र.सं. 1988

46. मानवमूल्य और साहित्य — धर्मवीर भारती, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्र.सं. 1960

47 मुक्तिबोध — सं. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, ज्ञानभारती, दिल्ली, सं. 1986

48. मुक्तिबोध समीक्षाएँ — अशोक चक्रधर, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 1998

49. यशपाल का उपन्यास साहित्य — डॉ. गोपालकृष्ण शर्मा, नवचेतन प्रकाशन, नई दिल्ली

50. रघुवीर सहाय रचनाओं के बहाने एक स्मरण — मनोहर श्याम जोशी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वि.सं. 2004

51. रचना और राजनीति — प्रेमशंकर
वाणी प्रकाशन
नई दिल्ली
सं. 1999

52. रचना के सरोकार — विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
वाणी प्रकाशन
नई दिल्ली
द्वि. सं. 1996

53. रंगभाषा — गिरीश रस्तोगी
राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय
नई दिल्ली
प्र.सं. 1999

54. रंगमंच लोकधर्मी-नाट्यधर्मी — लक्ष्मीनारायण भरद्वाज
के.एल. पचौटी प्रकाशन
गाज़ियाबाद
प्र.सं. 1992

55. रंग साक्षात्कार — जयदेव तनेजा
किताबघर प्रकाशन
नई दिल्ली
प्र. 2001

56. विमर्श और विवेचन — ज्योतिश जोशी
पूर्वोदय प्रकाशन
दरियागंज
प्र.सं. 1996

57 समकालीन हिन्दी कहानी का इतिहास सन् 1971 से 2000 तक	डॉ. अशोक भाटिया भावना प्रकाशन दिल्ली सं. 2003
58. समकालीन पत्रकारिता मूल्यांकन और मुद्दे	सं. राजकिशोर वाणी प्रकाशन नई दिल्ली सं. 1994
59. समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच	जयदेव तनेजा तक्षशिला प्रकाशन नई दिल्ली सं. 1979
60. समांतर कहानी में यथार्थ बोध	रेखा वसंत पटील जवहर पुस्तकालय मधुरा सं. 2005
61. समकालीन लंबी कविता के पहचान	डॉ. युद्धवीर धवन संजीव प्रकाशन प्र.सं. 1987
62. समकालीन हिन्दी आलोचना	सं. सतीश जमाली ज्ञानभारती प्रकाशन इलाहाबाद सं. 1979
63. समकालीन हिन्दी उपन्यास	डॉ. विवेकीराय राजीव प्रकाशन इलाहाबाद सं. 1987

64. समकालीन हिन्दी कविता	डॉ. ए. अरविंदाक्षन राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली सं. 1998
65. सर्जन और संप्रेषण	सं. अज्ञेय नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली सं. 1984
66. सर्वेश्वर और उनका साहित्य	डॉ. कालीचरण सनेही आराधना ब्रदर्स कानपूर सं. 1997
67 सर्वेश्वरदयाल सक्सेना व्यक्ति और साहित्य	डॉ. कल्पना अग्रवाल चंद्रलोक प्रकाशन कानपूर सं. 2001
68. साठोत्तर हिन्दी नाटक में त्रासद तत्व	डॉ. मंजुला दास पराग प्रकाशन दिल्ली सं. 1988
69. साठोत्तरी हिन्दी कविता परिवर्तित दिशाएँ	विजयकुमार प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली प्र.सं. 1986

70. सामाजिक परिवर्तन में कथासाहित्य के भूमिका — सं. डॉ. हिरालाल शर्मा, डॉ. महेन्द्र, **अनंग प्रकाशन**, **नई दिल्ली**, प्र.सं. 2003

71. साहित्य और यथार्थ — हावर्ड फास्ट, अनु. विदय सुषमा, पीपुल्स लिटरेसी, दिल्ली, सं. 1984

72. साहित्य का परिवेश — सं. अज्ञेय, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, सं. 1985

73. साहित्य का समाज शास्त्र — डॉ. बच्चन सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1988

74. साहित्य के समकालीन सरोकार — सं. धर्मेन्द्र गुप्त, आसेतु प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं 1993

75. साहित्य के नए दायित्व संचार साधन **और कला** माध्यमों के संदर्भ में — रामस्वरूप चतुर्वेदी, **लोकभारती प्रकाशन**, इलाहाबाद, प्र.सं. 1991

76. साहित्य क्यों — विजयदेव नारायण साही
प्रदीपन प्रकाशन
इलाहाबाद
प्र.सं. 1988

77 साहित्यकार का मर्म — आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी
प्र.सं. 1970

78. साहित्य चिन्तन और मूल्यांकन — डॉ. कुमार विमल
जयभारती प्रकाशन
इलाहाबाद
प्र.सं. 1997

79. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास में पुरुषपात्र — डॉ. दुर्गेशनन्दिनी प्रसाद
राजकुमार टण्डन
हैदराबाद
प्र.सं. 1993

80. साहित्य की सामाजिक भूमिका — डॉ. देवेश ठाकुर
संकल्प प्रकाशन
शिवाजी रोड
सं. 1986

81. सर्वेश्वर मुक्तिबोध और अज्ञेय — डॉ. कृपाशंकर पाण्डेय
शिवं प्रकाशन
इलाहाबाद
सं. 1991

82. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी — सं. डॉ. रामकुमार गुप्त
हिन्दी साहित्य परिषत
अहम्मदाबाद
प्र.सं. 1989

83. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी रंगनाटक — डॉ. सुदर्शन मजीठिया
नीरज बुक सेंटर
सं. 1999

84. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी रंगमंच की समस्या और उपलब्धि — डॉ. ओमप्रकाश शर्मा
अतुल प्रकाशन
कानपूर
प्र.सं. 1994

85. हिन्दी उपन्यास प्रेम और जीवन — डॉ. शान्ति भरद्वाज
सुशील प्रकाशन
अजमीर
सं. 1969

86. हिन्दी उपन्यास और प्रेम संबंध — विजयमोहन सिंह
प्रवीण प्रकाशन
सं. 1995

87 हिन्दी उपन्यास जनवादी परंपरा — सं. कुँवरपाल सिंह
अजय बिसारिया
नवचेतन प्रकाशन
दिल्ली
सं. 2004

88. हिन्दी उपन्यास समकालीन परिदृश्य — सं. महीपसिंह
लिपि प्रकाशन
अंसारी रोड
दिल्ली
सं. 1980

89	हिन्दी उपन्यास समकालीन विमर्श	डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी अमर प्रकाशन कानपुर प्र.सं. 2000
90.	हिन्दी कहानी अस्मिता के तलाश	मधुरेश आधार प्रकाशन पंजकूला सं. 1997
91	हिन्दी कहानी आठवाँ दशक	सरबजीत संजीव प्रकाशन कुरुक्षेत्र सं. 1987
92.	हिन्दी कहानी का समकालीन परिदृश्य	डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ जवाहर पुस्तकालय मथुरा सं. 2005
93.	हिन्दी कहानी परंपरा और प्रगति	डॉ. हरदयाल वाणी प्रकाशन नई दिल्ली सं. 2005
94.	हिन्दी कहानी प्रक्रिया और पाठ	सुरेन्द्र तिवारी राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली सं. 1995
95.	हिन्दी के प्रतीकात्मक नाटक और रंगमंच	डॉ. केदारनाथ सिंह विद्याविहार कानपुर सं. 1984

96. हिन्दी नाटक उत्भव और विकास — दशरथ ओझा, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली

97 हिन्दी नाटक और रंगमंच — सं. डॉ.इन्द्रनाथ मदान, लिपि प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1975

98. हिन्दी नाटक और रंगमंच — सं. राजकमल बोरा, नारायण शर्मा, पंचशील प्रकाशन, जयपुर 1988

99 हिन्दी नाटक और रंगमंच ब्रेख्त का प्रभाव — डॉ. सुरेश वशिष्ठ, प्रेम प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1998

100. हिन्दी बाल कविता का इतिहास — प्रकाश मनु, मेधा बुक्स, दिल्ली, सं. 2003

101 हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य — अज्ञेय, राधाकृष्ण प्रकाशन, सं. 1967

102. हिन्दी साहित्य और स्वाधीन संघर्ष — डॉ. धर्मपाल सरीन, आर्या बुक डिपो, नई दिल्ली, सं. 1973

पत्रिका

1. आलोचना — जनवरी-मार्च 1971
2. कथादेश — अप्रैल 2004
3. दस्तावेज़ — अप्रैल-जून 1996
4. नटरंग खंड 9 अंक-35 — 1980
5. नटरंग — अप्रैल-सितंबर 1977
6. नया ज्ञानोदय, अंक 17- — जुलाई 2004
7. भाषा — मार्च 1980
8. भाषा — सितंबर-1982
9. भाषा — सितंबर-1984
10. भाषा — जनवरि-फरवरी 1992
11. माध्यम — जून 1964
12. वाङ्मय — अप्रैल-जूल 2003
13. वाङ्मय — जूलाई-सितंबर 2006
14. समीक्षा — मई 1973
15. समीक्षा — जनवरी-मार्च 1982
16. समीक्षा — अप्रैल-जून 1995
17 समीक्षा — अक्तूबर-दिसंबर 2001
18. समीक्षा, अंक 3 — दिसंबर 2003
19. साहित्य अमृत — फरवरी-2002
20. साहित्य अमृत — जुलाई 2002
21. साक्षात्कार — फरवरी 2004
22. हिन्दुस्तानी ज़बान — अप्रैल-मई 2004

❖❖❖